ओ३म्

खण्डन-मण्डन ग्रन्थमाला—सं० २३

श्रीमद्भागवत-समीक्षा

श्रीमद्भागवत् महापुराण के वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन

ग्रन्थकार

'खण्डन-मण्डन ग्रन्थमाला' के समस्त ग्रन्थों के यशस्वी प्रणेता

डा० श्रीराम आर्य

कासगंज

3598

ख.पु. 32

दिनांक 6-5-66

प्रकाशक

वैदिक साहित्य प्रकाशन

कासगंज (उत्तर प्रदेश) भारतवर्ष

दयानन्दाब्द १४२

सृष्टि संवत् १९७२९४९०६५

प्रथमबार] सन् १९६५ [मूल्य ३.००

ग्रन्थ की विषय सूची

		पृष्ठ
	भूमिका	
पहिला अध्याय	भागवत की रचना का शुकदेवजी से सम्बन्ध नहीं	५
दूसरा ,,	भागवत और वैष्णव पन्थ	३३
तीसरा ,,	भागवत में विष्णु का स्वरूप तथा उसकी उपासना की विधि	५०
चौथा ,,	भागवत के अवतारों की परीक्षा	७८
पाँचवां ,,	भागवत और श्रीकृष्ण	९६
छठा ,,	भागवत और अद्वैत वाद	१७९
सातवां ,,	भागवत में गल्पों का विशाल भण्डार	१९४
आठवां ,,	उपसंहार	२४५

भूमिका

श्रीमद्भागवत महापुराण का प्रचार सम्पूर्ण अठारह पुराणों सर्वाधिक है। इसका पढ़ना तथा सुनना बड़ा पुण्य कार्य माना जाता है वैष्णव समाज में गीता, विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण ये तं प्रधान मान्य ग्रन्थ हैं। भागवत की कथा करने वाले अच्छे-अच्छे विद्व देश में विद्यमान हैं। हमने अन्य पुराणों के परायण के साथ भाग पुराण का स्वाध्याय कई बार किया है। हम इस ग्रन्थ को ध्यानपूव पढ़ने पर इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह ग्रन्थ पौराणिक कप कल्पित मान्यताओं के समर्थन, प्रचार तथा जनता को विष्णु की भ की ओर आकर्षित करके वैष्णव पन्थ के विस्तार के लिए रचा गया है इसकी भाषा सरस है कथाओं को लिखने का ढङ्ग मनोरम है। आदि अन्त तक पढ़ते जाने पर सारे ग्रन्थ का पूर्वा पर प्रसङ्ग मिलता च जाता है। महाभारत के समान सारा भागवत एक कथा के रूप में लि गया है। अन्ध-विश्वास रखने वाले श्रोताओं को भ्रमित करने के लि इस ग्रन्थ के रचयिता ने खूब प्रयास किया है।

भागवत की रचना वेद-उपनिषद तथा सम्पूर्ण वैदिक शास्त्रों विरोध करके अपने भागवत पन्थ के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए की थी। स्वयं भागवत में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि वेद शास्त्र आदि पढ़ने से मनुष्य की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। अतः सभी छोड़कर केवल भागवत को ही पढ़ना चाहिए। यह बात भागवतकार इस विचार से लिखी थी कि यदि लोग वेदादि ग्रन्थों को पढ़ेंगे भागवत का जाल उन पर प्रगट हो जावेगा और फिर वे लोग भाग के पाखण्ड का विरोध करने लगेंगे।

भागवत में श्रीकृष्ण आदि सभी महापुरुषों को व्यभिचारी, प स्त्री-गामी, ब्रह्मा से असुरों का अप्रकृतिक व्यभिचार तथा ऋषि मुनि को कलङ्क लगाये गये हैं। भागवत में गल्पों का विशाल भण्डार भ पड़ा है जो कि असम्भव कल्पनाओं पर आधारित है। श्रीकृष्णजी

सारे जीवन चरित्र को भागवतकार ने सर्वथा भ्रष्ट कर दिया है। मद्य-का आहार, यज्ञों में पशुबलि, नर बलि। स्त्रियों को पति के मरण के उपरांत आग में जलाने की कुप्रथा का भागवत खुला समर्थक तथा प्रचारक है।

भागवत की अनेक बातें, कथायें अन्य पुराणों से भिन्न व विरोधी हैं। भागवत की उपासना पद्धति बुद्धि विरुद्ध, वैदिक शास्त्रों की विरोधिनी तथा मिथ्या है। वैष्णव पन्थ की स्थापना शूद्रों के द्वारा प्रारम्भ में हुई थी। अतः वाममार्ग की छाया स्पष्टतया भागवत में देखने को मिलती है।

भागवत की रचना का आधार परीक्षितको शुकदेवजी द्वारा भागवत की कथा सुनाने पर रक्खा गया है। किन्तु शुकदेवजी की मृत्यु उससे बहुत पूर्व हो चुकी थी। अतः कथा का आधार ही मिथ्या है। भागवत की श्लोक संख्या अठारह हजार बताई जाती है ऐसा भागवत में भी लिखा है। किन्तु वर्तमान में उसमें १४१८० श्लोक मिलते हैं। अर्थात् उसमें से प्रायः चार सहस्र श्लोक निकाल डाले गए हैं। इस प्रकार वर्तमान भागवत कटा-छटा होने से प्रमाणिक पूर्ण ग्रन्थ नहीं है।

इस प्रकार भागवत सर्वथा अप्रमाणिक वेद विरुद्ध, नवीन कल्पित वैष्णव पन्थ का भ्रमात्मक ग्रन्थ है। इस 'भागवत समीक्षा' ग्रन्थ में हमने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है तथा इस विषय पर पुष्कल प्रकाश डाला है। आशा है यह ग्रन्थ सभी को पसन्द आवेगा और मानव समाज को सन्मार्ग प्रदर्शन की दृष्टि से इसका व्यापक प्रचार किया जावेगा।

कासगंज उ० प्र०
ता० १।१।६५ ई०

डा० श्रीराम आर्य

ग्रन्थकार—

डॉ० श्रीराम आर्य, कासगंज

पहला अध्याय

भागवत रचना का शुकदेवजी व व्यासजी से सम्बन्ध नहीं।

श्रीमद्भागवत पुराण अठारह पुराणों में अपना एक विशेष स्थान रखता है। सभी पुराणों में जहाँ पुराणों की सूची दी गई है, श्रीमद्भागवत पुराण का उल्लेख किया गया है। व्याख्यानों में, कथाओं में अथवा साहित्य में जहाँ भी लेखकों या वक्ताओं को पुराणों के प्रमाणों की आवश्यकता अनुभव हुई है प्रायः श्रीमद्भागवत पुराण के ही प्रमाणों को दिया गया है। कथाओं में देश में सर्वाधिक भागवत् की ही कथा करने का प्रचलन है। वैष्णव सम्प्रदाय का श्रीमद्भागवत एक प्रधान एवं मान्य ग्रन्थ है। अनेक पुराणों में श्रीमद्भागवत की प्रशंसा में महात्म्य वर्णन किये गये हैं। पौराणिक पण्डितगण भागवत की कथाओं के "सप्ताह" चलाया करते हैं और उन सप्ताहों के अन्त में उनको पुष्कल चढ़ावे तथा भेटें मिलती हैं। इस प्रकार भागवत पुराण पौराणिक विद्वानों की आय का प्रधान साधन बना हुआ है। भागवत पुराण की प्रशंसा में भागवत में अनेक स्थलों पर अत्यन्त प्रभावशाली महात्म्यों का वर्णन किया गया है। यथा—

कम सूचक। नून ज्ञानयज्ञः स्मृता बुधः ।
मद्भागवतालापः सतु-गीतः शुकादिभिः ॥६०॥
यं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवतध्वनेः ।
दोंषा इमे सर्वे सिंह शब्दाद् वृका इव ॥६२॥
भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितम् ।
क ज्ञान विरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥७१॥

(अ० २)

श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्चभ्रमावहैः ।
भागवतं शास्त्रं मुक्ति दानेन गर्जति ॥२८॥
त्रमेध सहस्राणि वाजपेयशतानिच ।
; शास्त्र कथायाश्च कलां नर्हन्ति षोडशीम् ॥३०॥
ाङ्गा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम् ।
; शास्त्र कथायाश्च फलेन समतां नयेत् ॥३२॥

(भागवत महात्म्य प्रकरण अ० ३)

ो यजूंषि सामानि द्विजोऽधीत्यानुविन्दते ।
कुल्याः घृतकुल्याः पयःकुल्याश्च तत्फलम् ॥६२॥
ण संहिता मेताम धीत्य प्रयतो द्विजः ।
कं भगवता यत्त तत्पदं परमं व्रजेत् ॥६३॥

(भागवत स्कन्ध १२ अ० १२)

राजन्ते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे।
यावन्न दृश्यते साक्षाच्छ्रीमद्भागवतं परम् ॥१४॥
सर्व वेदान्तसारं हि श्रीभागवत मिष्यते।
तद्रसामृत तृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥१५॥

(भागवत स्कन्ध १२ अ० १३)

अथ—विद्वानों ने ज्ञान यज्ञ को ही सत्कर्म का सूचक माना है। वह भागवत् का परायण है, जिसका गान शुकादि ने किया है । ६० । सिंह की गर्जना सुनकर जैसे भेड़िये भाग जाते हैं, उसी प्रकार भागवत की ध्वनि से कलियुग के सारे दोष नष्ट हो जायेंगे। ६२ । यह भागवत पुराण वेदों के समान है। श्री व्यासजी ने इसे भक्ति ज्ञान और वैराग्य की स्थापना के लिये प्रकाशित किया है। ७१ । (महात्म्य अ० २)। बहुत से शास्त्र और पुराण सुनने से क्या लाभ है, इससे तो व्यर्थ में भ्रम बढ़ता है। मुक्ति देने के लिए तो एकमात्र भागवत शास्त्र ही गरज रहा है। २८। हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ इस शुकशास्त्र की कथा का सोलहवें अंश भी नहीं हो सकते।३०। फल की दृष्टि से शुक-शास्त्र कथा की समता गङ्गा, काशी, गया, पुष्कर या प्रयाग कोई तीर्थ भी नहीं कर सकता है।३२। (महात्म्य अ० ३)। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के पाठ से ब्राह्मणों को मधुकुल्या, घृतकुल्या और पयःकुल्या (अर्थात मध-दध व घी) की प्राप्ति होती है। वही फल भागवत

के पाठ से मिलता है ।६२। जो द्विज संयम पूर्वक इस पुराण संहिता का पाठ करता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है, जिसका वर्णन स्वयं भगवान ने किया है ।६३। इसके अध्ययन से ब्राह्मण को ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है, क्षत्रिय को समुद्र-पर्यन्त भूमण्डल का राज्य प्राप्त होता है, वैश्य को कुबेर का पद मिलता है और शूद्र सारे पापों से छुटकारा पा जाता है ।६४। (अ० १२) सन्तों की सभा में तभी तक दूसरे पुराणों की शोभा होती है, जब तक सर्वश्रेष्ठ स्वयं भागवत महा पुराण के दर्शन नहीं होते ।१४। यह भागवत समस्त उपनिषदों का सार है। जो इस रस-सुधा का पान करके छक चुका है, वह किसी अन्य पुराण, शास्त्र में रम नहीं सकता ।१५।

इसी प्रकार के महात्म्य भागवत में अन्यत्र भी लिखे मिलते हैं, जिन्हें पढ़कर या सनकर लोग उसकी ओर आकर्षित होते हैं और समझने लगते हैं कि भागवत से बढ़कर अब कोई शास्त्र, वेद या अन्य ग्रन्थ नहीं है जिसके पढ़ने की आवश्यकता हो। विश्व का वभव, सम्पूर्ण पृथ्वी का साम्राज्य, सारे दुःखों व पापों से मुक्ति एवं परमपद (मोक्ष) केवल भागवत के पारायण अथवा सुनने से मिल सकती है। भागवतकार ने भागवत पुराण को वेदों के समान बताया है, इसे ब्रह्म-तत्व के ज्ञान प्राप्त करने के लिए उपनिषदों का सारभूत बताया है। तब इससे बढ़कर अन्य कोई ग्रन्थ होही कैसे सकता है। सारे पुराणों का भी इसे ही शिरमौर बताया है, फिर अन्य सभी पुराणों को पढ़ने-देखने की क्या आवश्यकता रह जाती है। भागवत पुराण को व्यासजी की रचना बताया गया है तथा श्रीशुकदेवजी द्वारा इसे कहा गया लिखा है । वेदव्यासजी को पुराणों में विष्णु भगवान का अवतार माना गया है। इस प्रकार

भागवत् पुराण को साक्षात् विष्णु भगवान कृत सिद्ध किया गया है। तब फिर कोई भी श्रद्धालु वैष्णव व्यक्ति भागवत् की मान्यता में सन्देह कैसे कर सकता है ?

भागवत की रचना किस प्रकार हुई, क्यों की गई, कब की गई, किसके द्वारा की गई इत्यादि विषय इस स्थल पर विचारणीय उपस्थित होते हैं। इस सम्बन्ध में भागवत ने जो कुछ वर्णन किया है वह निम्न प्रकार है:—

काल व्याल मुख ग्रास त्रास निर्वाण हेतवे।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥

(१।११)

ग्रन्थोऽष्टाद्वश साहस्रो द्वादश स्कन्ध सम्मितः।
परीक्षिच्छुक संवादः शृणु भागवतं च तत् ॥

(३।२६। महात्म्य प्रकरण)

सूत उवाच—

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितम्।
उत्तम श्लोक चरितं चकार भगवानृषिः ॥४०॥
निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत्।
तदिदं ग्राह्यामास सुत मात्म वतां वरम् ॥४१॥
सर्व वेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम्।
स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥४२॥

अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात् ।
सोऽहंवः श्रावयिष्यामि यथाधीतं यथामति ॥४५॥
(स्क० ०१/१ अ)

स संहितां भागवतीं कृत्वानुक्रम्य चात्मजम् ।
शुकमध्यापयामास निवृत्ति निरतं मुनिः ॥८॥
(स्क० १ अ० ७)

स उपामन्त्रितो राज्ञा कथायामिति सत्पतेः ।
ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णु रातेन संसदि ॥२७॥
प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितम् ।
ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्म कल्प उपागते ॥२८॥
यद् यत्त परीक्षिदृषभः पाण्डूनामनुपृच्छति ।
आनु पूर्व्येण तत्सर्व माख्यातु मुप चक्रमे ॥२९॥
(स्क० २ अ० ८)

शुक उवाच--

तुष्टं निशम्य पितरं लोकानां प्रपितामहम् ।
देवर्षिः परिपप्रच्छ भवान् यन्मानुपृच्छति ॥४२॥
तस्मात्इदं भागवतं पुराणं दश लक्षणम् ।
प्रोक्तं भगवता प्राहं प्रीतः पुत्राय भूतकृत ॥४३॥
नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप ।
ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामिततेजसे ॥४४॥
(स्क० २ अ० ९)

श्रीभगवान उवाच—

पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये,
पदमे निषण्णाय ममादिसर्गे ।
ज्ञानं परं मन्म हिमावभासं
यत्सूरयो भागवतं वदन्ति ॥१३॥
(स्क० ३ अ० ४)

मेत्रेय उवाच—

प्रोक्तं किलैस्तद्भगवत्तमेन
निवृत्ति धर्माभिरताय तेन ।
सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः
सांख्यायनायाङ्ग धृतव्रताय ॥७॥

सांख्यायनः पारमहंस्यमुख्यो
विवक्षमाणो भगवद्विभूतीः ।
जगाद सोऽस्मद्गुरुवेऽन्विताय
पराशरायाथ ब्रहस्पतेश्च ॥८॥

प्रोवाच मह्यं सदयालुरुक्तो
मुनि पुलस्त्येन पुराणमादयम् ।
सोऽहं तवैतत्कथामि वत्स
श्रद्धालवे नित्य मनुव्रताय ॥९॥
(स्क० ३ अ० ८)

सूतउवाच—

तत्राष्टादशसाहस्त्रं श्रीभागवतमिष्यते ॥९॥

इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपंकजे ।
स्थिताय भवभीताय कारुण्यात् सम्प्रकाशितम् ॥१०॥

तद्रूपेण च नादाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ।
योगीन्द्राय तदात्म नाथ भगवद्राताय कारुण्यतस्तच्छुद्ध-
विमलं विशोकममृतं सत्यं परंधीमहि ॥१९॥

(भागवत स्कन्ध १२। अ० १३)

अर्थ—सूतजी कहते हैं—श्री शुकदेवजी ने कलियुग में जीवों के काल रूपी सर्प के मुख का ग्रास होने के त्रास का पूर्ण नाश करने के लिये श्रीमद्भागवत शास्त्र का उपदेश किया है। (१।११) इस ग्रन्थ में अठारह हजार श्लोक और बारह स्कन्ध हैं तथा शुकदेवजी और परीक्षित का सम्वाद है । (३।२६) भगवान वेदव्यासजी ने यह वेदों के समान भागवत पुराण बनाया ।४०। उन्होंने श्लाघनीय कल्याणकारी और महान् इस पुराण को लोगों के परम कल्याण के लिये अपने आत्मज्ञानी पुत्र (शुकदेवजी) को ग्रहण कराया ।४१। इसमें सारे वेद और इतिहासों का सार संग्रह किया गया है । शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को यह सुनाया ।४२। वहीं मैंने उनकी कृपापूर्ण अनुमति से इसका अध्ययन किया । जैसा मेरा अध्ययन है और मेरी बुद्धि ने जितना जिस प्रकार ग्रहण किया है, उसी के अनुसार इसे मैं आप लोगों को सुनाऊँगा ।४५। (स्क० १ अ० ३) व्यासजी ने इस भागवत संहिता का निर्माण और पुनरावृत्ति करके इसे अपने निवृत्ति परायण पुत्र शुकदेवजी को पढ़ाया ।८।

(स्क० २।७) । ऋषियो ! जब राजा परीक्षित ने सन्तों की सभा में भगवान की कथा सुनाने की प्रार्थना की तब श्रीशुकदेव जी को बड़ी प्रसन्नता हुई ।२७। उन्होंने वही देवतुल्य भागवत पुराण सुनाया जो ब्राह्म कल्प के प्रारम्भ में विष्णु भगवान ने ब्रह्माजी को सुनाया था ।२८। पाण्डव वंशीय परीक्षित ने उनसे जो-जो प्रश्न किये थे, वे उन सब का उत्तर देने लगे ।२९। (स्क० २ अ० ८) । शुकदेवजी ने कहा—परीक्षित ! जब देवर्षि नारद ने देखा कि मेरे पितामह ब्रह्माजी मुझ पर प्रसन्न हैं, तब उन्होंने मुझ से यही प्रश्न किया जो तुम मुझ से कर रहे हो ।४२। उनके प्रश्न से ब्रह्माजी और भी प्रसन्न हुए फिर उन्होंने यह दस लक्षण वाला भागवत पुराण अपने पुत्र नारद को सुनाया, जिसका स्वयं विष्णु भगवान ने उनको उपदेश किया था ।४३। परीक्षित ! जिस समय मेरे परम तेजस्वी पिता सरस्वती के तट पर बैठ कर परमात्मा के ध्यान में मग्न थे, उस समय देवर्षि नारद ने वही भागवत उन्हें सुनाया ।४४। (स्क० २ अ० ९) । विष्णु ने कहा—पूर्व काल में पाद्य कल्प के प्रारम्भ में मैंने अपने नाभि कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा को अपनी महिमा प्रगट करने वाले जिस श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश किया था और जिसे विवेकी लोग भागवत कहते हैं वही मैं तुम्हें देता हूं ।१३। (स्क० ३ अ०४) मैत्रेयजी कहते हैं—भगवान संकर्षण (शेषजी) ने निवृत्ति परायण सनत्कुमार जी को यह भागवत सुनाया था । सनत्कुमार ने इसे व्रतशील सांख्यायन मुनि को, उनके प्रश्न करने पर सुनाया ।७। परमहंसों में प्रधान सांख्यायनजो को जब भगवान की विभूतियों का वर्णन करने की इच्छा हुई, तब उन्होंने इसे अपने अनुगत शिष्य हमारे गुरु पराशरजी और वृहस्पतिजी को सुनाया ।८। इसके पश्चात् परम दयालु पराशरजी ने पुलस्त्य के कहने

से वह आदि पुराण (भागवत) मुझ से कहा। वत्स ! विदुरजी श्रद्धालु और सदा अनुगत देख कर अब वही पुराण मैं तुम्हें सुनाता हूं ।६। (स्क० ३ अ० ८) सूतजी कहते हैं—भागवत पुराण की श्लोक संख्या अठारह हजार है ।६। पहिले-पहल विष्णु ने अपने नाभि कमल पर स्थित एवं संसार से भयभीत ब्रह्मा पर परम करुणा करके इस भागवत पुराण को प्रकाशित किया था ।१०। ब्रह्मा ने देवर्षि नारद को, नारदजी ने वेदव्यासजी को, व्यासजी ने योगीन्द्र शुकदेवजी को और श्री शुकदेवजी ने करुणा वश राजा परीक्षित को इसका उपदेश किया। वे भगवान परम शुद्ध और माया मल से रहित हैं, शोक व दुःख से विवर्जित हैं, हम उन्हीं परमेश्वर विष्णु का ध्यान करते हैं ।१८। (स्क० १२ अ० १३)।

श्री शुकदेवजो ने परीक्षित को भागवत की कथा सुनाई, इस प्रसङ्ग का उल्लेख करते हुए भागवतकार स्कन्द १ अ० १६ में लिखता है कि जब परीक्षित ने अनुभव किया कि उसने मृगया के समय भूखंतावश मरा हुआ सर्प ध्यानावस्थित शमीक ऋषि के गले में डाल कर भूल की है तथा उस कार्य से क्रुद्ध हो कर ऋषि पुत्र ने (परीक्षित को) सर्प द्वारा एक सप्ताह में डसे जाने का शाप दे दिया है तो वह मृत्यु को अनिवार्य जानकर विरक्त हो गया और गङ्गा के तट पर मुनियों के समान कुटी बनो कर रहने लगा। वहाँ बहुत से अन्य ऋषि मुनि भी आ गये। उन्हीं में शुकदेवजी भी वहाँ आये। उनसे परीक्षित ने भगवत्कथा सुनाने एवं उनके अनेक अन्य प्रश्नों का समाधान करने की प्रार्थना की। उस समय श्रीशुकदेवजी ने राजा को जो कथा सुनाई थी वही श्रीमद्भागवत है।

उपरोक्त सम्पूर्ण विवरण को देखने से प्रगट होता है कि

भागवत की उत्पत्ति के दो रूप हैं। एक तो यह कि विष्णु ने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने नारद को, नारद ने वेदव्यास को, वेदव्यास ने शुकदेव को और श्री शुकदेवजी ने परीक्षित को भागवत सुनाया था। उस कथा में बैठा 'सूत' यह कथा सुनता रहा और उसने इसका वर्णन किया है। दूसरा रूप यह है कि शेष नाग ने सनत्कुमार को, सनत्कुमार ने सांख्यान को, सांख्यायन ने पराशर और वृहस्पति जी को तथा पराशरजी ने पुलस्त्य के कहने से मैत्रेयजी को भागवत सुनाया और मैत्रेयजी ने विदुरजी को उसे सुनाया था।

यह दोनों ही क्रम परस्पर विरुद्ध हैं, साथ ही असम्भव भी हैं। प्रथम क्रम में श्री शुकदेवजो द्वारा परोक्षित को भागवत कथा का सुनाना बताया गया है और दूसरे में पुलस्त्य के कहने से पराशरजी ने मैत्रेय को भागवत कथा सुनाई थी जिसे मैत्रेयजो ने विदुर को सुनाया, यह बताया गया है। इसमें प्रथम क्रम इसलिये गलत है, क्योंकि महाभारत के अनुसार श्रीशुकदेवजी को मृत्यु युधिष्ठिर के जन्म से भी पहले ही हो चुकी थी जब कि परीक्षित महाभारत के अन्त के बाद युधिष्ठिर के राज्य करने के स्वर्गारोहण के पश्चात् गद्दी पर बैठा था। इस सम्बन्ध में महाभारत के निम्न प्रमाण द्रष्टव्य हैं :—

महाभारत के युद्ध को समाप्ति के पश्चात् भीष्म पितामह युद्ध क्षेत्र में शर-शैया पर पड़े थे। तब युधिष्ठिर के साथ उनका दीर्घ वार्तालाप हुआ था जो कि शान्ति पर्व में दिया गया है। युधिष्ठिर ने भीष्म से वार्तालाप के मध्य में प्रश्न किया—

कथं व्यासस्य धर्मात्मा शुको जज्ञे महातपाः।
सिद्धिं च परमां प्राप्तस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥

कस्यां चोत्पादयामास शुकं व्यासस्तपोधनः ।
न ह्यस्य जननी विद्म जन्म चाग्र्यंमहात्मनः ॥२॥
महात्म्यमात्म योगं च विज्ञानं च शुकस्य ह ।
यथावदानुपूर्व्येण तन्मे ब्रूहि पितामह ॥५॥

(महा० शान्ति० अ० ३२३)

अर्थ—युधिष्ठिर ने कहा, पितामह ! व्यासजी के यहाँ महातपस्वी और धर्मात्मा शुकदेवजी का जन्म कैसे हुआ, तथा उन्होंने परम सिद्धि कैसे प्राप्त की, यह मुझे बताइये ? ॥१॥ तपस्या के धनी व्यासजी ने किस स्त्री के गर्भ से शुकदेवजी को उत्पन्न किया हमें उन महात्मा शुकदेवजी की माता का नाम नहीं मालूम है और न हम उनके श्रेष्ठ जन्म का वृत्तान्त ही जानते हैं ।२। पितामह ! आप मुझे शुकदेवजी का महात्म्य आत्मयोग और विज्ञान यथार्थ रीति से क्रमशः बतलाईये ।५।

इस प्रश्न से यह प्रगट है कि शुकदेव युधिष्ठिर के समकालीन भी नहीं थे अन्यथा वे उनके विषय में सभी कुछ जानते होते । शुकदेवजी कदाचित पाण्डवों के जन्म से बहुत पूर्व उत्पन्न होकर मृत्यु को प्राप्त हो चुके होंगे तथा उनके जीवन की घटनायें पुरानी पड़ चुकी होंगी, इसीलिये युधिष्ठिर को उनके विषय में जानने की आवश्यकता हुई होगी । युधिष्ठिर के प्रश्न के उत्तर में भीष्म पितामह ने शुकदेवजी के जन्म का हाल बताते हुए कहा कि—

मार्कण्डेयो हि भगवानेतदाख्यातवान् मम् ।
स देव चरितानीह कथयामास मे सदा ॥

(महा० शान्ति० अ० ३२३।२४)

भीष्म ने कहा कि मुझे मार्कण्डेय ऋषि ने यह वृत्तान्त सुनाया था। वे मुझे सदा ही देवताओं का चरित्र सुनाया करते थे।

श्री शुकदेवजी का जन्म व मृत्यु—

मार्कण्डेय के कथन के आधार पर भीष्म ने कहा कि—व्यासजी ने पुत्र प्राप्ति के लिये शिवजी की घोर आराधना की। शिवजी ने उन्हें पुत्र का वरदान दे दिया।

स लब्ध्वा परमं देवाद् वरं सत्यवती सुतः।
अरणी सहितेगृह्य ममन्थाग्निचिकीर्षया ॥१॥

अथ रूपं परं राजन् विभ्रतीं स्वेन तेजसा।
घृताचीं नामाप्सरसमपश्यद् भगवानृषिः ॥२॥

भवित्वाच्चैव भावस्य घृताच्या वपुषा हृतः।
यत्नानि यच्छतस्तस्य मुनेरग्निचिकीर्षया ॥७॥

अरण्यामेव सहसा तस्य शुक्रमवापतत्।
सोऽविशंकेन मनसा तथैव द्विज सत्तमः।
अरणी मन्मथ ब्रह्मर्षिस्तस्यां जज्ञे शुको नृप ॥८॥

शुक्रे निर्मथ्यमानेस शुको जज्ञे महातपाः।
परमर्षिर्महा योगी अरणी गर्भ संभव ॥९॥

(महा० शान्ति० अ० ३२४)

अर्थ—राजन्! महादेवजी से उत्तम वर पाकर एक दिन सत्यवती नन्दन व्यासजी अग्नि प्रगट करने की इच्छा से दो

अरणी काष्ठ लेकर उनका मन्थन करने लगे ।१। नरेश्वर ! इसी समय व्यासजी ने वहाँ आई हुई घृताची नामक अप्सरा को देखा, जो अपने तेज से परम सुन्दर रूप धारण किये हुए थी ।२। होनहार हो कर रहती है. इसीलिये व्यासजी घृताची के रूप से आकृष्ट हो गये । अग्नि प्रगट करने की इच्छा से अपने काम के वेग को यत्नपूर्वक रोकते हुए व्यासजी का वीर्य सहसा उस अरणी काष्ठ पर ही गिर पड़ा ।७। नरेश्वर ! उस समय भी द्विज श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि व्यासजी निःशङ्क मन से दोनों अरणियों के मन्थन में लगे रहे । उसी समय अरणी से श्री शुकदेवजी प्रकट हो गये ।८। अरणी के साथ-साथ शुक्र का भी मन्थन हो जाने से महातपस्वी तथा महा योगी शुकदेवजी का जन्म हो गया । वे अरणी के गर्भ से प्रगट हुए थे ।९। मार्कण्डेय से सुनी कथा के आधार पर इसके बाद भीष्म पितामह ने शुकदेवजी की शिक्षा-दीक्षा तप आदि का उल्लेख किया है और अन्त में बताया है:—

अन्तर्हितः प्रभावंत दर्शयित्वा शुकस्तदा ।
गुणान् संत्यज्य शब्दादीन् पदमभ्यगमत् परम् ॥२६॥
इति जन्म गतिश्चैव शुकस्यभरतर्षभ ।
विस्तरेण समाख्याता यन्मां त्वं परिप्रच्छसि ॥४०॥
(महा० शान्ति अ० ३३३ गोरखपुर)

अर्थ—अपना प्रभाव दिखाकर श्री शुकदेव जी शरीर त्यागकर परमपद (मोक्ष) को प्राप्त हुए ॥२६॥ युधिष्ठर ! तुम जिनके विषय में मुझ से पूछ रहे थे । वह शुकदेव जी के जन्म और मृत्यु की कथा मैंने तुम्हें विस्तार से सुना दी ॥४०॥

नोट—जिस स्थान पर शुकदेवजी ने शरीर त्याग किया था

उस स्थान को 'शुकाभिगतन' कहते हैं। ऐसा महा० में इसी अध्याय के श्लोक २१ में बताया गया है।

श्री शुकदेव जी के जन्म का जो प्रकार महाभारत में लिखा गया है वह अप्राकृतिक एवं गलत है। यदि इसे सही माना जावेगा तो शुकदेव का जन्म व अस्तित्व ही सिद्ध नहीं हो सकेगा और न उनके भागवत को कथा कहने की संगति लग सकेगी। हम यह मान लेते हैं कि श्री व्यास जी का किसी घृताची नाम की स्त्री से सम्बन्ध हो गया होगा और उसके गर्भ से शुकदेवजी पैदा हुए होंगे। क्योंकि व्यास जी के पिता पाराशर जी ने भी मल्लाह की लड़की से नाव पर विषय-भोग कर के व्यास जी को पैदा किया था। तब यदि उसी प्रकार, बिना विवाह किये किसी स्त्री से व्यास जी ने सम्बन्ध करके शुकदेव जी को पैदा कर दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। क्योंकि यह तो उनको पितृ-परम्परा थी। कुरु, पाण्डु तथा विदुर की उत्पत्ति के लिए भी व्यास जी ही नियुक्त किये गये थे। उस युग में इस प्रकार के सम्बन्ध एवं सन्तानें वैध मानी जाती थीं।

श्री शुकदेवजी का जन्म व्यास जी को यौवन अवस्था में हुआ होगा। युवा होने पर वे तपस्या को चले गये थे। बहुत बाद को व्यास जी ने कुरु-पाण्डु तथा विदुर को जन्म दिया होगा। जब पाण्डु युवा हुआ तब उसकी शादी कुन्ती से की गई। पाण्डु नपुंसक थे, अथवा उनको स्त्री प्रसङ्ग करने पर मृत्यु का शाप था, कोई भी बात हो, परन्तु कुन्ती ने धर्म ऋषि से नियोग करके युधिष्ठर, वायु ऋषि से भीमसैन, इन्द्रजी से अर्जुन तथा अश्विनीकुमारों से नियोग करा के नकुल और सहदेव को जन्म दिया था। पाण्डवों ने युवा होने तक अर्थात् २५ साल तक

शस्त्र विद्या व शिक्षा ग्रहण की होगी। उसके बाद राज्य संभाला होगा। कुछ वर्ष तक राज्य कर लेने के उपरान्त युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था, जिसमें जुए में उन्होंने सारा राज-पाट हारा था। हम अनुमान से यह अवधि कम से कम ५ वर्ष मान लेते हैं। इसके बाद पाण्डव १२ वर्ष बनवास में काटते हैं। अर्थात् बनवास से लौटने तक उनकी आयु लगभग ४२ वर्ष हो जाती है। यहाँ पर महाभारत का संग्राम होता है और पाण्डव विजयी होकर राज्य संभालते हैं। युधिष्ठिर ने राज्य ३६ वर्ष ८ माह २५ दिन किया था। अर्थात् राज्य त्यागकर स्वर्गारोहण के समय युधिष्ठिर प्रायः ८० वर्ष के थे। उनके पश्चात् परीक्षित को गद्दी मिली थी। परीक्षित ने ६० वर्ष तक राज्य किया था। इन दोनों राजाओं के राज्यकाल की अवधि सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास के अन्त में दी है।

इस तरह युधिष्ठिर के जन्मकाल से परीक्षित के मृत्युकाल तक लगभग १४० वर्ष बीत जाते हैं। महाभारत में व्यास जी तथा पाण्डवों का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। यदि शुकदेव जी उस समय होते तो यह असम्भव था कि युधिष्ठिर उस व्यास पुत्र के विषय में जानकारी न रखते। इससे प्रकट है कि शुकदेव जी का जन्म तथा मृत्यु परीक्षित की मृत्यु से लगभग १४० वर्ष पूर्व से भी पहले हो चुकी थी। यहाँ एक बात और द्रष्टव्य है कि भीष्मपितामह को स्वयं भी शुकदेव जी का परिचय नहीं था। वे कहते हैं कि मार्कण्डेय जी ने उनको यह कथा बताई थी। पितामह भीष्म ने १७२ साल की आयु में शरीर त्यागा था। अर्थात् वे युधिष्ठिर से लगभग १०० वर्ष बड़े थे। शुकदेवजी की घटना का उन्हें भी सीधा ज्ञान नहीं था। इससे प्रकट होता है कि शुकदेव जी पितामह भीष्म के जन्म से पूर्व ही पैदा हो कर

मर चुके थे। अर्थात् उनके मरने की बात परीक्षित की मृत्यु से लगभग २५० वर्ष पूर्व घट चुकी थी अथवा भीष्म की आयु १७० साल + युधिष्ठिर व परीक्षित शासनकाल ३६+६०= २६६ वर्ष से पूर्व शुकदेव मरे थे। तब भागवतकार का यह कहना है कि परीक्षित को कुटी पर मुनियों के समागम में सूत की उपस्थिति में व्यासपुत्र निवृत्ति परायण शुकदेव जी ने भागवत सुनाया, सर्वथा गलत सिद्ध हो जाता है। भागवतकार ने यह बेरसपैर की झूँठी कहानी गढ़ी है कि शुकदेव जी ने भागवत की कथा परीक्षित को आकर सुनाई थी।

इसी प्रकार उसकी दूसरी कहानी भी मिथ्या है। क्योंकि वह लिखता है कि पुलस्त्य ऋषि के कहने से पराशर जी ने मैत्रेय जी को तथा मैत्रेय जी ने विदुर को भागवत सुनाया था। पुलस्त्य ऋषि का पुत्र विश्रवा था तथा विश्रवा का पुत्र रावण था। रावण से पूर्व उसका पिता विश्रवा तथा बाबा पुलस्त्य मर चुके थे। रावण राम के काल में हुआ था। राम के जन्मकाल के लिए महाभारत में लिखा है—

राम का काल

त्रेता द्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतांवरः।
असकृत पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः॥

(महा० आ० प० अ० २ श्लोक ३)

अर्थ—त्रेता, द्वापर के सन्धिकाल में शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ राम हुये जिन्होंने दुष्ट राजाओं को मारकर धर्म की स्थापना की।

पुराहं ब्रह्मणा प्रोक्ता ह्यष्टाविंशतिपर्यये ।
त्रेतायुगे दाशरथी रामो नारायणोऽव्ययः ।।

(अध्यात्म रामा० सर्ग १ श्लोक ४८)

अर्थ—पूर्वकाल में मुझ से ब्रह्माजी ने कहा था—कि अठ्ठाईसवी चतुर्युगी के त्रेता युग में अविनाशी नारायण देव दशरथ कुमार रामचन्द्र के रूप में (जनिष्यते) अवतीर्ण होंगे।

इस समय कलियुग चल रहा है, जिसके लगभग ५०६५ वर्ष बीते हैं। इससे पूर्व ८६४००० वर्ष का द्वापर बीत चुका है। त्रेता और द्वापर के सन्धिकाल की अवधि ६००० वर्ष थी। अर्थात् कलियुग के प्रारम्भ काल अर्थात् द्वापर के अन्त काल से राम रावण के काल तक लगभग ८७०००० (आठ लाख सत्तर हजार) वर्ष बीत चुके थे। इससे बहुत पूर्व पुलस्त्य ऋषि का शरीरान्त हो चुका था। विदुर जी महाभारत काल में थे। इस दशा में भागवतकार का यह कहना है कि पुलस्त्य के कहने पर नारद ने विदुर को भागवत सुनाया था। एक सर्वथा मिथ्या कल्पना है। पराशर उनके पुत्र व्यास तथा व्यास पुत्र विदुर यह सभी महाभारत कालीन विभूतियाँ थीं।

अब हम भागवतकार के दूसरे इस दावे पर विचार करते हैं कि भागवत को व्यास ने बनाया था। महर्षि वेदव्यास जी महाराज बड़े भारी विद्वान् थे। उनके रचे हुए ग्रन्थ जो आज भी उपलब्ध हैं उनके गहन पाण्डित्य का प्रमाण दे रहे हैं। अठारह पुराणों को जिनमें भागवत भी सम्मिलित है, देखकर कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह स्वीकार करने को तैयार नहीं होगा कि कोई भी पुराण व्यासजी महाराज का बनाया हुआ है। इस सम्बन्ध में पुराणों का यह दावा है कि—

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः ॥

(देवी भाग १।३।१)

अठारह पुराणों को सत्यवती पुत्र व्यास ने बनाया। पुराणकारों का मिथ्या दावा है। आज भी प्रत्येक व्यक्ति अपने नाम के साथ में महात्म्य सूचक शब्द स्वयं लगाना अनुचित अनुभव करता है। चाहे कोई अन्य व्यक्ति किसी के लिये कुछ भी लिख देवे। भागवत पुराण में—

श्रीमद्भागवते महामुनि कृते (भागवत स्कन्ध १ अध्याय १श्लोक २)अर्थात् महामुनि वेदव्यास जी कृत भागवत पुराण में।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

(भागवत १।२।४)

अर्थात्—नर-नारायण भगवान को, देवी सरस्वती को तथा व्यास जी को नमस्कार करके इस पुराण का पाठ करना चाहिये।

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितम् ।
उत्तम श्लोक चरितं चकार भगवानृषिः ॥

(भागवत १।३।४०)

अर्थात्—इस वेदों के समान भागवत पुराण को भगवान वेदव्यास ऋषि ने बनाया है। इस प्रकार के आत्म प्रशंसा एवं अपने ग्रन्थ की प्रशंसा के शब्द महर्षि वेदव्यास जी की अपनी लेखनी के नहीं हो सकते हैं। इस भाषा से ही स्पष्ट है कि पुराणों की रचना अन्य लोगों ने की है और उन्होंने पदे-पदे व्यास जी की प्रशंसा में वाक्य लिखे हैं ताकि जनता पर ग्रन्थ का प्रभाव पड़ सके और लोग उसकी ओर आकर्षित हो सकें।

'श्री मद्भागवते महामुनि कृते'

(भागवत १।१।२)

अर्थात् भागवत पुराण महामुनि वेदव्यासजी द्वारा बनाया गया है।

यह शब्द घोषित कर रहे हैं कि भागवत का बनाने वाला कोई अन्य व्यक्ति था जो उसे व्यासकृत घोषित कर रहा है। यदि ऐसा नहीं है तो क्या व्यासजी अपने को 'महामुनि' लिखने बैठे थे ? यदि अठारह पुराण व्यासकृत होते तो भागवत में सभी पुराणों की निन्दा करते हुए यह न लिखा गया होता कि–

"बहुत से शास्त्र और पुराण सुनने से क्या लाभ है, इससे तो (समय खराब होता है) भ्रम बढ़ता है। मुक्ति के लिए तो एकमात्र भागवत पुराण ही गरज रहा है।" महात्म्य ३।२८

"सन्तों की सभा में तभी तक दूसरे पुराणों की शोभा होती है जब तक सर्वश्रेष्ठ स्वयं भागवत पुराण के दर्शन नहीं होते हैं।" भागवत १२।१३।१४

ऊपर के प्रमाणों के श्लोक पीछे दिये गये हैं। यह श्लोक ही यह तथ्य प्रकट करते हैं कि सारे पुराण भिन्न-भिन्न लोगों की रचनायें हैं। इसीलिए एक पुराण दूसरे की निन्दा तथा अपनी प्रशंसा करता है। यह सम्भव नहीं है कि कोई भी एक लेखक और वह भी वेद-व्यास जैसे महा विद्वान् व्यक्ति स्वरचित ग्रन्थों में किसी एक की प्रशंसा और दूसरों की निन्दा कर सकें जब यह बात स्पष्ट है कि १८ पुराणों की रचना व्यास ने नहीं की, तो भागवत पुराण भी उनकी रचना नहीं है। इस विषय को अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध किया जा सकता है।

सन्दर्भ पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक 2476

भविष्य पुराण प्रति सर्ग पर्व खण्ड ३ अ० २८ में १८ पुराण बनाने वालों की पूरी सूची दी है जिसमें भागवत के बारे में निम्न श्लोक दिया है—

शुक्र प्रोक्तं भागवतं ब्राह्मं वै ब्रह्मणा कृतम् ।
गारुड़ं हरिणा प्रोक्तं षड वैसात्विक संभवाः ॥११॥

अर्थ—दैत्य गुरु शुक्राचार्य ने भागवत पुराण बनाया, ब्रह्मा ने ब्रह्म पुराण बनाया। गरुण पुराण हरि ने कहा। यह छः पुराण सात्विक हैं। इससे पूर्व विष्णु, स्कन्द, पद्म इन तीन पुराणों के कर्ताओं का उल्लेख इस श्लोक से पहिले हो चुका है। भविष्य पुराण के प्रमाण के अनुसार भी भागवत पुराण व्यासजी कृत न होकर शुक्राचार्य की रचना सिद्ध होती है। पुराणों के मानने वालों के लिए यह प्रमाण भी परममान्य होना चाहिए।

ऋषि दयानन्दजी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में "हिमाद्रि" ग्रंथ के प्रमाण के आधार पर भागवत का कर्ता वोपदेव पण्डित को घोषित किया है। बोपदेव और 'गीतगोविन्द का रचयिता जयदेव कवि ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुए थे। "मुगधव्याकरण" ग्रंथ को जिन्होंने देखा है वे स्पष्ट साक्षी देते हैं कि भागवत और "मुग्ध बौद्ध" व्याकरण उक्त दोनों ग्रन्थ एक ही पण्डित के बनाये ग्रंथ हैं। 'मगध बौद्ध' व्याकरण ग्रंथ पण्डित बोपदेव कृत है।

'कुल्लियात आर्य मुसाफिर' के लेखक पं० लेखरामजो के समय में जो सटीक देवी भागवत उपलब्ध था उसके टीकाकार ने ग्रंथ की भूमिका में स्पष्टता इस भागवत को बोपदेव की

कृति लिखा है, ऐसा पंडित लेखरामजी ने अपने उक्त ग्रन्थ में लिखा है।

सनातन धर्म के मान्य विद्वान् स्वर्गीय पण्डित अखिलानन्द जी ने भी भागवत को बोपदेव की रचना अपनी खोज के आधार पर निम्न श्लोक में स्वीकार किया था—

ये यं पुराण रचना मनुजैर्नवीना
विख्यापि तास्ति भुवने नरक प्रधाना।
सापी द्रश विषय भाव फलं प्रसूते
यत्प्राप्य मानव शरीर मिदं न यायात् ॥८५॥
ऋष्यादि सज्जन मिषेण नवानि तेषु
वाक्यानि वेद विधि भेदपराणि यत्नात्।
विन्यस्य पूर्व ऋषयोपि कलंक लिप्ताः
किंनो कृताः कपिलदेव मुखा विमूढैः॥८६॥
वेदान्त दर्शन करः क्व मुनीश्वरोसौ
व्यासः क्व भागवत् लेखक बोपदेवः।
मन्दैर मन्द चरितोपि समं प्रयुक्ता—
मन्देऽसमान रचना पटुभिपुराणैः ॥८७॥
यद्दर्शनादपि मतिर्विमतित्वमेति
चित्तं विकार मुपयाति वचोपिभेदम्।
सा दूरतः कवि जनैरल माशु हेया
सर्वा पुराण चरिता नुगता कथापि ॥९५।
(द० दि० सर्ग १०)

अर्थ—नरक में ले जाने वाली यह जो पुराणों की नवीन रचना मनुष्यों ने संसार में फैलाई है, वह ऐसा बुरा फल देती है जिसे प्राप्त करके मनुष्य कदापि मनुष्य जन्म नहीं पा सकता है ।८५। इन पुराणों में यत्नों से वेदों के विरुद्ध वचनों को नवीन रूप में रखकर नाना ऋषियों के नामों को कलंकित करने के लिये क्या मूर्खों ने बीड़ा नहीं उठाया है ? ।८६। वेदान्त दर्शन के बनाने वाले कहाँ महर्षि व्यासजी और कहां भागवत का बनाने वाला बोपदेव ! तथापि अल्पज्ञों ने दोनों की रचनाओं में भेद न जानकर बोपदेव की रचना को ही व्यासदेवजी के नाम से प्रसिद्ध कर दिया ।८७। जिनके दर्शनों से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, मन विकार को प्राप्त हो जाता है, वाणी मिथ्या दोषग्रस्त हो जाती है, ऐसे पुराणों को बुद्धिमान जन कदापि न देखें ।९५।

भागवत पुराण वैष्णव सम्प्रदाय द्वारा विष्णुकी भक्ति द्वारा श्रीकृष्ण के अवतार होने का प्रचार करके अपने सम्प्रदाय के विस्तार के लिए रचा गया है। भागवत कार व्यासजी को भागवत का कर्ता और उसके बनाने का उद्देश्य प्रकट करने के लिए एक कहानी गढ़ता है। वह लिखता है कि वेदों के विभाग और महाभारत बनाने के बाद भी व्यासजी का मन सन्तुष्ट न हुआ। वहाँ पर नारदजी आ गये उन्होंने व्यासजी को प्रेरणा दी—

नारद उवाच—

भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ।
येनेवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥८॥

त्वमात्मनाऽऽत्मान मवेह्यमोघदृक्

परस्य पुंस परमात्मनः कलाम् ।
अजं प्रजातं जगतः शिवायत—
न्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ।।२१।।

(भाग० १ । ५ ।)

सूत उवाच—

अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्ति योग मधोक्षजे ।
लोकस्या जानतो विद्वांश्चक्रै सात्वंत संहितायाम् ।।६।।
यस्यां श्रूयमाणायां कृष्णे परम पूरुषे ।
भक्ति रुत्पद्यते पुंसः शोक मोहभया पहा ।।७।।
स संहितां भागवतीं कृत्वा नुक्रम्य चात्मजम् ।
शुक मध्यापयामास निवृत्ति निरतं मुनिः ।८।।

(भाग० १।७।)

अर्थ—नारदजी ने कह—व्यासजी ! आपने भगवान् के निर्मल यश का प्रायः वर्णन नहीं किया । ऐसी मेरी मान्यता है कि जिससे भगवान् सन्तुष्ट नहीं होते, वह शास्त्र या ज्ञान अधूरा है ।८। व्यासजी ! आपकी दृष्टि अमोघ है, आप इस बात को जानिये कि आप पुरुषोत्तम भगवान् के कलावतार हैं । आपने अजन्मा होकर भी जगत के कल्याण के लिए जन्म ग्रहण किया है । इसलिए आप भविष्य रूप से भगवान की लीलाओं का कीर्तन कीजिए ।२१। (भा० १।५) सूत ने कहा—अनर्थों की शांति का साधन भक्ति-योग है । परन्तु संसार के लोग इस बात

को नहीं जानते। यही समझ कर उन्होंने इस परमहंसों की संहिता भागवत की रचना की।६। इसके सुनने मात्र से भगवान श्रीकृष्ण के प्रति परम प्रेममयी भक्ति हो जाती है जिससे जीवों के शोक, मोह, भय दूर हो जाते हैं।७। व्यास ने इस भागवत संहिता का निर्माण और पुनरावृत्ति करके इसे अपने निवृत्ति-परायण पुत्र शुकदेवजी को पढ़ाया।८। (भाग १।७)।

नारदजी तथा व्यासजी दोनों अवतार थे। पर व्यासजी को नारदजी ने आकर बताया था कि आप भी भगवान् के अवतार हैं अतः भगवान् के दूसरे अवतार कृष्णजी का गुण गान करें यह कैसी तमाशे की बात है। भागवत पुराण में श्रीकृष्णजी का गुणगान के साथ उनके पावन चरित्र पर सैकड़ों प्रकार के गन्दे लांछन लगाये गये हैं, उसमें अनेक असम्भव गप्पाष्टकों की भरमार है। उसमें वर्णित खगोल-भूगोल-ऐतिहासिक कथायें सर्वथा मिथ्या हैं। जिनका विवेचन आगामी अध्यायों में किया जावेगा। भागवत पुराण ने ब्रह्मा विष्णु-शिव आदि देवताओं को भी कलङ्कित किये बिना नहीं छोड़ा है। यदि भागवत आदि पुराणों की रचना न की गई होती तो आर्य जाति के निष्कलङ्क पूर्वजों के चरित्र कलङ्कित न किये जा सकते थे। भागवत की उपासना पद्धति वैदिक धर्म की विरोधी है। भागवत द्वारा कल्पित विष्णु का स्वरूप एवं मोक्ष प्राप्ति का साधन सभी मिथ्या है। महान् विद्वान् वेदव्यासजी की लेखनी से इस प्रकार का मिथ्या ग्रन्थ लिखा जाना त्रिकाल में भी सम्भव नहीं था। भागवत का मुख्य लक्ष्य वैरागियों के समान कर्मकाण्ड से जनता को हटा कर भगवद्भक्ति के नाम पर उसे निकम्मा बनाना रहा है। भागवत की दृष्टि में यज्ञ योग आदि व्यर्थ की बातें हैं। यज्ञों का फल केवल भागवत के पाठ से मिलने का दावा भागवत का

है। वेदों के स्वाध्याय, शास्त्रों के अध्ययन को भी भागवत पाठ के सामने निरर्थक माना गया है। यह स्पष्टतया वेद व अन्य शास्त्रों की निन्दा नहीं तो क्या है। यज्ञों से हटा कर जनता में से कर्मकाण्ड की रुचि नष्ट करना भागवतकार का स्पष्ट उद्देश्य रहा है। ईश्वर के स्थान पर श्रीकृष्ण या विलक्षण पुरुष विष्णु की भक्ति करना ईश्वर का खुला विरोध है। पापों एवं कलियुग में किये जाने वाले सम्पूर्ण दुष्कर्मों का प्रभाव केवल भागवत की ध्वनि सुनने से नष्ट हो जावेगा, सारे तीर्थों का महात्म्य, अश्वमेध जैसे महान् यज्ञों का फल भागवत जैसे मिथ्या ग्रन्थ के फल के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है, यह बात कौन बुद्धिमान व्यक्ति मान सकेगा। जिसने भागवत को पढ़ा होगा वह इन दावों को उन्माद रोगी के प्रलाप के समान ही स्वीकार करेगा। भूमण्डल का राज्य, अक्षयधन, ऋतम्भरा, प्रज्ञा यदि भागवत के पाठ से उसके दावे के अनुसार मिल सकती तो सारे पौराणिक भागवत के कथावाचक पण्डित महा विद्वान एवं कुबेर बने बैठे होते। भारत के पौराणिक क्षत्रियगण सभी चक्रवर्ती राजा बन जाते। भारत को यवनों व अँग्रेजों की गुलामी में न रहना पड़ता। यदि भागवत पढ़ने सुनने से पाप क्षय तथा मुक्ति मिल जाती तो भागवती कथावाचकों की भागवत समाप्ति पर तत्काल मृत्यु हो जानी चाहिये। पर हम देखते हैं कि यह सारी बातें, भागवत के सारे मिथ्या दावे, भोले लोगों को मूर्ख बनाने एवं वैष्णव सम्प्रदाय में प्रलोभन देकर फांसने के लिये किये गये कोरे जाल हैं। भागवतकार जानता था कि यदि वह इस ग्रन्थ को अपने नाम से प्रसिद्ध करेगा तो उसके जाल में कोई नहीं फँसेगा। अतः उसने महर्षि वेदव्यासजी के नाम से उसे प्रसिद्ध किया है। पर जाल रचते समय उसे यह ध्यान नहीं आया कि

जिन शुकदेवजी से उसने भागवत कथा परीक्षित को सुनाने का जाल रचा था वह शुकदेवजी महाभारत के अनुसार परीक्षित की मृत्यु से लगभग २५० वर्ष पूर्व ही मर चुके थे। वह यह नहीं जानता था कि उसकी कथा का यह आधार जब कट जावेगा तो उसका सारा जाल स्पष्ट हो जावेगा और सारी कथा मिथ्या, मन-गढ़न्त कहानी सिद्ध हो जावेगी। उसे यह भी ध्यान नहीं आया कि लगभग नौ लाख वर्ष पूर्व हुए पुलस्त्यजी को वह महाभारत कालीन विदुर को भागवत सुनाने को जिन्दा करके नहीं ला सकेगा। उसकी इस कल्पना की दीवार पर भी भागवत कथा का आधार नहीं खड़ा किया जा सकेगा। जब शुकदेवजी द्वारा कथा कहना ही असिद्ध हो जावेगा तो विचारे सूत का परीक्षित सभा में भागवत कथा सुनकर कहना भी कोरी गल्प स्पष्ट हो जावेगी।

जिन लोगों ने भागवत पुराण को आँखें खोल कर एक बार भी पढ़ा है व जानते हैं कि भागवत की क्या स्थिति है। इस साम्प्रदायिक वैष्णवी ग्रंथ को भागवतकार ने वेद एवं उपनिषदों का सार तथा वेदों के बराबर बताया है। इससे भागवतकार की दो बातें प्रगट होती हैं या तो उसने वेद व उपनिषदों को पढ़ा या समझा नहीं था, इससे वह इतनी अनर्गल बात लिख गया। अथवा जान बूझ कर वेद व उपनिषदों की ओर से जनता को मोड़ कर भागवत ही के परायण में तन्मय रहने के लिये उसने उसे बहकाया है। विश्व के ज्ञान विज्ञान के भंडार वेद एवं आध्यात्मिक ज्ञान के सागर उपनिषदों का सार सैकड़ों बेतुकी गल्पों के भंडार भागवत को बताना तथा वेदादि शास्त्रों के पठन-पाठन को भ्रमोत्पादक बताना यह भागवतकार के हृदय की निकृष्ट मनोवृत्ति का परिचायक है। साथ ह उसे 'नास्तिको

वेद निन्दकः' मनु के अनुसार घोर नास्तिक प्रमाणित करता है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भागवत पुराण लिखने के लिए जिस भूमिका को गढ़ कर कथा का आधार बनाया गया है वह शुकदेव परीक्षित कथा गलत है। उसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता है और न पुलस्त्य के कहने से मैत्रेय द्वारा विदुर को भागवत सुनाना ही सिद्ध हो सकता है। भागवत की रचना व्यासजी द्वारा भी संभव नहीं थी। भागवत स्क०१ अ० ३ में बौद्ध अवतार तथा जैन तीर्थंकर ऋषभदेव का वर्णन दिया है। बुद्धजी को हुए अब से ढ़ाई हजार वर्ष हुए हैं। अतः स्पष्ट है कि भागवत की रचना अब से ढ़ाई हजार वर्ष के इधर ही हुई है। जब कि व्यासजी को हुए ५ हजार वर्ष बीत चुके हैं। भागवत का महात्म्य भाग केवल जनता को भुलावे में डालने की एक चाल मात्र है। उसमें तथ्य कुछ भी नहीं है।

दूसरा अध्याय

भागवत और वैष्णव पन्थ

——*

भागवत ग्रन्थ तथा गीता वैष्णव पन्थ के प्रधान ग्रन्थ हैं। विष्णु इस सम्प्रदाय का उपास्य देवता है। विष्णु के भक्त वैष्णव कहे जाते हैं। इस सम्प्रदाय को उत्पत्ति के सम्बन्ध में स्वर्गीय महा विद्वान् श्री पं० रघुनन्दन शर्मा ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वैदिक सम्पत्ति' में कुछ वर्णन दिया है। उपयोगी होने से हम उसे अविकल यहाँ देते हैं।

"शैव धर्म और आसुर उपनिषद् के प्रचार से बौद्ध धर्म का नाश हो गया। किन्तु जो शूद्र बौद्ध हो कर अच्छी स्थिति में पहुँच चुके थे, वे हिन्दू धर्म में आने से शूद्र ही रह गये और उच्च जाति के लोगों द्वारा सताये जाने लगे। क्योंकि बौद्ध होकर शूद्रों ने द्विजातियों की समानता करना आरम्भ कर दिया था। इसलिए उच्च हिन्दुओं ने इन पर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया। वेद पढ़ने पर उनकी जिह्वा काटी जाने लगी और वेद

के सुनने से उनके कानों में गर्म सीसा डलवाया जाने लगा*। यही कारण है कि अब तक उनको अस्पृश्य बताकर रास्ता बन्द करना, उनकी छाया से परहेज करना और उनके साथ बोलने में भी संकोच करना मद्रास प्रान्त में ही प्रचिलित है, अन्यत्र नहीं। अगले समय में यह अत्याचार और भी अधिक भयंकर था। इस अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए नीच कुलोत्पन्न शठ कोपाचार्य आदि साधु पुरुष उद्योग कर रहे थे। उनमें अरब देश वासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न अलकजैन्ड्रिया विद्यालय का ग्रेजुएट यवनाचार्य आ मिला। इन सब ने मिलकर अत्याचारी स्मार्तों से पृथक हो कर बौद्ध और नवीन हिन्दुओं के कुछ-कुछ तत्व एकत्रित करके वैष्णव धर्म की नींव डाली। इसीलिए भागवत के महात्म्य अध्याय १ श्लोक ४८ के अनुसार भक्ति कहता है कि—

उत्पन्ना द्राविड़े साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित् क्वचित् महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतोगता॥

अर्थात्--मैं द्रविड़ देश में पैदा हुई, कर्णाटक में बढ़ी, थोड़ा बहुत महाराष्ट्र में भी बढ़ी और गुजरात में आकर वृद्ध हो गई।

* वेदान्त दर्शन १।३।३८ के 'श्रवणाध्ययन प्रतिषेधात्स्मृतेश्च' के भाष्य में शंकराचार्य कहते हैं कि 'अथास्य वेदमुपश्रण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्र प्रतिपूरणम्। उच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे हृदय विदारणम्। पद्युहवा एतद श्मशानं तस्मात् शूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्।' अर्थात् यदि शूद्र वेद को सुन ले तो उसके कानों में गर्म सीसा और लाख डाली जावे, यदि पढ़े तो जिह्वा काट ली जावे और यदि याद करे तो हृदय फाड़ डाला जावे, क्योंकि शूद्र श्मशान के तुल्य अपवित्र हैं, इसलिए उसके निकट खुद भी न जावे।

यहाँ भक्ति से अभिप्राय वैष्णव सम्प्रदाय से ही है। इसे सब से प्रथम मद्रास प्रान्त निवासी विष्णु स्वामी ने सन् ईसवी की तीसरी शताब्दी में चलाया था। परन्तु इसको इस सम्प्रदाय के दूसरे आचार्य रामानुजाचार्य ने रौनक दी। ये भी मद्रास में ही पैदा हुए और इन्होंने भी उसी प्रस्थानत्रयी का सहारा लिया वैष्णवों का तीसरा सम्प्रदाय निम्बार्क स्वामी ने चलाया। ये भी मद्रासी ही थे। इनका जन्म हैदराबाद राज्य के बेदर गाँव में हुआ, जिसे कोई-कोई वैदर्यपत्तन और पंडारपुर भी कहते हैं। वैष्णव धर्म का चौथा सम्प्रदाय बल्लभ सम्प्रदाय कहलाता है। यह भी मद्रास प्रान्त निवासी तैलङ्गी ब्राह्मणों से ही चला।

इन चारों के दार्शनिक सिद्धान्त भिन्न-भिन्न हैं। कोई द्वैत, कोई विशिष्टाद्वैत, कोई शुद्धाद्वैत और कोई द्वैताद्वैत के मानने वाले हैं। जिस प्रकार अद्वैत दर्शन का शैव सम्प्रदाय मद्रास प्रान्त से चला है, उसी तरह वैष्णव धर्म भी वहीं पर पैदा हुआ और उसको सभी शाखाओं के आचार्य वहीं के रहने वाले द्रविड़ ही हैं। रावणादि का वाम मार्ग, शंकराचार्य का शैव मत और वैष्णवों का भक्ति मार्ग द्रविणों से ही पैदा हुआ है। अर्थात् भारतवर्ष में द्वैत-अद्वैत आदि दार्शनिक और शैव वैष्णवादि जितने सम्प्रदाय हैं, उन सब की उत्पत्ति का स्थान मद्रास प्रान्त के द्राविणों के ही घर हैं। रामानुज वैष्णव होते हुए भी यज्ञों में पशुबध को मानते थे। यह बात उन्होंने स्पष्ट रूप से लिख दी है। अर्थात् मांस मद्य को यह समस्त सम्प्रदाय प्रवर्तक उसी तरह मानते आ रहे हैं जिस प्रकार पूर्व के रावणादि मानते थे। उसी तरह रावण की भग लिंग पूजा भी शङ्कराचार्य की शिव पार्वती होकर रामानुजाचार्य की लक्ष्मी नारायण बन कर अन्त में बल्लभाचार्य के द्वारा राधाकृष्ण हो गई। राधा-

कृष्ण व्यभिचार के देवता बने और उसी वाममार्ग का प्रचार होने लगा जो रावण के समय में था। जिस प्रकार स्त्री प्रसङ्ग के समय वाममार्गी कहते हैं कि 'अहम् भैरवस्त्वं भैरवी', उसी तरह बल्लभ कुल वाले भी कहते हैं 'कृष्णोऽहं भवतां राधा तावयोरस्तु संगमः' अर्थात् मैं कृष्ण हूँ तू राधा है मेरा तेरा संगम होता है। इनकी समस्त लीला का रहस्य इस मुकद्मे से खुलता है जिसका नाम 'महाराज लाइबल केस' है। यह प्रसिद्ध है कि बम्बई में इन के अत्याचारों से घबरा कर इनके शिष्यों ने ही इन पर एक मुकद्मा चलाया था। उसमें इन लोगों के इजहार हुए थे और उस पर हाईकोर्ट के जज ने जो फैसला सुनाया था, उस समस्त मिसिल को एक अंग्रेज ने पुस्तकाकार छाप दिया है। उसी का नाम 'महाराज लाइबल केस' है। यहाँ हम उसी का कुछ भाग लेकर थोड़ा-सा वर्णन करते हैं कि यह बल्लभ सम्प्रदाय वाममार्ग का ही रूपान्तर है। इस मुकद्मे में हाईकोर्ट के जज कहते हैं कि बल्लभ और उसका पिता लक्ष्मण दोनों तैलङ्गी ब्राह्मण हैं। बल्लभ एक नवीन सम्प्रदाय का संस्थापक हुआ है*। इन दोनों में जो पाशविक अत्याचार के लिए शास्त्र बना रखा है, उसको भी जजों ने इस प्रकार उद्धृत किया है :—

---

1. Laxman Bhatta (A Teling)the father of Vallabh and Vallabh himself were excommunicated by the Teling for founding a new sect.

2. Consequetly before he himself has enjoyed her, he should make over his own married wife (to the maharaja). After having got married he should, before having himself

तस्मादादौ स्वोपभोगात्पूर्वमेव सर्ववस्तूपदेनभार्या-पुत्रादिनामपि समर्पणं कर्तव्यं विवाहानंतरं स्वीपभोगे सर्व-कार्ये सर्वकार्य निमित्तोतत्कार्योपभोगी वस्तु समर्पणं कार्यं समर्पण कृत्वा पश्चात्तानितानि कार्याणि कर्तव्या-नीत्यर्थः ।

अर्थात्—वर को चाहिये कि अपनी सद्यो विवाहिता पत्नी को अपने भोग के पूर्व अपने महाराज के पास भेजे । भार्या पुत्र धनादि अर्पण करे । अर्थात् जिस-जिस भोग की जो-जो वस्तु

---

enjoyed his wife, make an offering of her (to the Maharaja) after which he should apply her to his own use.

3. It is the duty of the female members to love the Maharajas,with the aduldterive love and sexual Lust when so ever called upon or required by any of the latter so to do. Albeit such female members are or may unmarried maidens or wives of other men. Adultty with the Maharaja is not only enjoined but an absolute necassity without which no man can expect happiness in this world or bliss in the next. Acourse of bostial licentiousness in their beautitude of heaven, they (Maharajas) may be described as living incarnation of Satan.

(Maharaja Libel case)

हो उस-उस भोग की वह-वह वस्तु महाराज के पास भेजे। पाणिग्रहण संस्कार होने के बाद अपने संभोग के प्रथम वर अपनी बधू को महाराज के पास भेजे, पश्चात् अपने काम में लावे।' अन्त में हाईकोर्ट के जज ने लिखा है कि 'स्त्रियाँ चाहे अविवाहित कुमारी है या विवाहिता हो, उनका धर्म है कि वे महाराजों से उनकी इच्छानुसार प्रेम करे और विषय लालसा से मुहब्बत करें। महाराजों के साथ व्यभिचार करना केवल विहित ही नहीं है प्रत्युत वह अत्यन्त आवश्यक है। उसके बिना कोई भी लोक परलोक के सुख की आशा नहीं कर सकता। यह पाशविक व्यभिचार मार्ग ही उनके लिए स्वर्गीय सुख है। वे शैतान के जीवित अवतार हैं।"

इस तरह वैष्णव सम्प्रदाय भी वाममार्ग ही बन गया और अन्त में अपना आसुर रूप प्रगट कर दिया।

विद्वान् लेखक के उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि शैव, वाममार्ग, वैष्णव धर्म तथा उसकी शाखायें बल्लभ आदि सम्प्रदाय सभी का उद्गम द्राविणों से है। वैष्णव सम्प्रदाय का आदि प्रवर्तक विष्णुस्वामी नामक व्यक्ति तीसरी शताब्दी में हुआ था। यह व्यक्ति शूद्र कुलोत्पन्न शठकोप कंजर मुनिवाहन तथा विदेशी यावनाचार्य के समय में हुआ था। इस शूद्रों द्वारा प्रारम्भ किये गये नवीन सम्प्रदाय में मांस,मद्य,व्यभिचार यज्ञों में पशुबलि आदि का प्रचार अद्यावधि देखने में आता है। श्रीमद्भागवतपुराण भी इस प्रकार की गन्दी बातों के उल्लेख से मुक्त नहीं है। हम चन्द उदाहरणस्वरूप आगे उपस्थित करते हैं—

भागवत में मासाहार एवं यज्ञों में पशु बलि—

स एकदाष्टका श्राद्धे इक्ष्वाकुः सुतमादिशत्।
मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छमाचिरम् ॥६

तथेति सवनं गत्वा मृगान् हत्वा क्रियार्हणान् ।
श्रान्तो बभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः ॥७॥
(भाग० ९।६)

हरिश्चन्द्रोवाच

यद्दि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे इति ।
तथेति वरुणेनास्य पुत्रोजातस्तुरोहितः ॥९॥
जातः सुतो ह्यनेनाङ्गमां यजस्वेति सोऽब्रवोत् ।
यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्योभवेदिति ॥१०॥
(भागवत ९।७)

भगवान उवाच

अश्वो अयं नीयतां वत्स पितामह पशुस्तव ।
इमे च पितरो दग्धा गंगाम्भोऽर्हन्ति नेतरत् ॥२९
तं परिक्रम्य शिरसा प्रसाद्य हयमानयत् ।
सगरस्तेन पशुनाक्रतुशेषं समापयत् ॥३०॥
(भाग० ९।८)

आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि ।
विशसन्तु पशून् मेध्यान् भूत राजायमीढुषे । २६
(भाग० १०।३६)

चारन्तं मृगयां क्वापिहयमारुह्यसैन्धवम् ।
ह्रन्तंततः पशून् मेध्यान् परीतं यदुपुंगवैः ॥३५॥
(भाग० १०।६९)

अर्थ—राजा इक्ष्वाकु ने बड़े पुत्र को अष्टका श्राद्ध के समय आज्ञा दी—'विकुक्षे ! शीघ्र ही जा कर श्राद्ध के योग्य पवित्र पशुओं का मांस लाओ ।६।' विकुक्ष ने 'बहुत अच्छा' कह कर बन की यात्रा की । वहाँ उसने श्राद्ध के योग्य बहुत से पशुओं का शिकार किया । वह थक तो गया ही था, भूखा भी था, इसलिये यह बात भूल गया कि श्राद्ध के लिये मारे हुए पशुओं को स्वयं न खाना चाहिए । उसने एक खरगोश खा लिया ।७। (भा० ९।६) ।—यह प्रमाण श्राद्ध में मांस सिद्ध करता है । हरिश्चन्द्र ने वरुण से कहा महाराज ! यदि मेरे वीर पुत्र होगा तो उसी से मैं आपका यजन करूँगा । वरुण ने कहा—'ठीक है ।' तब वरुण की कृपा से हरिश्चन्द्र के रोहित नाम का पुत्र हुआ ।९। पुत्र होते ही वरुण ने आकर कहा—'हरिश्चन्द्र ! तुम्हें पुत्र प्राप्त हो गया । अब उसके द्वारा मेरा यज्ञ करो ।' हरिश्चन्द्र ने कहा—'जब आपका यह यज्ञ पशु रोहित दस दिन से अधिक का हो जायगा तब यज्ञ के योग्य होगा ।' (भा० ९।७) यह प्रमाण मनुष्यों को यज्ञ में बलि देने की प्रथा का समर्थन करता है । भगवान ने कहा—'बेटा ! यह घोड़ा तुम्हारे पिता का यज्ञ पशु है । इसे तुम ले जाओ । तुम्हारे जले हुए पिता का उद्धार केवल गङ्गाजल से होगा । और कोई उपाय नहीं है ।२९।' अंशुमान ने बड़ी नम्रता से उन्हें प्रसन्न करके उनकी परिक्रमा की और वे घोड़े को ले आये । सगर ने उस यज्ञ पशु (घोड़ा) के द्वारा यज्ञ की शेष क्रिया समाप्त की ।३०। (भा० ९।८) । कंस ने कहा—इसी चतुर्दशी को विधिपूर्वक धनुषयज्ञ प्रारम्भ कर दो और उसकी सफलता के लिए वरदानी भूतनाथ भैरव को बहुत से पवित्र पशुओं की बलि चढ़ाओ ।२६। (भा० १०।३६) नारदजी ने देखा कि श्रीकृष्णजी 'कहीं श्रेष्ठ यादवों से घिरे हुए

सिन्धु देशीय घोड़े पर चढ़ कर मृगया कर रहे हैं और उसमें यज्ञ के लिये मेध्य पशुओं का ही बध कर रहे हैं।३१। (भा० १०। ६९)—यह प्रमाण भी यज्ञों में घोड़ा व अन्यवन्य पशुओं की वैष्णवी पौराणिक बलि प्रथा का समर्थन करता है।

इसी प्रसङ्ग में वैष्णव सम्प्रदाय के दूसरे मुख्य पुराण 'विष्णु पुराण' कभी एक उद्धरण देना आप्रासङ्गिक न होगा। उसमें भी मांसाहार को श्राद्धकर्म में विहित बताते हुए लिखा है :—

हविष्य मत्स्य मांसैस्तु शशस्य नकुलस्य च।
सौकरच्छागलैणेयरौर वैर्गवयेन च ॥१॥

औरभ्र गव्यैश्च तथा मांसवृद्धया पितामहाः।
प्रयान्ति तृप्तिं मांसैस्तु नित्यं वार्ध्रीणसामिषैः ॥२॥

खड्ग मांसमतीवात्र काल शाकं तथा मधु।
शस्तानि कर्मण्यत्यन्ततृप्तिदानि नरेश्वर ॥३॥

गया मुपेत्य यः श्राद्धं करोति पृथ्वीपते।
सफलं तज्जन्म जायते पितृतुष्टिदम् ॥४॥

(विष्णु पुराण ३।१६)

अर्थ—हवि, मत्स्य, खरगोश, नकुल, शूकर, छाग, कस्तूरिया मृग, गाय और मेष के मांसों से पितृगण क्रमशः एक-एक मांस अधिक तृप्ति लाभ करते हैं तथा वार्धीणस पक्षी के मांस से सदा तृप्त रहते हैं।१-२। हे नरेश्वर! श्राद्धकर्म में गैंडे का मांस, काल शाक और मधु अत्यन्त प्रशस्त और अत्यन्त तृप्तिदायक है। हे पृथ्वीपते! जो पुरुष गया में जाकर श्राद्ध करता

है, उसका पितरों को तृप्ति देने वाला यह जन्म सफल हो जाता है ॥४॥

ऊपर के दृष्टान्त रूप से दिये गये प्रमाणों से यह प्रगट हो जाता है कि वैष्णव सम्प्रदाय में मांसाहार, यज्ञों में पशुओं तथा मनुष्यों की बलि देना, श्राद्ध-कर्म में मांस भक्षण यह सब विहित कर्म रहे हैं। यह निकृष्ट कर्म यह बात प्रमाणित करते हैं कि वैष्णव धर्म का प्रारम्भ शूद्र माँसाहारियों के द्वारा हुआ है, जिनमें मद्य मांस आदि को प्रधानता सर्वत्र पाई जाती है। यद्यपि कुछ लोगों ने भागवत पुराण में मांसाहार निषेध के कुछ प्रमाण भी प्रक्षिप्त कर दिये हैं किन्तु उनसे वैष्णवों के मांसाहारी होने के प्रमाण पर परदा नहीं डाला जा सकता है।

मांस भक्षण तथा यज्ञों में बलि देने के समान ही शराब सेवन के भी स्पष्ट प्रमाण भागवतादि ग्रन्थों में मिलते हैं।

अवतार बलरामजी का शराब पीना

तत्रापश्यद् यदुपतिं रामंपुष्करमालिनम्।
सुदर्शनीयं सर्वाङ्गं ललना यूथ मध्यगम् ॥९॥
गायन्तं वारुणीं पीत्वा मद विह्वललोचनम्।
विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥१०॥
(भा० १०।६७)

अर्थ—वहाँ उसने देखा कि यदुवंश शिरोमणि बलरामजी सुन्दर-सुन्दर युवतियों के झुण्ड में विराजमान हैं। उनका अंग अंग अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय है और वक्षस्थल पर कमलों की माला लटक रही है ।९। वे शराब पीकर मधुर गाना गा रहे हैं और उनके नेत्र शराब के नशे से विह्वल हो रहे हैं। वे इस

प्रकार वहाँ शोभित हो रहे थे—मानों कोई मदमस्त हाथी वहाँ हो ।१०।

विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणु भिरिवेभराट् ॥२८॥

अर्थात्—बलरामजी गोपियों के साथ इस प्रकार (यमुना) जल में क्रीड़ा करने लगे जैसे—मस्त हाथी हथिनियों के साथ क्रीड़ा करता है।

एवं सर्वा निशायाता एकेव रमतो व्रजे।
रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥३२॥
(भा० १०।६५)

अर्थ—बलरामजी को व्रज में गोपियों के साथ इस प्रकार बिहार करते हुए बहुत-सी रातें एक रात के समान बीत गईं। अर्थात् गोपी विलास में इस कदर तन्मय हो गये।

रात को नित्य शराब पी-पी कर पर-स्त्रियों (गोपियों) के साथ जल-थल में क्रीड़ा रमण करना क्या यह पौराणिक अवतार बलराम के चरित्र पर कलङ्क नहीं है ?

क्या इससे यह स्पष्ट नहीं है कि वैष्णवी अवतार शराबी व पर-स्त्रीगामी थे। क्या वाम मार्ग के भैरवी चक्र और रात को शराबें पीकर गोपियों से एकान्त क्रीड़ा करने में समानता नहीं है ? और यही समानता क्या इस भागवत के वैष्णव धर्म को वाम मार्ग का ही एक स्वरूप सिद्ध नहीं करती है ?

अब हम इसी प्रकार भागवत के मुख्य अवतार श्रीकृष्ण जी का शराब पीना भी दिखाते हैं:—

पत्नियों सहित श्रीकृष्ण का शराब पीना

पद्म पुराण सृष्टि खण्ड अ० २३ तथा भविष्य पुराण

ब्राह्म पर्व अ० ७३ व उत्तर पर्व अ० १११ में वर्णन आता है कि एक दिन सरोवर के किनारे बाग में श्रीकृष्णजी मय सोलह सहस्र पत्नियों के शराब पी रहे थे। शराब के नशे का औरतों पर गहरा रङ्ग चढ़ गया। उसी समय नारदजी ने साम्ब (कृष्ण के पुत्र) को वहाँ भेजा। साम्ब की सुन्दरता देख कर सारी कृष्ण पत्नियां (साम्ब की मातायें) उस पर कामासक्त हो गईं और उनका रजःपात हो गया जिससे उनके पैर-वस्त्र तक भीग गये। वहाँ नारदजी गये। वे स्त्रियाँ खड़ी हो गईं। श्रीकृष्ण ने यह देख कर कि वे साम्ब (पुत्र) पर कामासक्त हो गई हैं, उन्हें शाप दिया कि तुमको चोर हर ले जावेंगे। तुम वेश्या बन जाओगी, इत्यादि--

तत्पश्चात् उनको वेश्याओं का धर्म पढ़ाया गया कि-- गरीबों से बात न करना, मालदारों से पैसा ऐंठना आदि। पुराण जानने वाले पण्डित को घर पर बुलाना। रविवार को उसकी पूजा करना, सोना, धन आदि खूब भेंट करना तथा बिना फीस लिये उसके साथ विषयभोग करके उसे तृप्त किया करना। यदि वह पण्डित किसी अन्य अपने मित्र की सिफारिश कर दे तो उससे भी बिना फीस रति करा लेना, इससे तुमको सीधा विष्णु लोक (कृष्ण लोक) मिलेगा। निम्न चन्द श्लोक देखने योग्य हैं:—

तस्मिन्स रमते देवः स्त्रीभिः परिवृतस्तदा।
हार नूपुर केयूर रशनाद्यैर्विभूषणैः ॥२०॥

भूषितानां वर स्त्रीणां चार्वङ्गीनां विशेषतः।
ताभिः संपीयते पानं शुभ गन्धान्वितम् शुभम् ॥२१॥

एतस्मिन्नंतरे बुद्धा मद्यपानात्ततः स्त्रियः ।
उवाच नारदः साम्बं साम्बोत्तिष्ठ कुमारक ॥२२॥
त्वां ससाह्वायते देवो न युक्तं स्थातुमत्रते ॥२३॥
गत्वातु सत्वरं साम्बः प्रणाम मकरोत्प्रभोः ॥२४॥
एतस्मिन्नंतरे तत्रयास्तु वै स्वल्पसात्त्विकाः ।
तं दृस्ट्वा सुन्दरं साम्बं सर्वाश्चुक्षुभिरे स्त्रियः ॥२५॥
मद्यदोषात्ततस्तासां स्मृतिलोपात्तथा नृप ॥२६॥
स्वभाव तोल्यसत्त्वानां जघनानिविसुस्रवुः ॥२७॥
नारदोप्यथ तं सांबं प्रेषयित्वा त्वरान्वितः ।
आजगामाथ तत्रैव साम्बस्यानुपदेन तु ॥३२॥
आयातं ताश्व तं दृष्ट्वा प्रियं सौमन समृषिम् ।
सहसैवोत्थिताः सर्वाः स्त्रियस्तं मदविह्वलाः ॥३३॥
तासामतोत्थितानां तु वासुदेवस्य पश्यतः ।
भित्वा वासांसि शुभ्राणि पत्रेषु पतितानि तु ॥३४॥
ता द्रष्ट्वा तु हरिः क्रुद्धः सर्वास्ता शप्तवान्स्त्रियः॥३५॥
पति लोक परिभ्रष्टाः स्वर्ग मार्गात्तथैव च ।
भूत्वा चा शरणा यूयं दस्यु हस्तं गमिष्यथ ॥३७॥

(भविष्य पु० ब्राह्मपर्व अ० ७३)

भावार्थ—अपनी सोलह सहस्र परम सुन्दरी पत्नियों के साथ जो हार-नूपुर-बाजूबन्द आदि पहिने थीं श्रीकृष्णजी रमण कर

रहे थे तथा उनके साथ सुगन्धित शराब पी रहे थे। उस समय नारदजी वहाँ गये और साम्ब से कहा कि तुमको कृष्णजी बुला रहे हैं तुम वहाँ जाओ। साम्ब वहाँ गया और उसने श्रीकृष्णजी को प्रणाम किया। साम्ब की सुन्दरता को देख कर स्त्रियाँ उस पर आसक्त हो गईं। शराब पीने से उनकी बुद्धि (स्मृति) नष्ट हो गई थी। उनकी रज.पात होने से जंघायें भीग गई थीं। तभी नारदजी वहाँ जा पहुँचे। उनको देख कर सभी स्त्रियाँ उनका सत्कार करने को उठ कर खड़ी हो गईं। तब श्रीकृष्णजी ने देखा कि उनका रजःश्वेत वस्त्रों को पार करके आसनों पर भी गिरा है। यह देख कर श्रीकृष्णजी को क्रोध आ गया और उन्होंने उन स्त्रियों को शाप दे दिया कि तुम पतिलोक और स्वर्ग के मार्ग से भ्रष्ट हो जाओ और चोर तुमको हर ले जावें (अथवा तुम दस्युओं के हाथों में पड़ जाओ।)

वेश्या धर्मेण वर्तध्वमधुना नृपमन्दिरे ॥२२॥
नचैकस्मिन्नृतिः कार्याः पुरुषे धन वर्जिते ॥२५॥
सुरुपो वा विरुपो वा द्रव्यं तत्रप्रयोजनम् ॥२६॥
अत्र चाह्य धर्मज्ञं ब्राह्मणं वेद(पुराण)पारगम् ॥४२॥
यथेष्टा हारमुक्तं च तमेव द्विज सत्तमम् ।
रत्यर्थं कामदेवोऽयमिति चित्तेऽवधार्य च ॥४४॥
यद्यदिच्छति विप्रेन्द्रस्तत्तत्कुर्या द्विलासिनी ।
सर्व भावेन चात्मानमर्प येत्स्मतिभाषिणी ॥४५॥
एवमादित्यवारेण सदा तद्व्रतमाचरेत् ॥४६॥

ततः प्रभृति योऽन्योपि रत्यर्थं गृहमागतः ।
स सम्यक् सूर्यवारेण सयं पूज्यो यथेच्छया ॥५५॥
एक मेव द्विजं शान्तं पुराणं विचक्षणम् ।
तमर्चयेत च सदा अपरं वा तदाज्ञया ॥५६॥

करोति या शेषमखण्डमेत
त्कल्याणिनी माधव लोक संख्या ।
सा पूजिता देव गणैरशेषै
रानंद कृत्स्थान मुपैति विष्णोः॥६२॥
(भविष्य पु० उत्तर पर्व अ० १११)

अर्थात्—तुम आज से रण्डो के धर्म का पालन करते हुए राज मन्दिर में निवास करो। निर्धन आदमो से तुमको कोई सरोकार न होगा। सुन्दर या बदसूरत कोई भी आदमी आवे तुमको उससे माल जोतना चाहिए। किसी धर्मज्ञ पुराण जानने वाले पौराणिक पण्डित को बुलाना। इतवार का दिन हो। उसे खूब माल खिला कर तृप्त करना। उसके मन में विषय भोग की तीव्र लालसा पैदा होने पर जैसे-जैसे वह तुमसे कहे (बिना फीस) तुम वसे ही रतिक्रिया उससे कराना और सर्वतोभावेन अपने को उसके समर्पित कर देना। हर रविवार को तुम ऐसे ही किया करना तथा यदि कोई और भो उस दिन विषय की लालसा से आवे (या पण्डितजी उसकी सिफारिश कर दें) तो उसकी भी तबियत रति करा कर रख दिया करना। एक विद्वान् पण्डित को सन्तुष्ट कर देने से, उसकी अर्चना, सेवा करने व उसकी आज्ञा पालन करने से रण्डियों का कल्याण होगा और उनकी

देवता लोग पूजा करेंगे। उनको श्रीकृष्णजी का लोक (विष्णु लोक) बैकुण्ठ प्राप्त हो जावेगा।

बलरामजी ने शराब पीकर गोपियों के साथ रातों में विलास, व्यभिचार किया या नहीं, श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज के १६१०८ पत्नियां थीं या नहीं, उन्होंने शराब पी या नहीं तथा शराब औरतों को भी पिला कर गत पृष्ठों में उल्लिखित पुराणोक्त घटना के अनुसार अपनी १६००० पत्नियों को शाप देकर वेश्या बनाया या नहीं यह प्रथक बात है। हम तो इन बातों को मिथ्या मानते हैं। परन्तु भागवतादि पुराणों ने उनको शराबी, पर-स्त्रीगामी लिख कर एवं मांसाहार तथा यज्ञों में पशु बलि का विधान करके वैष्णव धर्म के वाम मार्ग से उत्पन्न होने की बात को प्रमाणित कर दिया है। वैदिक धर्म में शराब व मांसाहार अथवा यज्ञों में पशु बलि की कोई व्यवस्था नहीं है। आर्य जाति वेद के धर्म की मानने वाली है। यदि वैष्णव धर्म का मूल वैदिक धर्म होता तो इस प्रकार की गन्दी बातें वैष्णव धर्म के ग्रन्थों में देखने को न मिल सकती थीं।

इस मत के आदि प्रवर्तक विष्णु स्वामी ने अपने मत को अपने ही नाम पर 'वैष्णव मत' के नाम से चलाया था। विष्णु स्वामी को ही वैष्णव मत का परमात्मा विष्णु कल्पित किया गया। उसकी चतुर्भुजी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी विलक्षण मूर्ति विष्णु स्वामी के ही मानव शरीर के आकार की कल्पित की गई। विष्णु स्वामी की पत्नी का नाम भी सम्भवतः लक्ष्मी देवी रहा होगा। उसी आधार पर लक्ष्मी और विष्णु की कल्पना पत्नी और पति के रूप में की गई है। मनुष्यों को यह बतलाया गया कि विष्णु भगवान इस पृथ्वी से बहुत ऊँचे स्थान पर विष्णु लोक में रहते हैं। वे दुष्टों के विनाश तथा धर्म की रक्षा

के लिये पृथ्वी पर अवतार लिया करते हैं और मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा श्रीकृष्ण आदि भारतीय महापुरुष वास्तव में उन्हीं विष्णु के अवतार थे। इस सम्प्रदाय का उद्भव क्योंकि द्रविड़ों एवं अछूत मानी जाने वाली जातियों के पुरुषों शठकोप-कंजर यावनाचार्य आदि से हुआ, अतः मद्य-मांस आदि के सेवन को वैध बनाने के लिये उन लोगों ने अथवा उनके सम्प्रदाय के बाद के लोगों ने राम व कृष्ण के जीवन की घटनाओं में भी इन अपवित्र चीजों का सेवन घुसेड़ कर 'महाजनो येनगतः स पन्थाः।' अर्थात् 'महापुरुष जो कार्य करें वही धर्म माना जाता है।' इस उक्ति के अनुसार इन खुराफातों को भी धर्म सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। अन्यथा क्या आवश्यकता थी कि बलराम तथा कृष्ण के पावन जीवन चरित्रों में इन गंदी बातों का समावेश पुराणों में किया जाता। हम आगे किसी अध्याय में यह दिखावेंगे कि व्यभिचार–पर-स्त्री गमन, बहु-पत्नीत्व एवं नारीहरण की गंदी प्रथाओं को भी वैध बनाने के लिये इन बातों को महापुरुषों के जीवन-चरित्रों में प्रविष्ट (प्रक्षिप्त) करके उन लोगों ने अपनी शूद्रत्व की मान्यताओं का समर्थन कराने का प्रयास किया है। तथा पुराणों के अध्याय के अध्याय इन गंदी बातों से भरे पड़े हैं।

तीसरा अध्याय

विष्णु का स्वरूप तथा उसकी उपासना विधि

—०—

शैव मत वालों ने त्रिशूलधारी, गले में सर्प पहनने वाले, मस्तक पर अर्ध चन्द्र धारण किये नन्दी बैल की सवारी वाले पार्वती पति शिवजी की मूर्ति (आकृति) के ध्यान करने का विधान किया है। बौद्धों ने शान्तपूर्वक बैठे हुए ध्यानावस्थित बुद्ध की मूर्ति का चिन्तन करने की व्यवस्था की है, वहाँ वैष्णव ग्रन्थों में विष्णुजी की मूर्ति (आकृति) के ध्यान करने की व्यवस्था की गई है। श्रीमद्भागवत पुराण में विष्णु के स्वरूप का निम्न प्रकार उल्लेख किया गया है:—

कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्बाष्टभहाभुजः।
चक्रशङ्खासिचर्मेषुधनुः पाशगदाधरः ॥३६॥
पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेच्छणः।
बनमाला निवीताङ्गो लसच्छ्रीवत्स कौस्तुभः ॥३७॥
महा किरोट कटकः स्फुरन्मकर कुण्डलः।
काञ्च्यङ्गुलीयवलय् नूपुराङ्गदभूषितः ॥३८॥
(भा० ६।४)

अर्थ—भगवान गरुड़ के कन्धों पर चरण रखते हैं। विशाल एवं हृष्ट-पुष्ट आठ भुजायें हैं, उनमें शङ्ख, चक्र, तलवार ढाल, बाण, धनुष, पाश और गदा धारण किये हुए हैं।३६। वर्षाकालीन मेघ के समान श्यामल शरीर पर पीताम्बर फहराता है, मुखमण्डल प्रफुल्लित है, नेत्रों से प्रसाद की वर्षा होती है। घुटनों तक वनमाला लटकती है। वक्षस्थल पर सुनहरी रेखा और गले में कौस्तुभमणि जगमगाती है।३७। बहुमूल्य किरीट, कङ्कन, मकराकृति कुण्डल, कमर में करधनी, अंगूठी, कड़े, नूपुर (बिछुए) और बाजूबन्द अपने-अपने स्थान पर अङ्गों में सुशोभित हैं।३८।

विष्णु के इस स्वरूप का ध्यान किस प्रकार करना चाहिये, इस पर भागवत ने प्रकाश डाला है। गीताकार ने भी नेत्रों को खोल कर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि को केन्द्रित करके ध्यान करने का आदेश दिया है। यथा—

सम कायं शिरो ग्रीवंधारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं एवं दिशश्चानवलोकयन्॥
(गीता ६।१३)

अर्थ—काया-शिर और ग्रीवा को समान और अचल धारण किये हुए दृढ़ होकर अपनी नाक के अग्र भाग को देख कर अन्य दिशाओं को न देखता हुआ (मुझ में परायण होवे)।

अन्यत्र भी इसी प्रकार भागवतकार ने भी नासाग्र भाग पर दृष्टि जमा कर ध्यान करने को लिखा है।

यदा मनः स्वं विरजं योगन सुसमाहितम्।
काष्टां भगवतोध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः॥
(भा० ३।२८।१२)

अर्थ—जब चित्त योग से निर्मल एकाग्र हो जाय तब नासिका के अग्रभाग में दृष्टि जमा कर इस प्रकार भगवान की मूर्ति का ध्यान करे।

प्राणपानौ सन्निरुंध्यात् पूरकुम्भक रेचकैः।
यावन्मनस्त्यजेत् कामान् स्व नासाग्र निरीक्षणः॥
(भा० ७।१५।३२)

अर्थ—जब तक मन एकाग्र न हो जावे तब तक नाक के अग्र भाग पर दृष्टि जमा कर पूरक-कुम्भक तथा रेचक प्राण तथा अपान की गति रोक दे।

एक अन्य स्थान पर भागवत में विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति की नासिकाग्र पर दृष्टि जमा कर ध्यान करने का निम्न प्रकार बतलाया है:—

सम आसन् आसीनः समकायो यथा सुखम्।
हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः॥३२॥
प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूर कुम्भक रेचकै।
विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः॥३३॥
हृदयविच्छिन्नमोङ्कारं घन्टानादं बिसोर्णवत्।
प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम्॥३४॥
एवं प्रणव संयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत्।
दश कृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग् जितानिलः॥३५॥
हृत्पुण्डरीकमन्तः स्थमूर्ध्वनालमधोमुखम्।
ध्यात्वोर्ध्वं मुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम्॥३६॥

कर्णिकायां न्यसेत् सूर्य सोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ।
वन्हि मध्ये स्मरेद्रुपं ममैतद ध्यानमङ्गलम् ॥३७॥

समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घचारु चतुर्भुजम् ।
सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥३८॥

समान कर्ण विन्यस्तस्फुरन्मकर कुण्डलम् ।
हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्स श्रीनिकेतनम् ॥३९॥

शङ्ख चक्र गदा पद्म वनमाला विभूषितम् ।
नूपुरैर्विल सत्पादं कौस्तुभ प्रभया युतम् ॥४०॥

द्युमत्किरीटकटक कटि सूत्राङ्गदायुतम् ।
सर्वाङ्ग सुन्दरं हृदयं प्रसाद सुमुखेक्षणम् ।
सुकुमारमभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनो दधत् ॥४१॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः ।
बुद्धया सारथिनाधीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥४२॥

तत्सर्व व्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ।
नान्यानि चिन्तयेद् भूयः सुस्मितंभावयेन्मुखम् ॥४३॥

तत्रलब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्निधारयेत् ।
तच्चत्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि न चिन्तयेत् ॥४४॥
(भा० ११।१४)

अर्थ—श्रीकृष्ण ने कहा—सम आसन पर शरीर को सीधा रख कर आराम से बैठ जाय, दोनों हाथों को अपनी गोद में

रख ले और दृष्टि अपनी नासिका के अग्रभाग पर जमावें ।३२। तत्पश्चात् पूरक-कुम्भक और रेचक प्राणायामों के द्वारा नाड़ियों का शोधन करे । प्राणायाम का अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये और साथ में इन्द्रियों को जीतने का अभ्यास करना चाहिये ।३३। हृदय कमल नाल गत पतले सूत के समान ॐकार का चिन्तन करे । प्राण के द्वारा उसे ऊपर ले जाय और उसमें घण्टानाद के समान स्वर स्थिर करे ।३४। प्रति दिन तीन समय दस-दस बार ओंकार सहित प्राणायाम का अभ्यास करे । इस प्रकार एक माह में प्राणवायु वश में हो जाता है ।३५। इसके बाद ऐसा चिन्तन करे कि हृदय एक कमल है जिसकी डण्डी ऊपर की ओर है और मुख नीचे की ओर है । उसका मुख ऊपर की ओर होकर खिल गया है, उसमें आठ पङ्खड़ियाँ हैं और उसके बीच में पीली सुकुमार गद्दी (कर्णिका) है ।३६। गद्दी पर क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि की कल्पना करे । फिर अग्नि के अन्दर मेरे इस रूप का ध्यान करे । मेरा यह स्वरूप ध्यान करने के लिये अत्यन्त मङ्गलमय है ।३७। मेरे अङ्ग की गठन सुडौल है, शान्तिदायक है, मुख सुन्दर है, चार बाहें दीर्घ हैं, व घुटनों तक हैं । सुन्दर मनोहर गरदन है । मरकतमणि के समान सुन्दर स्निग्ध कपोल हैं । मुख पर मुसकान की सुन्दर छटा है । दोनों कान बराबर हैं, उनमें मकराकृति के कुण्डल शोभायमान हैं । मेघ के समान श्यामल मेरे शरीर पर पीताम्बर है । श्रीवत्स एवं लक्ष्मीजी सीने पर विराजमान हैं । हाथ में शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म विद्यमान हैं । गले में वनमाला लटक रही है । चरणों में नूपुर (बिछुए) तथा गले में कौस्तुभ मणि जगमगा रही है । अपने-अपने स्थान पर चमकते हुए किरीट, कङ्कन, करधनी और बाजूबन्द शोभायमान हो रहे हैं । मेरा

प्रत्येक अङ्ग अत्यन्त सुन्दर एवं हृदयग्राही है। मेरा सुन्दर मुख और प्रेम भरी चितवन कृपा प्रसाद की वर्षा कर रही है। मेरे इस सुकुमार रूप का ध्यान करना चाहिये और अपने मन को मेरे सर्वाङ्ग में लगाना चाहिये ।३८।४१। बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से खींच कर मन को बुद्धि रूप सारथी की सहायता से मुझ में ही लगा दे, चाहे मेरे किसी भी अङ्ग में क्यों न लगे ।४२। जब सारे शरीर का ध्यान होने लगे तो चित्त को एक स्थान में स्थिर करे। अन्य अङ्गों का ध्यान न करके मेरे मुख का ही चिन्तन करे ।४३। जब चित्त मुख में ठहर जाय तो वहाँ से हटा के आकाश में स्थिर करे। फिर वहाँ से ही हटा कर मेरे स्वरूप में आरूढ़ हो जाय। मेरे सिवाय किसी भी वस्तु का चिन्तन न करे ।४४।

इसी प्रकार विष्णु के स्वरूप का ध्यान करने की विधि भागवत स्कन्द ३ अ० २८ में भी बतलाई गई है। वहाँ लिखा है कि भगवान के चरणों का प्रथम ध्यान करे। फिर उनकी पिंडलियों-जांघों का ध्यान करें। फिर उदर में स्थित नाभि सरोवर का ध्यान करे। फिर उनके दोनों स्तनों का ध्यान करे। उसके बाद उनके वक्षस्थल का ध्यान करे। तत्पश्चात् उनके गले का ध्यान करें। पश्चात् उनकी चारों भुजाओं का ध्यान करें। बाद को सुदर्शन-चक्र, शङ्ख का ध्यान करे। फिर विपक्षी वीरों के रुधिर से सनी हुई गदा का, फिर वनमाला का तथा उसके बाद उनके गले की कौस्तुभ मणि का ध्यान करें। बाद को उनके मुँह का, फिर नाक का ध्यान करे। फिर उनकी मनोहर चितवन का ध्यान करे। तत्पश्चात् उनकी भ्रकुटी का ध्यान करें। इसके बाद उनके हँसने का ध्यान करे। उसके बाद

उनके अतिरिक्त किसी अन्य का ध्यान न करे। २१ से ३३। भा० ३।२८।

श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनंमम् ॥२०॥
आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गै रभिवन्दनम् ।
मद्भक्त पूजाभ्यधिका सर्व भूतेषुमन्मतिः ॥२१॥
मदर्थेष्वङ्गचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ।
मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥२२॥
मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद् व्रतं तपः ॥२३॥
एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्म निवेदनाम् ।
मयि संजायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ॥२४॥

(भा० ११।१९)

अर्थ—जो मेरी भक्ति प्राप्त करना चाहता हो, वह मेरी अमृतमयो कथा में श्रद्धा रखे, निरन्तर मेरे गुण, लीला और नामों का संकीर्तन करे, मेरी पूजा में अत्यन्त निष्ठा रखे और स्तोत्रों द्वारा मेरी स्तुति करे।२०। मेरी सेवा पूजा में प्रेम रखे और सामने साष्टाङ्ग लोट कर प्रणाम करे। मेरे भक्तों की पूजा मेरी पूजा से बढ़ कर करे और समस्त प्राणियों में मुझे ही देखे।२१। अपने अङ्गों की चेष्टा मेरे ही लिये करे, वाणी से रा ही गुणगान करे और अपना मन भी मुझे ही अर्पित कर दे तथा सारी कामनाऐं छोड़ दे।२२। मेरे लिये धन, भोग और

सुख भी परित्याग कर दे और जो कुछ यज्ञ-दान-हवन-जप-तप-व्रत किया जाय वह सब मेरे ही लिये करे।२३। उद्धवजी ! जो मनुष्य इन धर्मों का पालन करते हैं और मेरे प्रति आत्म-निवेदन कर देते हैं, उनके हृदय में मेरी प्रेममयी भक्ति का उदय होता है और जिसे मेरी भक्ति प्राप्त हो गई उसके लिये और किस वस्तु का प्राप्त होना शेष रह जाता है।२४।

श्रीकृष्णजी को वैष्णव सम्प्रदाय विष्णु का अवतार मानता है। सम्पूर्ण २३ अवतार विष्णु के ही माने गये हैं। उपरोक्त भागवत के उद्धरणों में श्रीकृष्णजी ने अपने विष्णु स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए अपनी उपासना का प्रकार एवं उसकी महत्ता प्रगट की है। हमें देखना है कि वैष्ण मत वालों की उपरोक्त उपासना-पद्धति एवं विष्णु का स्वरूप क्या ईश्वर का स्वरूप हो सकता है अथवा यह जनता को गुमराह करने का वैष्णव पन्थ का एक प्रचार रहा है।

हम जगत को अनन्त पाते हैं। इस विश्व का कोई भी आदि अन्त नहीं है ऐसा विज्ञान ने घोषित किया है। वैदिक धर्म की स्पष्ट मान्यता है कि ईश्वर और उसका कार्य रूप जगत अनन्त है। हम देखते हैं कि अनन्त विश्व में प्रत्येक कण के अन्दर कोई न कोई आणविक क्रिया प्रतिक्षण होती रहती है। सम्पूर्ण विश्व में हर समय क्रिया और वह भी ज्ञानपूर्वक क्रिया का होना सिद्ध करता है कि कोई ज्ञानवान सर्वव्यापक शक्ति उस क्रिया के होने में निमित्त है। बिना कर्ता के क्रिया या कार्य नहीं हो सकता है। ज्ञानपूर्वक क्रिया अथवा ज्ञानपूर्वक कार्य जो किसी नियम के अन्तर्गत होते हैं, अपने ज्ञानवान चैतन्य कर्ता के अस्तित्व की पुष्टि करते हैं। संसार में नियम व व्यवस्था प्रत्येक कार्य में देखने में आती है। तो नियम बिना नियामक के एवं

व्यवस्था बिना व्यवस्थापक के, साथ ही नियन्त्रित क्रिया बिना व्यापक नियन्त्रण कर्ता के नहीं हो सकती हैं। सम्पूर्ण विश्व में नियम है, व्यवस्था है। प्रत्येक कार्य किसी के नियन्त्रण में हो रहे हैं। सारे लोक-लोकान्तरों की निराधार आकाश में स्थिति किसी सर्व शक्तिमान, सर्वव्यापक परमेश्वर की सत्ता को सर्वाधार घोषित कर रही हैं। अतः यह स्पष्ट है कि परमात्मा सर्वव्यापक, सर्वाधार, सर्व शक्तिमान एवं सर्वान्तर्यामी हैं।

स्थूल वस्तु सूक्ष्म वस्तु के अन्दर प्रवेश नहीं कर सकती है। सूक्ष्म वस्तु अपने से स्थूल वस्तु के अन्दर प्रवेश कर सकती है। परमात्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु यहाँ तक कि परमाणुओं के भी अन्दर प्रविष्ट हुआ, क्रियाशील प्रत्यक्ष है। इसका अर्थ यह हुआ कि परमात्मा विश्व की अत्यन्त सूक्ष्म शक्ति है जो कि अपने स्वरूप से सर्वव्यापक है।

प्रत्येक स्थूल तथा आकार वाली वस्तु एक देशीय होती है। वह देश की सीमा से आबद्ध होती । एक देशीय वस्तु कभी सर्व व्यापक नहीं हो सकती है। जो सर्वव्यापक नहीं वह सर्वाधार-सर्वान्तर्यामी विश्व में ओत-प्रोत, सर्वज्ञ-सर्व शक्तिमान भी नहीं हो सकता है। पौराणिक विष्णु चार हाथ पैर वाला मनुष्य के आकार का एक देशीय व्यक्ति है। उसमें परमात्मा का एक भी लक्षण नहीं मिल सकता है। उसके चार हाथ हैं जिनमें वह लड़ने के लिये अथवा आत्म-रक्षा के लिए चक्र-गदा-पद्म धारण करता है। मुसीबत में मदद को बुलाने के लिये समुद्र के एक जानवर की हड्डी शङ्ख को एक हाथ में हर समय पकड़े रहता है। उससे वह सीटी का काम लेता है। उसकी गदा मानवों के रक्त से भीगी रहती है। उस बेचारे को बड़े २ युद्ध करने पड़ते हैं, जिनमें कभी वह तथा उसकी फौजें हारती

हैं, कभी जीतती हैं। आवागमन के लिये पैदल चलने में थकावट से बचने के लिये गरुड़ नाम के एक पक्षी को सवारी के लिये पाले रखता है। उसको जेबरात भी पहिनने का भारी शौक है। औरतों की तरह पैरों में नूपुर (बिछुए) शायद बजने वाले घुंघरूदार पहिनता है जैसे कि नाचने वाले मण्डलियों के डान्सर पहिन लेते हैं। कमर में हिन्दू नारियों की तरह करधनी (शायद सोने की) वह धारण करता है। हाथों में कङ्गन, बाजूबन्द, कड़े भी पहिनता है। पता नहीं दस्ताने और सोने के सैट या जड़ाऊ चूड़ियाँ भी उसने पहिनना प्रारम्भ कर दिया है या नहीं। गले में सुन्दर हार (मणि जटित) वह पहनता है। कानों में औरतों की तरह सुन्दर (मीनाकारी के) जड़ाऊ कुण्डल भी पहिने फिरता है। ओठों पर लाली लगी होती है। कमर में पीली साड़ी (पोताम्बर) वह पहिनता है। सर के बाल भी औरतों की तरह लम्बे-लम्बे रखता ही है। हाथों की अंगुलियों में सुन्दर (मीना लगी या जड़ाऊ) अंगूठी भी धारण करता है। यदि विष्णु की तस्वीर देखी जावे तो उसके पैरों में महावर का लाली लगी दिखाई देती है। इस शक्ल में और एक सुन्दर औरत की शक्ल में कोई भी अन्तर नहीं मिलेगा। उसके स्तन भी बड़े २ होते हैं। क्योंकि ऊपर के श्लोकों में स्तनों का ध्यान करने की बात लिखी है। मूंछें तो मर्द होने का प्रमाण होती हैं और देखने में मर्द औरत की भिन्नता प्रगट करती हैं, वह भी विष्णुजी के चेहरे पर सफाचट नजर आती हैं। कपोल भी उसके सुन्दर बताये गए हैं। होठों की मुसकान भी मन को हर लेने वाली बताई गई है। मर्द की खूबसूरती नष्ट करने वाली दाड़ी कभी विष्णु के चेहरे पर नजर नहीं आती है।

पुरुष की अपेक्षा विष्णुजी एक सुन्दरी, नारी बना दिए

गए हैं। एक ही विलक्षणता उनके शरीर में बना दी गई है। वह यह कि उनके हाथ दो की जगह चार बना दिए हैं। यदि उनके दो हाथ हटा दिए जावें तथा पीताम्बर (पीली साड़ी) सर के ऊपर से पहिना दी जावे तो उनके हाथ की अंगूठी, बाजूबन्द, गले का हार, कमर की करधनी, पैरों में नूपुर (बिछुए) देख कर एवं पैरों पर 'सद्यो विवाहिता बधू' जैसी लाली (महावर) देख कर यकायक प्रत्येक व्यक्ति को यह भ्रम हो जावेगा कि यह कोई मर्द है या कोई खूबसूरत हिन्दू नारी है।

क्या विश्व का सर्वाधार परमात्मा भी जेबर-बिछुए-कड़े-करधनी आदि पहिना करता है। कैसा परमात्मा है जो शस्त्र धारण करता व लड़ाइयाँ लड़ता फिरता है। मारता है कहीं पिटता है। वैष्णव परमात्मा भी विषय भोगों को भोगने को लक्ष्मीदेवी नाम की औरत रखता है। यदि वह मनुष्य है तो ब्रह्मचर्य से क्यों नहीं लंगोट लगा कर रहता है। क्या वह शुकदेवजी-भीष्म पितामह-हनूमान जैसे ब्रह्मचारियों से भी गया-बीता है जो उससे अपनी उपस्थेन्द्रिय का संयम भी नहीं साधा जाता है। यह खाने-पीने वाला, पत्नी रखने वाला, जेबरों का शौकीन परमात्मा जो भारतीय आर्य विरक्त पुरुषों से भी गया बीता है, अपने भक्तों का क्या उद्धार करेगा ? भागवतकार लिखता है कि ध्यान करते समय उसकी टांगें, पिंडलिया, जांघें, टुण्डी, स्तन, छाती, गला, नाक, भ्रकुटी, लाल ओष्ठ, गाल, दांत, गले की मणि आदि का क्रमशः ध्यान करे। तो क्या भागवत का तात्पर्य यह है कि वैष्णव भक्त आँखें बन्द करके विष्णु के अङ्गों की सुन्दरता सिनेमा की तरह बैठे २ देखते रहा करें। चित्त की एकाग्रता तो इससे हो नहीं सकती। मन चारों ओर

इस खूबसूरत परमात्मा रूपी मनुष्य (या औरत जो भी वह हो) की सुन्दरता का रस चखने के लिये इधर से उधर भागता फिरेगा। तब ध्यान में एकाग्रता कैसे होगी ? एक बात और है देवी भागवतकार ने लिखा है—

हरिर्ब्रह्मा शची कान्तस्तथाऽन्ये सुरसत्तामाः ।
सर्वे कुलविधौ दक्षा मनुष्याणां चका कथा ॥१०॥

किं विष्णुः किं शिवो ब्रह्मा मघवा किं बृहस्पतिः ।
देहवान् प्रभवत्येव विकारैः संयुतस्तदा ॥१५॥

रागी विष्णु शिवो रागी ब्रह्माऽपिराग संयुतः ।
राग वान्कम कृत्यं वैन करोति नराधिपः ॥१६॥

ब्रह्मादीनां च सर्वेषां गुण एव हि कारणम् ।
पंचविशत्समुद्भूता देहास्तेषां न चान्यथा ॥१८॥

काले मरणधर्मास्ते संदेहः कोऽत्रते नृप ॥१९॥

(देवी भा० स्क० ४ अ० १३)

अर्थ—विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा अन्य सारे देवता, सभी छल कपट करने में दक्ष हैं। मनुष्य विचारों का तब क्या कहना है। क्या विष्णु, शिव, ब्रह्मा और क्या बृहस्पति, इन सब की देह विकारों से युक्त हैं। विष्णु रागी है, शिव रागी है और ब्रह्मा भी रागी है। हे राजन् ! रागी मनुष्य कौन-सा पाप नहीं करता है ? ब्रह्मा आदि सभी में गुण ही कारण हैं। उन सभी की देह २५ गुणों के संघात से बनी है। समय आने पर वे सभी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। राजन् ! इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त पुराण के प्रमाण से स्पष्ट है कि जो भी व्यक्ति पञ्च भौतिक शरीरधारी होगा चाहे, ब्रह्मा, विष्णु शिव आदि कोई भी क्यों न होवे, सभी को मरना पड़ेगा। जब वैष्णवों के विष्णु को भी मरना पड़ेगा तो वह किसी अन्य को अमर कैसे बना सकेगा ? यह विचारने की बात है।

यहाँ एक प्रश्न और भी है। विष्णु की देह का ध्यान करना भागवत में लिखा है। देह नाशवान है। विष्णु के जीवात्मा की कोई आकृति पुराण ने नहीं लिखी है। तब जब देह नष्ट हो जावेगी या किसी महायुद्ध में विष्णु का अङ्ग-भङ्ग हो जावेगा तो फिर उसके किस स्वरूप का कैसे ध्यान हो सकेगा ? क्योंकि भौतिक शरीर और उसमें व्याप्त जीवात्मा दोनों पृथक-पृथक सत्ता रखते हैं। देह अनित्य है और जीवात्मा विष्णु का नित्य होगा। तब विष्णु का वास्तविक स्वरूप कौन-सा है, यह भागवत ने नहीं बताया है।

यदि विष्णु को पूर्ण ब्रह्म माना जावे जैसा कि भागवत-कार का दावा है, तो प्रश्न होगा कि दैत्य-असुर-दानव आदि विष्णु के समान क्या बलशाली थे जो उनसे भयानक युद्ध विष्णुजी को करने पड़े थे। यह कैसा मजेदार कमजोर पौराणिक ब्रह्म है जिसे वस्त्राभूषणों का शौक है तथा उसे युद्ध तक करने पड़ते हैं ? युद्ध तो सदा समान शक्ति वालों के साथ होते हैं, तो क्या दैत्यगण पौराणिक परमात्मा के समान शक्ति वाले भी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मुसलमानों के शैतान फरिश्ते और कमजोर खुदा के संघर्ष के समान ही दैत्य दानवों के साथ विष्णु के युद्धों की कल्पना कर ली गई है। देवी भागवत पुराण ने बहुत स्पष्ट-वादिता का परिचय देते हुए लिखा है:—

विष्णुश्च रत्यसावुग्रं तपो वर्षाण्यनेकशः ।
ब्रह्मा हरस्त्रयो देवा ध्यायन्तः कर्मापि ध्रुवं ॥४५॥
कामय मानाः सदा कामं तेऽत्रयः सर्वदेवहि ।
यजन्ति यज्ञान्विविधान्ब्रह्मविष्णु महेश्वराः ॥४६॥
ते वैशक्ति परां देवीं ब्रह्माख्यां परमात्मिकाम् ।
ध्यायन्तिमनसा नित्यं नित्यांत्वां सनातनीम् ॥४७॥

(देवी भागवत १।८)

अर्थ—विष्णुजी सदा बड़े-बड़े अनेक तप किया करते हैं। ब्रह्माजी और महादेवजी किसी की उपासना व ध्यान किया करते हैं। ये तीनों देवता अनेक प्रकार की मनोकामनाओं को रखते हैं और उनकी पूर्ति के लिये ब्रह्मा-विष्णु-महादेव विविध प्रकार के यज्ञादि करते हैं। (यदि ये स्वयं ब्रह्म होते तो ऐसा क्यों करते ?) ये लोग निश्चय पूर्वक परमात्मा की शक्ति की उपासना नित्य ही किया करते हैं जो कि सनातन सत्ता है।

बात भी सत्य है जो व्यक्ति कामनायें रखता हो, और उनकी पूर्ति एवं आत्म-कल्याण के लिये यज्ञ व ध्यान आदि किया करता हो तो निश्चय हो वह स्वयं परमात्मा नहीं हो सकता है। वह अपने से बड़े किसी महान् ब्रह्म का उपासक होता है और उसकी महान् सत्ता में विश्वास करता है। वैष्णवों की बड़ी दयनीय स्थिति है। यह तो विचारे उस विष्णु को परमात्मा मान बैठे हैं जो 'आप ही दाता मङ्गिता, द्वार खड़े दरवेश' के अनुसार स्वयं ही किसी के पराधीन हैं, वह इनको

क्या मुक्ति प्रदान करेगा। भागवतकार ने वैष्णवों को स्पष्ट धोखा दिया है।

भागवतकार विष्णु का ध्यान करने का जो प्रकार बताता है वह यह है कि बैठकर नाक के अग्रभाग पर दृष्टि को जमाकर विष्णु के खूब सूरत अङ्गों का चिन्तन करो। जब विष्णु को आकृति दीखने लगे तो उसके प्रत्येक अङ्ग पर नीचे पैरों से प्रारम्भ करके ऊपर सर तक एक-एक जगह ध्यान जमाते चले जाओ। यही वैष्णवो ध्यान का प्रकार है। वास्तव में यह ईश्वर के ध्यान का प्रकार नहीं है। यह तो एक तमाशा दिखाना मात्र है। मनुष्य के मस्तिष्क के दो भाग होते हैं। एक तार्किक दूसरा लघु। जब चित्त की एकाग्रता होने पर तार्किक मस्तिष्क शान्त हो जाता है तो लघु मस्तिष्क अपना कार्य करता हैं। त्राटक (मैस्मरेजम) द्वारा भी छोटे बालकों को प्रभावित करके अनेक साधक उनके लघु मस्तिष्क से काम लेते हैं और अनेक प्रकार के प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये जाते हैं। बालकों के हाथ के नाखून पर काली स्याही लगाकर बहुधा लोग बालक को आदेश देते हैं कि देखो तुमको सामने एक घास का मैदान दीखेगा। बालक का दिमाग आदेश दाता के प्रभाव में आ जाता है और उसे नाखून पर मैदान दीखने लगता है। फिर आदेश देते हैं कि देखो हवाई जहाज आकाश में उड़ रहा है, या रेल आ रही है या मोटर आ रही है, या अमुक व्यक्ति को आने को कहो। जैसा-जैसा आदेश दिया जाता है बालक को वैसा-वैसा दृश्य नाखून पर दिखाई देने लगता है।

यह सब सिनेमा जैसा दृश्य दिखाना मात्र होता है। लघु मस्तिष्क का या उपचेतना शक्ति का स्थान सर पर चोटी रखने

के स्थान पर होता है। जैसे सिनेमा की मशीन दूर रक्खी होती है और परदे पर अक्स डालती है। उसी प्रकार लघु मस्तिष्क को काबू में करके भ्रकुटी के मध्य में ध्यान करने से मनुष्य को भूत, भविष्य एवं वर्तमान का हाल मालूम हो जाता है। ध्यान करने का एकमात्र सर्वोत्तम स्थान भ्रकुटी के मध्य का ही स्थान होता है। हाथ के नाखून पर हथेली के मध्य में या नाक के अग्र भाग पर दृष्टि जमाकर ध्यान या चित्त को एकाग्र करने से तो अभ्यासी को केवल सिनेमा जैसा तमाशा ही दीख सकता है। उसमें भी नाखून या हथेली तो फिर भी उपयुक्त स्थान होते हैं पर नाक के अग्रभाग पर आँखों से देखने से नेत्रों में दर्द तथा नेत्रों की माँस-पेशियों के खराब होने से भेंडापन पैदा होकर साधक को आँखों से भी हाथ धोना पड़ सकता है। यह ध्यान का प्रकार नहीं है, केवल विष्णु के चित्र का तमाशा देखना है। विष्णु ही क्या, साधक अभ्यास होने पर इस विधि से हाथ के नाखून पर जो भी चीज या जिस व्यक्ति की आकृति की कल्पना करेगा वह उसे दीख सकेगी। इस प्रकार के तमाशे आसानी से छोटे १०-१२ वर्ष तक के लड़के-लड़कियों को दिखाये जा सकते हैं। लड़कों की अपेक्षा कन्याओं पर शीघ्र सफलता होती है। यह तो मनोविज्ञान का रहस्य है। इससे ब्रह्म के ध्यान से कोई सम्बन्ध नहीं है। भागवतकार ने अपने वैष्णव सम्प्रदाय में लोगों को फाँसने के लिए इस तमाशे की बात को ही ब्रह्म के ध्यान का प्रकार बताकर चतुराई या अपनी घोर अज्ञानता का परिचय दिया है। उस का लक्ष्य ही श्रीकृष्ण को अवतार बना कर वैष्णव पन्थ का प्रचार करना रहा है। इसलिए सारे भागवत में उसने इसी प्रकार का जाल फैलाया है।

वैष्णव पन्थ का विष्णु एक मानव शरीर धारी साकार

व्यक्ति है। उसका शरीर नस, नाड़ियों, माँस-पेशियों अस्थियों के आधार पर निर्मित है। परन्तु वेद परमात्मा का लक्षण निम्न प्रकार बताता है—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रण मस्नाविरं शुद्धमपाप विद्धम। कविर्मनीषीपरिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्था-न्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।

(यजु० ४०।८।।)

अर्थात्—परमात्मा शीघ्रकारी, तीनों प्रकार के सूक्ष्म-कारण एवं स्थूल शरीरों से रहित, छिद्र रहित (व्रण रहित) नस-नाड़ी के बन्धन से रहित, अविद्या आदि सम्पूर्ण दोषों से रहित परम शुद्ध पवित्र, पापों से वर्जित, सर्व व्यापक, सर्वज्ञ, सबके मन की बात जानने वाला, दुष्टों का तिरस्कार करने वाला, अनादि सनातन, उत्पत्ति और विनाश से रहित, प्रजाओं के लिए यथार्थ ज्ञान वेद का प्रकाशक है।

पौराणिक विष्णु में ब्रह्म का एक भी लक्षण नहीं मिलता है। विष्णु जन्म-मरण के चक्कर में घूमता रहता है। पौराणिक कल्पनानुसार उस विचारे को बार-बार शापों में लगे दण्ड भुग-तने को संसार में जन्म लेना पड़ता है, बार-बार मरना पड़ता है। कभी उसकी पत्नी को रावण चुरा ले जाता है, कभी उसे जरासन्ध के भय के मारे मथुरा छोड़कर द्वारिका को भागना पड़ता है। राजा जरासन्ध से अठारह बार घोर युद्ध करने पड़ते हैं, तो कहीं जरा नाम के व्याध द्वारा वाण मारे जाने से जख्मी होकर शरीर त्याग करना पड़ता है। पुराणकार लिखता है—

माया विमोहिता मन्दाः प्रवदन्ति मनीषिणाः ।
करोति स्वेच्छया विष्णुःअवतारानने कशः ॥४७॥

मन्दोऽपि दुःख गहने गर्भवासेऽतिसंकटे ।
न करोति मतिं विद्वान्कथं कुर्यात्स चक्रभृत ॥४८॥

कौसल्या देवकी गर्भे विष्टा मल समाकुले ।
स्वेच्छया प्रवदंत्यद्धागतो हि मधु सदनः ॥४९॥

बैकुण्ठ सदनं त्यक्त्वा गर्भवासे सुखं नु किम् ।
चिन्ता कोटि समुत्थाने दुःखदे विष सम्मिते ॥५०॥

(देवी भागवत ५।१)

अर्थ—माया से विमोहित मूर्ख लोग कहते हैं कि विष्णु स्वेच्छा से अनेक अवतार लेता है। मर्ख से मूर्ख तथा विद्वान् मनुष्य भी गर्भवास के अति गहन दुःख एवं सङ्कट में रहना पसन्द नहीं करता है तो फिर विष्णु ही उसे क्योंकर पसन्द करेगा । कौसल्या तथा देवकी के विष्टा और मल से भरे हुए गर्भाशय में लोग कहते हैं। विष्णु स्वेच्छा से आया था। भला बैकुण्ठ (का आनन्द) छोड़कर करोड़ों चिन्ताओं को पैदा करने वाले विष्ठा और मल से भरे हुए गर्भवास में जो विष जैसा दुःख दायी है आराम ही क्या रक्खा है।

पुराण की इस स्थापना के अनुसार विष्णु के सारे अवतार जो पौराणिकों ने कल्पित कर रखे हैं, मानव कल्याण के लिये स्वेच्छया न होकर किसी परवशता में होते हैं । विवशता में जन्म लेने वाला, जन्म-मरण के चक्र में घूमने-घूमने वाली सत्ता ईश्वर न हो कर साधारण जीव होनी चाहिये, जो कि

अपने किए हुए शुभाशुभ कर्मों के फल भोग के लिए निरन्तर आवागमन के चक्र में घूमती रहती है। राम व कृष्ण भी उसी प्रकार के व्यक्ति थे। वे अपने शुभ कर्मानुसार साधारण मानव की अपेक्षा महा मानव माने जा सकते हैं। पर उन्हें किसी विष्णु आदि का अवतार नहीं माना जा सकता है। जिस परमेश्वर के इशारे पर सृष्टि के नियम के अनुसार अनन्त विश्व में प्रतिक्षण स्रजन, पालन एवं विनाश होता रहता है, उस पारब्रह्म परमेश्वर के लिए क्षुद्र मानव की क्या स्थिति है जो उसके मारने के लिए वह साधारण मानव का जन्म धारण करता फिरे।

पुराणों में भी श्रीकृष्ण के अवतारवाद पर विरोधी प्रमाण उपलब्ध होते हैं। विष्णु पुराण में लिखा है:—

एवं संस्तूयमानस्तुभगवान्परमेश्वरः।
उज्जहारात्मनः केशौ सित कृष्णौ महामुने ॥५६॥

उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ बसुधातले।
अवतीर्य भुवो भारक्लेश हानिं करिष्यतः ॥६०॥

वासुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा।
तत्रायमष्टमो गर्भो मत्केशो भविता सुराः ॥६३॥

अवतीर्य च तत्रायं कंसं घातयिता भुवि।
कालनेमिं समुद्भूतमित्युक्त्वान्तर्दधे हरिः ॥६४॥

(विष्णु पुराण ५।१)

अर्थ—स्तुति किये जाने पर भगवान परमेश्वर ने अपने श्याम और श्वेत दो केश उखाड़े ।५६। और देवताओं से बोले—

मेरे ये दोनों केश पृथ्वी पर अवतार लेकर पृथ्वी के भार रूप कष्ट को दूर करेंगे ।६०। वासुदेव की देवी के समान जो देवकी पत्नी है, उसके आठवें गर्भ से मेरा यह श्याम केश अवतार लेगा ।-३। वहाँ इस प्रकार अवतार लेकर (यह काला केश) कालनेमि के अवतार कंस का बध करेगा ।६४।

महाभारत में भी नारायण के काले बाल का अवतार श्रीकृष्ण को आदि पर्व अ० ९६ में माना है । (प्रमाण 'अवतार रहस्य' में पृ० ६७ पर देखो) । महाभारत में नारायणजी को ऋषि माना है:—

नरस्वमसि दुर्धर्ष हरिर्नारायणे ह्यहम् ।
काले लोक मिमं प्राप्तौ नर नारायणावृषी ।।४६।।

(महाभारत वन पर्व अ० १२)

श्रीकृष्ण ने कहा—दुर्धर्षवीर अर्जुन ! तुम नर हो और मैं नारायण हूं । इस समय हम दोनों नर-नारायण ऋषि ही इस लोक में आये हैं ।

इस श्लोक से प्रगट है कि श्रीकृष्णजी नारायण ऋषि के काले बाल का अवतार थे । अथवा इस ऋषि ने स्वयं अवतार लिया था । वे विष्णु के अवतार नहीं थे । इन नर व नारायण ऋषियों की माता का नाम मूर्ति देवी था ।

'मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणा वृषी'

(भा० ४।१।५२)

अर्थात्—सर्व गुणों की खान मूर्तिदेवी ने नर-नारायण ऋषियों को जन्म दिया । श्रीकृष्णजी को विष्णु का अवतार बताने का दावा विष्णुपुराण एवं भागवत से भी खण्डित हो जाता

है। श्रीकृष्णजी को पूर्ण ब्रह्म भागवत तथा गीताकार मानते हैं। किन्तु भागवत में ही उनसे भी बड़ा एक और परमात्मा माना है जिसकी आज्ञा श्रीकृष्ण को भी माननी पड़ती है। हम वह प्रमाण भी देते हैं:—

भागवत में एक कथा दी है कि एक ब्राह्मण के बालक मर गये। श्रीकृष्ण और अर्जुन उनको लेने गये। वे दोनों भगवान भूमा के यहाँ उसके महल में पहुँचे। उन दोनों ने भूमा को हाथ जोड़ कर अभिवादन किया। भूमा भगवान् ने उनसे कहा:—

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा
मयोपनीता भुवि धर्म गुप्तये।
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्
हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥५९॥
पूर्णकामा वपि युवां नर नारायणा वृषी
धर्म माचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोक संग्रहम् ॥६०॥
(भा० १०।८९)

अर्थ—श्रीकृष्ण और अर्जुन! मैंने तुम दोनों के देखने के लिए ही ब्राह्मण के बालक अपने पास मंगा लिए थे। तुम दोनों ने धर्म की रक्षा के लिए मेरी कलाओं के साथ पृथ्वी पर जन्म ग्रहण किया है, असुरों का संहार कर शीघ्र ही तुम लोग मेरे पास लौट आओ।५९। तुम दोनों ऋषि नर और नारायण हो, पूर्ण काम हो फिर भी लोक संग्रह के लिए धर्म का आचरण करो।६०।

उक्त प्रमाण से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण जो नारायण ऋषि नाम के मनुष्य पूर्व जन्म में थे। भूमा नाम का परमात्मा कृष्ण से भी बहुत बड़ा है। श्रीकृष्णजी उसके आदेशों का पालन करते थे। इस प्रकार कृष्ण के विष्णु के अवतारत्व एवं पूर्ण परमेश्वर बनने के दावे की धज्जियाँ पुराणकार ने स्वयं उड़ाकर रखदी हैं। ऐसी दशा में श्रीकृष्ण जी ने जो भी अपने को विष्णु भगवान बताने एवं उसकी उपासना करने, मोक्ष देने आदि के दावे भागवत में किये हैं वे सभी सर्वथा मिथ्या सिद्ध हो जाते हैं।

'विष्णु सहस्रनाम का पाठ' नमो भगवते वासुदेवाय' का जप गीता तथा भागवत एवं विष्णु पुराणादि का परायण, 'राधेकृष्ण' नाम की रटन्त, 'हरे रामा हरे कृष्ण' का कीर्तन सभी बेकार हो जाते हैं। वास्तव में वैष्ण पन्थ के आचार्यों ने जैनियों के २४ तीर्थंकरों की प्रतिद्वन्दता में हिन्दुओं के २४ अवतार कल्पित किये थे। विष्णु स्वामी ने क्योंकि इस सम्प्रदाय की स्थापना की थी अतः शठकोप कंजर व यावनाचार्य आदि ने चतुराई से उसी अपने साथी को चतुर्भुजी विष्णु भगवान बना दिया तथा अपने सम्प्रदाय को सवश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए राम-कृष्णादि को भी उन्हीं विष्णु का अवतार घोषित कर दिया। इस सम्प्रदाय के अन्य सभी बाद के आचार्यों ने संस्कृत में श्लोकबद्ध साहित्य रचकर अपने सम्प्रदाय की मान्यताओं की पुष्टि की व दरारों को सीमेंट लगाकर बन्द कर दिया। सारे वैष्णव साहित्य का भवन राम व कृष्ण को अवतार मानकर उन्हीं की कल्पित कहानियों की बालू की दीवाल के आधार पर खड़ा किया गया है जिसके चक्कर में अरबों भारतियों का जीवन खराब होता रहा है और हो रहा है। मोक्ष प्राप्ति के सस्ते से सस्ते प्रयोग इन सम्प्रदायों ने गढ़-गढ़ कर पेश

किये हैं। विष्णु के चरण के धोवन से गङ्गा निकली लिखदी है और उसके स्नान या नाम स्मरण-मात्र से मोक्ष मिलने की गारण्टी करदी गई है। विष्णु के दर्शन या नाम जपने अथवा गीता या भागवत पाठ से तत्काल मोक्ष मिलने के प्रलोभन दे दिये गये हैं। परन्तु यह किसी ने नहीं सोचा कि यदि मोक्ष इतनी सस्ती चीज है तो इन किताबों के पाठ करने वाले पौराणिक पण्डित, इनको छापने वाले, गङ्गा में हर समय रहने वाले मगर-मच्छ क्यों जीवित रह गये हैं। उनकी तत्काल मुक्ति क्यों नहीं हो गई है।

दर्शन कहते हैं—

ऋते ज्ञानान्मुक्तिः।

ऋत ज्ञान से मोक्ष मिली है।

वेद भगवान कहते हैं—

वेदाह मेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्यमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

(यजुर्वेद ३६-१८)

अर्थात्—पारब्रह्म परमेश्वर को जानने के अतिरिक्त, जो कि प्रकृति से परे एवं प्रकाश स्वरूप अत्यन्त महान् है, मोक्ष प्राप्ति का कोई अन्य मार्ग है ही नहीं।

और उस ब्रह्म को जानने के लिये वेदों का अध्ययन, उपनिषदों का परायण, योगाभ्यास शुद्ध पवित्र निर्मल अन्तःकरण दीर्घ तपश्चर्या आदि की अपेक्षा होती है। मोक्ष हलवाई की दूकान की मिठाई नहीं है जो वैष्णवों या शैवों के झूठे मतवादी नुस्खों से मिल सके। भागवतकार को तो साधारण ध्यान

की विधि भी नहीं आती थी। उसे यह भी नहीं सूझा कि ब्रह्म के ध्यान के लिए चित्त की वृत्तियों को सम्पूर्ण वाह्य-जगत से हटाकर उनको अन्तर्मुखी बनाकर मनको निश्चल करके ध्याना वस्थित होना पड़ता है नकि आँखें खोल कर नाक पर निगाह को जमाकर ध्यान किया जाता है। जब नेत्र खुले रहेंगे तो वाह्य जगत् के रूप रङ्ग आदि से ध्यान कैसे हट सकेगा ? हाँ, इस तरह नाक पर निगाह जमाने से त्रिकालदर्शी अँगूठी में देखने के सदृश्य दृष्टि रुककर सिनेमा के से दृश्य अवश्य दीख सकेंगे। पर इसमें नेत्र खराब होने की सम्भावना बनी रहेगी। दृष्टि तो निश्चय मन्द हो जावेगी। स्वप्न से पूर्व मन को जैसा आदेश देकर मनुष्य सो जाता है तो मन (उप चेतना शक्ति) स्वप्न में उसी प्रकार के दृश्य दिखाती है। ठीक आदेश के अनुसार व्यक्ति को जगा देती है। इसी प्रकार विष्णु शिव आदि की जैसी शक्लों का चिन्तन किया जावेगा वैसा ही दृश्य दिखाई देगा। परन्तु विष्णु आदि ईश्वर नहीं है। अतः उनका चिन्तन करना भी अवैदिक है। भागवतकार ने भी एक स्थान पर इस बात को स्वीकार किया है—

यम उवाच—

परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च
ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम्।
यदंशतोऽस्य स्थिति जन्म नाशा
नस्योत वदूयस्य वशेच लोकः ॥१२॥
(भागवत ६। ३॥)

यमराज ने कहा—मेरे अतिरिक्त एक और ही चराचर जगत के स्वामी हैं। उन्हीं में यह सम्पूर्ण जगत सूत में वस्त्र के समान ओत-प्रोत हैं। इन्हीं के अंश से ब्रह्मा-विष्णु-महादेव इस जगत की उत्पत्ति स्थित और प्रलय करते हैं। उन्होंने ही नाथे हुए बैल के समान सारे जगत को अपने वश में कर रक्खा है। यदि यमराज की बात सत्य है तो उनके इस प्रमाण से सर्व-व्यापक ब्रह्म की सत्ता विष्णु आदि से ऊपर सिद्ध हो जाती है। एक देशीय विष्णु या उसके अवतार कृष्ण से ब्रह्म सर्वोपरि सत्ता है वह जगत के कण-कण में व्यापक है। सम्पूर्ण विश्व की स्थिति उसी ब्रह्म के आधार पर है। उसी निराकार परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिये। उसी से वेद प्रगट होते हैं। उसी की भक्ति से मोक्ष मिलती है। क्योंकि वेद ने कह दिया है—"स्तभितं येन नाकः" उसी परमेश्वर के आधीन मोक्ष की व्यवस्था है। उसके अतिरिक्त यदि कोई मिथ्यावादी अपने को परमेश्वर या मोक्षदाता बताता है, कोई भागवतादि मिथ्याग्रन्थ उसके विपरीत किसी अन्य को मोक्षदाता घोषित करता है या कोई अन्य प्रकार बताता है तो वे सभी झूठों के सरताज मानने चाहिए।

भागवतकार भगवान् की विचित्र व्याख्या करता है। वह लिखता है—

निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान्: प्रकृते परः।
स्वमाया गुण माविश्य बाध्य वाधकतां गतः ॥६॥

सत्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः।
न तेषां युग पद्राजन ह्रास उल्लास एव वा ॥७॥

जयकाले तु सत्वस्य देवर्षीन् रजसोऽसुरान् ।
तमसो यक्ष रक्षांसि तत्कालानुगुणोऽभजत् ॥८॥
(भाग ७ । १ ॥)

अर्थ—भागवत् वास्तव में निर्गुण अजन्मा है, अव्यक्त और प्रकृति से परे है। ऐसा होने पर भी अपनी माया के गुणों को स्वीकार करके वे बाध्य-बाधक भाव को अर्थात् मरने और मारने वाले दोनों के परस्पर विरोधी रूपों को ग्रहण करते हैं। ६। सत्व-रज व तम ये प्रकृति के गुण हैं, परमात्मा के नहीं। राजन्! इन तीनों गुणों की एक साथ ही घटती-बढ़ती नहीं होती ।७। जब परमात्मा में सत्वगुण की वृद्धि होती है तो देवता और ऋषियों का, रजोगुण की वृद्धि के समय वे दैत्यों का और तमोगुण की वृद्धि के समय वे यक्ष और राक्षसों को वृद्धि करते व उन्हें अपनाते हैं।८।

ऊपर श्लोक नं० ६ में परमात्मा के निर्गुण-अजन्मा-अव्यक्त और प्रकृति से परे माना है। यहाँ तक ठीक है। परन्तु परमात्मा प्रकृति के गुणों को स्वयं धारण करता है, सत् रजतम का प्रभाव परमात्मा पर भी होता है और उसी के अनुसार वह देव-गन्धर्व तथा राक्षसों का उत्थान पतन करता है, यह मिथ्या सिद्धान्त है। परमात्मा का निर्गुत्व गुण नित्य है। मदिरा का प्रभाव मदिरा पीने वाले के पञ्चभौतिक शरीर पर ही हो सकता है । प्रकृति के गुणों का प्रभाव प्राकृतिक शरीर धारी पर ही हो सकता है। पञ्च-तत्वों के बने शरीर या उसके बन्धन से पृथक परमात्मा पर नहीं हो सकता है। जीवात्मा कर्म वश प्रकृति से बने शरीर के बन्धन में फँस कर उसमें व्याप्त हो जाता है अतः वह भौतिक चैतन्य शरीर पर औषधि का प्रभाव अनभव करता है। किन्तु परमात्मा प्रकृति

में सर्वव्यापक होने से व्याप्त होने पर भी इसके बन्धन से प्रथक है। वह प्रकृति का संचालक एवं स्वामी है अतः उस पर प्रकृति के गुणों का प्रभाव नहीं हो सकता है। देव-असुर आदि मानव प्रकृतियाँ जीवों के कर्म के फलों के परिणाम स्वरूप उनकी बनती है। सत्व-रज व तमोगुण सत्सङ्ग-कुसङ्ग. विचार, भोजन शिक्षा दीक्षा, शारीरिक रोगों आदि के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होते व घटते-बढ़ते रहते हैं। परमात्मा में इनकी वृद्धि व ह्रास नहीं होता है। भागवतकार का यह सिद्धान्त ठीक नहीं है। यदि परमात्मा में इन गुणों की ह्रास वृद्धि होना माना जावेगा तो परमात्मा भी विकारी हो जाने से नाशवान् मानना पड़ेगा क्योंकि प्रत्येक विकारवान वस्तु नाशवान होती है। जब परमात्मा को अजन्मा अनादि माना जाता है तो वह अनन्त भी होगा। और वस्तुतः परमात्मा ऐसा ही है भी । न उसका जन्म या अवतार होता है, न वह कभी दुःख सुखों का भोक्ता एवं मरण धर्मा होता है।

एक स्थान पर भागवतकार ईश्वर को सर्व व्यापक मानते हुए लिखता है:—

यथाऽनिलः स्थावर जङ्गमाना।
मात्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् ॥
एवं परो भगवान् वासुदेवः।
क्षेत्रज्ञ आत्मेद मनु प्रविष्टः ॥१४॥
(भा० ५।११)

ज्योतिरादिरि वाभाति संघातान्न विविच्यते।
विदन्त्यात्मानमात्मस्थंमथित्वा कवयोऽन्ततः ॥६॥
(भा० ७।१)

अर्थ—जिस प्रकार वायु सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम प्राणियों में प्रविष्ट होकर उन्हें प्रेरित करती है। उसी प्रकार परमेश्वर सर्व साक्षी आत्म रूप से इस सम्पूर्ण प्रपञ्च में ओत-प्रोत है।१४। जैसे व्यापक अग्नि प्रत्येक पदार्थ में व्यापक होते हुए भी पृथक नहीं जान पड़ती है, किन्तु मन्थन करने पर प्रगट हो जाती है। वैसे ही परमात्मा सभी शरीरों में व्यापक रहते हुए भी नहीं जान पड़ते, किन्तु धीर पुरुष हृदय मन्थन द्वारा सर्वान्तर्यामी रूप से उनको अनुभव कर लेते हैं।१६।

इन दोनों प्रमाणों ने परमात्मा के एक देशीय स्वरूप मानने के सिद्धान्त को समाप्त कर दिया है कि पुराणों का मानव आकृति का एक देशीय विष्णु जो विष्णु लोक में रहता है, परमात्मा नहीं माना जा सकता है। क्योंकि एक देशीय सत्ता सर्व व्यापक नहीं हो सकती है। इसके साथ ही परमात्मा की प्राप्ति भी उक्त श्लोकों में हृदय मन्थन आत्म चिन्तन द्वारा अपने अन्दर ही जीवात्मा को होती है नकि नाक पर दृष्टि जमा कर वाह्य जगत में होती है। और न परमात्मा मूर्ति या विष्णुलोक में मिलता है जैसा कि भागवतकार ने अन्य स्थलों पर उसका मिलना माना है। भागवत के उपरोक्त श्लोक भागवत के मिथ्या अन्य सिद्धान्तों का खण्डन करके वैदिक सिद्धान्त की बात कह रहे हैं। इस प्रकार भागवत पुराण में परमात्मा के विषय में परस्पर विरुद्ध प्रकार की बातों का प्रतिपादन किया गया है, जों कि ग्रंथ को अप्रमाणिक घोषित करता है।

चौथा अध्याय

भागवत के अवतारों की परीक्षा

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानं धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।
(गीता० ४।७-८)

भगवद्गीताकार लिखता है कि—जब जब धर्म के प्रति ग्लानि देश में होती है तब तब धर्म के पुनरुत्थान के लिए मैं जन्म लेता हूँ। साधुओं की रक्षा, दुष्टों के विनाश तथा धर्म की स्थापना के लिए मैं युग-युग में पैदा होता हूँ।

उपरोक्त शब्द गीता में श्रीकृष्णजी द्वारा कहे गये लिखे हैं। गीता तथा भागवत दोनों ही ग्रंथ वैष्ण सम्प्रदाय के प्रमुख मान्य ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों की मान्यतानुसार सारे ही अवतार विष्णु भगवान के होते हैं। भागवत में विष्णु के अवतारों की दो सूचियाँ दी गई हैं। वह इस प्रकार हैं:—

स्कन्द १ अ० ३ सूची		स्कन्द २ अ० ७ की सूची	
१. सनक	अवतार	१. बराह (सूकर)	अवतार
२. सूकर	,,	२. सुयज्ञ	,,
३. नारद	,,	३. कपिल	,,
४. नरनारायण	,,	४. दत्तात्रेय	,,
५. कपिल	,,	५. सनक	,,
६. दत्तात्रेय	,,	६. नरनारायण	,,
७. यज्ञ	,,	७. पृथु	,,
८. ऋषभदेव	,,	८. ऋषभदेव	,,
९. प्रथु	,,	९. हयग्रीव	,,
१०. मत्स्य	,,	१०. मत्स्य	,,
११. कच्छप	,,	११. कच्छप	,,
१२. धन्वन्तरि	,,	१२. नरसिंह	,,
१३. मोहिनी	,,	१३. वामन	,,
१४. नरसिंह	,,	१४. धन्वन्तरि	,,
१५. वामन	,,	१५. परशुराम	,,
१६. परशुराम	,,	१६. रामचन्द्र	,,
१७. सत्यवती पुत्र व्यासदेव		१७. बलराम	,,
१८. रामचन्द्र	,,	१८. कृष्ण	,,
१९. बलराम	,,	१९. व्यासजी	,,
२०. श्रीकृष्ण	,,	२०. बुद्ध	,,
२१. बुद्ध	,,	२१. कल्कि (आगे होगा)	,,
२२. कल्कि (आगे होगा)			

इन दोनों सूचियों में २४ अवतारों की एक भी पूरी सूची नहीं है। पहिली सूची में अवतारों का क्रम दिया है कि किसके बाद कौन-सा अवतार हुआ था। इस प्रथम सूची में भागवतकार

ने एक बड़ी विलक्षण बात यह लिखी है कि उसने रामचन्द्रजी को सत्रहवां और व्यासजी को अठारहवां अवतार माना है। मूल श्लोक निम्न प्रकार हैं:—

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ।
चक्रे वेद तरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्प मेधसः ॥२१॥
नरदेवत्वमापन्नः सुर कार्य चिकीर्षया ।
समुद्र निग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥२२॥
एकोन विंशेविंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
रामकृष्णाविति भुवो भगवान हरद्भरम् ॥२३॥
(भा० १।३)

अर्थात्—इसके बाद सत्तरहवें अवतार में सत्यवती के गर्भ से पराशरजी के द्वारा विष्णुजी व्यास के रूप में अवतीर्ण हुए, उस समय लोगों की समझ और साधारण शक्ति कम देख कर आपने वेद रूप वृक्ष की कई शाखायें बना दीं ।२१। अठारहवीं बार देवताओं का कार्य सम्पन्न करने की इच्छा से उन्होंने राजा के रूप में रामावतार ग्रहण किया और सेतु-बन्ध, रावण बध आदि वीरतापूर्ण बहुत-सी लीलायें कीं ।२२। उन्नीसवें और बीसवें अवतारों में उन्होंने यदुवंश में बलराम और श्रीकृष्ण के नाम से प्रगट हो कर पृथ्वी का भार उतारा ।२३।

रामचन्द्रजी का जन्म त्रेता और द्वापर के मध्य काल में हुआ था जिसे अब से लगभग आठ लाख उनहत्तर हजार साल बीतते हैं तथा महाभारत से आठ लाख चौसठ हजार वर्ष पूर्व हुआ था। जब कि वेदव्यासजी महाभारत कालीन थे। भागवत-कार ने राम को महाभारत के भी बाद माना है। यह उसकी

मिथ्या बात मान्य नहीं हो सकती है। वह लिखते समय यह भी भूल बैठा कि राम पहले थे या व्यास पहिले थे। इस दृष्टि से पहिली सूची गलत है।

दूसरी सूची में तथा पहिली सूची में क्रम में भी अन्तर है तथा अवतारों के नामों में भी अन्तर है। प्रथम सूची के नारद व मोहिनी इन दो अवतारों को दूसरी सूची में से बहिष्कृत कर दिया गया है। साथ ही हयग्रीव नाम का (घोड़े को गरदन वाला विलक्षण अवतार गढ़ कर दूसरी लिस्ट में जोड़ दिया गया है। अतः दोनों सूचियाँ परस्पर में एक-सी न होने से अप्रमाणिक बन जाती हैं।

मोहिनी तो खूबसूरत औरत थी, विश्व सुन्दरी थी। हयग्रीव जिसका शेष धड़ मनुष्य का तथा सर पर कलम घोड़े के सर की लगी थी, यह विलक्षण मनुष्य या जानवर भी विश्व प्रदर्शिनी में प्रथम इनाम पाने वाला प्राणी था। इन दोनों को तो अवश्य ही दोनों सूचियों में रखने की आवश्यकता थी। विष्णुजी स्वयं भी चार हाथों वाले व्यक्ति हैं। यदि कभी प्रगट हो जावें तो विश्वभर के लोग कैमरे लेकर उनके फोटू खींचने को दौड़े चले आवेंगे। तब उनके अवतारों में भी विलक्षणता होनी ही चाहिए। भागवतकार ने बड़ी भूल की जो मोहिनी व हयग्रीव अवतारों के नाम दोनों लिस्टों में नहीं रखे। भागवत में अब भी यह संशोधन हो जावे तो उत्तम रहेगा।

भागवत के अनुसार इस विश्व मोहिनी अवतार ने दो ही महत्वपूर्ण काम किये थे। एक बार इसने अपने परम सुन्दर रूप से दानवों को मोहित करके अपने बस में कर लिया था और फिर उनके साथ छल-कपट करके अमृत अपने साथी देवताओं

को पिला दिया था। उस छली-कपटी खूबसूरत औरत को अवतारों में बढ़िया अवतार माना गया है।

इस मोहिनी अवतार ने अपना परिचय इस प्रकार दिया था:—

भगवान उवाच—

कथं कश्यपदा यादाः पुंश्चल्यां मयि सङ्गताः।
विश्वासं पण्डितो जातु कामिनीषु नयाति हि ॥९॥

साला वृकाणाँ स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः।
सख्यान्या हुरनित्यानि नूत्नं नूतनं विचिन्वताम् ॥१०॥
(भा० ८।९)

मोहिनी अवतार ने कहा—आप लोग कश्यप के पुत्र हैं और मैं कुलटा स्त्री हूँ। मेरे ऊपर न्याय का भार क्यों डाल रहे हैं। विवेकी पुरुष व्यभिचारिणी (स्वेच्छाचारिणी) स्त्रियों का कभी विश्वास नहीं करते। दैत्यो! कुत्ते और व्यभिचारिणी स्त्रियों की मित्रता कभी स्थायी नहीं होती। वे दोनों ही सदा नये-नये शिकार ढूंढ़ा करते हैं।९।१०।

अपनी असलियत का पर्दाफाश मोहिनी अवतार ने उपरोक्त शब्दों में कर दिया है। उसकी अपनी कही हुई सच्ची बात पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। अब इस व्यभिचारिणी (छिनाल) मोहिनी अवतार का एक महान कार्य देखिये:—

एक बार मोहिनी अवतार ने अपने सौन्दर्य पर शिवजी को आसक्त बना लिया था। शिवजी उसे पकड़ने को भागे। मोहिनी भी भागी। भागने में मोहिनी के हवा में कपड़े उड़

गये। वह सर्वत्र नङ्गी हो गई और लाज के मारे वृक्षों की आड़ में छिपने लगी। शिवजी ने दौड़ कर उसे पकड़ लिया और जाँघों पर डाल कर रिगड़ने लगे। वह किसी प्रकार छूट कर भाग गई। शिवजी उसके पीछे हथिनी के पीछे मस्त हाथी की तरह भागने लगे। इस छीना-झपटी में शिवजी का वीर्यपात हो गया:—

तस्यानुधावतो रेतश्च स्कन्धामोघ रेतसः।
शुश्मिणो यूथ पस्यैव वासिता मनुधावतः ॥३२॥
यत्र तत्र पतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः।
तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्रण्या सन्महीपते ॥३३॥
(भा० ८।१२)

अर्थ—कामुकी हथिनी के पीछे दौड़ने वाले कामोन्मत्त मस्त हाथी की तरह वे सुन्दरी मोहिनी के पीछे दौड़ रहे थे। यद्यपि शङ्कर अमोघवीर्य हैं फिर भी मोहिनी की माया से उनका वीर्य स्खलित हो गया।३२। शङ्कर का वह पतित वीर्य जहाँ-जहाँ पृथ्वी पर गिरा, वहाँ-वहाँ सोने चांदी की खानें बन गईं।३३।

इस सुन्दरी मोहिनी ने प्रथमबार तो देवताओं का पक्ष लेकर उनको दगाबाजी से अमृत पिला दिया था और दानवों के साथ विश्वासघात किया था जबकि उसे दोनों ने, दोनों पक्षों को अमृत बांटने के लिये ईमानदार समझ कर पञ्च चुना था जबकि वह पक्की बेईमान साबित हुई। दूसरी बार इस विश्व सुन्दरी ने शिवजी को अपनी हरकतों से कामान्ध बना कर और काम-क्रीड़ा करके उनका शुक्रपात करा दिया था जिससे थ्वी पर सोने, चांदी की खानें बन गई थी। इन दो महान

अथवा क्षुद्र जैसा भी समझा जावे, कार्यों के उपलक्ष में उसे अवतारा में विशेष अवतार बना दिया गया। भागवतकार ने इसीलिए उसका नाम प्रथम सूची में तेरहवें नम्बर में दिया है। पर शायद दूसरी सूची में वह लिखने में भूल गया था। यह भूल सुधर जानी चाहिये। रसिक एवं अय्याश लोगों के वैष्णव धर्म में आकर्षण, मन बहलाव तथा उनके उपासना करने के लिये सब से श्रेष्ठ यही अवतार हो सकता है।

इन सूचियों में नर-नारायण ऋषि को अवतार माना गया है। उनके विषय में लिखा है कि:—

मूर्तिः सर्वगुणो नरनारायणा वृषी ॥५२॥

(भा० ४।१)

अर्थ—सर्व गुणों की खान मूर्तिदेवी ने नारायण ऋषियों को जन्म दिया है।

ये दोनों ऋषि गन्धमादन पर्वत पर हजारों वर्ष तक तपस्या करते रहे थे। ऐसा महाभारत बन पर्व अध्याय १२ में लिखा है। जो व्यक्ति हजारों साल तक तपस्या करते रहे हैं, वे मनुष्य ही हुए। उनको भागवतकार ने भी ऋषि लिखा है। भगवान यदि वे होते तो तपस्या करने की क्या आवश्यकता थी? क्या ईश्वर भी योगाभ्यास-समाधि प्राणायाम साधना आदि क्रियायें किया करता है। इन प्रमाणों ने इन दोनों व्यक्तियों को भगवान का अवतार साबित होना समाप्त कर दिया है।

नरसिंह अवतार भी विलक्षण अवतार था। धड़ मनुष्य का और सर के स्थान पर कलम शेर के सर की लगी हुई थी। कहा जाता है कि प्रहलाद के पिता को इस अवतार ने मारा

था। किन्तु लिंग पुराण पूर्वार्ध अध्याय ९६ तथा शिवपुराण शतरुद्र संहिता अ० ११ व १२ में लिखा है कि शिवजी के कमाण्डर इन चीफ वीरभद्र ने इस नृसिंह अवतार को जान से मार कर उसका सर काट लिया था और देह की खाल उधेड़ ली थी। सर तो शिवजी की मुण्डों की माला के बीच में पड़ा है तथा धड़ की खाल को शिवजी बाघम्बर के नाम से पहिना करते हैं। इस दुर्बल जीव को जिसका कत्ल हुआ हो, सर काटा गया हो और धड़ की खाल उतार ली गई हो, कौन बुद्धिमान व्यक्ति ईश्वर का अवतार स्वीकार करेगा।

राजा पृथु को भी विष्णु का अवतार माना गया है। किन्तु भागवत में उसके बारे में लिखा है कि उसने निन्यानवै अश्वमेध यज्ञ जब कर लिए तो इन्द्र ने उसमें बाधा डाल दी। विष्णु और इन्द्र उसकी यज्ञशाला में उपस्थित हुए।

मैत्रेय उवाच—

भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः।
यज्ञैर्यज्ञपति स्तुष्टो यज्ञभुक् तमभाषतः ॥१॥

एष तेऽकार्षीद्भद्रं हयमेधशतस्य ह।
क्षमापयत् आत्मान ममुष्यक्षन्तुमर्हसि ॥२॥

वरं च मत्तः कञ्चन मानवेन्द्र,
वणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः।
नाहं मखैर्वै सुलभस्तपो भि-
र्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती ॥१६॥

पुरुषवाच —

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्—
न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो
विधत्स्व कर्णायुत मेष मे वरः ॥२४॥
(भा० ४।२०)

अर्थ—महाराज पृथु के निन्यानवे यज्ञों से यज्ञ भोक्ता यज्ञेश्वर भगवान् विष्णु को भी बड़ा सन्तोष हुआ । उन्होंने इन्द्र के सहित वहाँ उपस्थित होकर उनसे कहा ।१। राजन् ! (इन्द्र ने) तुम्हारे सौ अश्वमेध यज्ञ पूरे करने के संकल्प में विघ्न डाला है । अब ये तुम से क्षमा चाहते हैं, तुम इन्हें क्षमा कर दो ।२। विष्णु ने कहा—राजन् ! तुम्हारे गुणों और स्वभाव ने मुझे मुग्ध कर लिया है । तुम जो चाहो मुझ से वर मांग लो । सद्गुणों से रहित यज्ञ, तप, योग द्वारा मुझे पाना सरल नहीं है । मैं उन्हीं के हृदय में रहता हूँ जिनके चित्त में समता रहती है ।१६। पृथु ने कहा—मुझे मोक्ष की चिन्ता नहीं है । जहाँ आपके चरणों का मकरन्द नहीं है, जहाँ आपकी कीर्ति सुनने को नहीं मिलती है । मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिए ताकि आपके लीला गुणों को सुनता रहूं :—

इससे स्पष्ट है कि पृथु विष्णु का अवतार नहीं थे । राजा थे । विष्णुजी स्वयं उनके घर गये थे और अपनी भक्ति का वरदान देकर आये । पृथु और विष्णु दोनों अलग-अलग थे । कोई किसी का अवतार नहीं था ।

बुद्धावतार वेद धर्म विनाश करने के लिए हुआ था। जबकि अवतारों के लिए गीता व पुराणों में दावा यह किया जाता है कि अवतार वेद धर्म की रक्षा के लिए होता है।

देवद्विषां निगम वर्त्मनि निष्ठितानां
पूर्भिर्मयेन विहिता भिरदृश्यतूर्भिः।
लोकान् घ्नतां मति विमोह मतिप्रलोभं
वेषं विधाय बहुभाष्यत औपधर्म्यम्॥

(भा० २।७।३७)

अर्थ--देवताओं के द्वेषी वेद मार्ग का सहारा लेकर मय के बनाये अदृश्य नगरों में रह कर लोगों का नाश करेंगे। तब भगवान लोगों की बुद्धि में लोभ व अत्यन्त मोह उत्पन्न करने वाला वेष धारण करके बुद्ध रूप में अनेक उपधर्मों का उपदेश करेंगे।

वेद विरोधी धर्म चलाने वाले बुद्ध को भी भागवतकार ने अवतार बना दिया। यह भी एक चमत्कार की बात है कि वेदों के शत्रु भी अवतार होते थे।

नारद को अवतार बताया गया है। भागवत में नारद के पूर्व जन्म का हाल लिखा है कि वह एक ब्राह्मण की दासी का पुत्र था। नारदजी व्यासजी से कहते हैं।

नारद उवाच—

अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने
दास्यास्तु कस्याश्चन वेद वादिनाम्।

निरूपितो बालक एव योगिनां
शुश्रूषणे प्रवृषि निर्विविक्षताम् ।।२३।।
उच्छिष्टलेपाननुमोदितोद्विजैः
सकृत्स्म भुञ्जेतदपास्तकिल्विषः
एवं प्रवृत्तस्य विशुद्ध चेतस
स्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायेत ।।२५।।
(भा० १।५)

अर्थ--नारद ने कहा--मैं गत कल्प में अपने पूर्व जन्म में वेदवादी ब्राह्मणों की एक दासी का लड़का था । उन योगी की सेवा में मुझे नियुक्त कर दिया था ।२३। उनकी आज्ञा से मैं बरतन में लगा हुआ झूठन एक बार खा लिया करता था । मेरे पाप इससे धुल गए और मेरा हृदय शुद्ध हो गया तथा जैसा भजन, पूजन वे करते थे, मेरी भी रुचि उसमें हो गई ।२५।

इस प्रमाणानुसार नारदजी पूर्व जन्म में झूठन खाने वाले तथा एक मुनि के नौकर थे । अतः वह ईश्वर या विष्णु का अवतार नहीं माने जा सकते हैं । विष्णु का अवतार न वे पूर्व जन्म में थे और न इस जन्म में थे । यदि अवतार होते तो दोनों जन्मों में होते । सारे जीवन नारदजी सन्देश वाहक पोस्टमैन का कार्य करते रहे थे । अतः यह पोस्टआफिस के किसी बाबू के अवतार होंगे ।

सूकर अवतार भी विलक्षण अवतार था । उसका भोजन विष्टा (पाखाना) होगी । उसका जन्म भी विलक्षण प्रकार से हुआ था:—

इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सह सानघ ।
वराह तोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ॥१८॥

(भा० ३।१३)

ब्रह्माजी सोच रहे थे कि (छींक आने पर) उनकी नाक में से एक सूअर का बच्चा अंगूठे के बराबर का निकल पड़ा। (यही वराह अवतार था।)

इस प्रकार विलक्षण प्रकार की पैदायश के कारण यह सब से बढ़िया किस्म का अवतार था । 'विष्णु सहस्रनाम' में इसी विलक्षणता के कारण 'महाबराहो गोविन्दः' विष्णु बड़ा भारी सूअर है, यह शुभ नाम प्राप्त हुआ है। पर एक भारी अन्याय यह हो रहा है कि बराह अवतार के मन्दिरों में इस विचारे को भूखा मारा जाता है। उसे उसका स्वाभाविक भोजन जो सभी जानते हैं नहीं दिया जाता है। तथा मन्दिरों में बराह अवतार के वंशज सूअरों को पालने वाले मैहतरों को पुजारी बनाने के स्थान पर ब्राह्मण लोग जमे बैठे हैं। यह अन्याय शीघ्र दूर होना चाहिए। इस अवतार को उसका स्वाभाविक भोजन भी मैहतर लोग हीं दे सकते हैं। यदि यह काम पौराणिक पण्डित लोग स्वयं कर सके तो उनको पुजारी रखने में किसी को आपत्ति न होगी।

कच्छप अवतार की बात कोरी गल्प है। उसके बारे में लिखा है कि जब देव दानव मिल कर मन्दराचल पर्वत को मथानी बना कर और वासुकी सर्प को रस्सी की भांति लपेट कर समुद्र का मन्थन करने लगे तो पर्वत बोझ के मारे नीचे को जल में बैठने लगा। उस समयः—

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो
दुरन्त वीर्योऽवितथा भिसन्धिः ।
कृत्वा वपुः काच्छ पमद्भुतं महत्
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ॥८॥
दधार पृष्ठेन स लक्ष योजन
प्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान् ॥९॥
(भाग० ८ । ७ ॥)

अर्थ—उस समय विष्णु ने देखा कि यह विघ्नराज की करतूत है। अतः उसके निवारण का उपाय सोचकर विशाल विचित्र कच्छप रूप धारण किया और समुद्र के जल में प्रवेश करके मन्दराचल को ऊपर उठा दिया । उस समय भगवान विष्णु ने एक लाख योजन फैली हुई अपनी पीठ पर मन्दराचल को धारण कर रक्खा था । ८-९ ।

मन्दराचल पहाड़ को उखाड़ना, उसे समुद्र में उठाकर लाना, इसके चारों ओर एक सैकड़ों कोस लम्बे सांप को रस्सी की तरह कई बार लपेटना और उस ऊबड़-खाबड़ पहाड़ पर इस रस्सीनुमा साँप को दोनों ओर से खींच-खींचकर मथानी की भांति समुद्र के मथना, जब यह सारी कथा ही असम्भव गल्प है तो फिर उस पहाड़ को उठाने के लिए एक लाख योजन विस्तार वाले कछुये की उपस्थिति भी कोरी गल्प ही है। एक लाख योजन लम्बा चौड़ा कछुआ भागवतकार के मकान में रहता होगा। पृथ्वी के किसी भी समुद्र में तो वह आ न सकेगा। भागवत के सारे ही अवतार गप्पाष्टकों से अधिक मूल्य नहीं रखते हैं।

वामन अवतार ने धर्मात्मा राजा बलि के साथ छल-कपट किया था और उसका राज्य छीन लिया था। क्या ऐसे छली कपटी पापी को भी अवतार माना जा सकता है। इस का तो नाम लेना भी पाप है। दूसरों को धोखा देना, कपटपूर्ण व्यवहार करने की शिक्षा देना यह तो साक्षात् पापी लोगों का काम है।

परशुराम अवतार विचारा एक ही अवतार था जो जन्म का ब्राह्मण था। शेष सारे अवतार या तो ठाकुर थे या जानवर थे। पुराणकारों ने बड़ा साहस करके एक अवतार ब्राह्मणों का बना पाया था। परन्तु उसे भी ठाकुर अवतार राम ने परास्त कर दिया। अब इस बेचारे को कोई संसार में पूछता भी नहीं है। एक ही समय में राम व परशुराम दो अवतार पैदा हो गये थे। दोनों ने एक दूसरे को पहिचाना तक नहीं। दोनों आपस में लड़ पड़े। अन्त में दोनों का समझौता हुआ और तब उन्हें पता लगा कि दोनों ही अवतार थे। यह तमाशा अवतार वाद की मजाक नहीं तो क्या है ?

व्यास अवतार का जन्म उनके पिता पराशरजी द्वारा एक मल्लाह की पुत्री के साथ 'ज़िना बिल ज़ब्र' अर्थात् बलात्कार करने से हुआ था। पुराणों ने इनको चरित्र का कमजोर बताया है। एक बार अग्नि प्रगट करने को अरणी मन्थन करते समय घृताची अप्सरा को देखकर वीर्यपात हो जाने से इनके पुत्र शुकदेवजी का तत्काल जन्म हुआ था। जब विचित्र वीर्य राजा की मृत्यु हो जाने से राज्यवंश का अन्त होने को था तो इन्हीं को नियोग के लिये चुना गया था। उन्होंने दो रानियों से पाण्डु व धृतराष्ट्र को तथा दासी से विदुर को नियोग करके पैदा किया था। भगवान् का अवतार होकर भी इनमें संयम

का अभाव था। वास्तव में चाहे यह कमजोरी न भी उनमें हो परन्तु, पुराणों ने ऐसा ही माना है। ऐसे व्यक्ति अवतार होने के योग्य नहीं माने जा सकते हैं और न बलात्कार से अवतारों का जन्म होना उनके लिये शोभा की बात मानी जा सकेगी।

सनक (सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) इनको अवतार मानना ही भूल है। इन लोगों ने कोई धर्म उत्थान या साधु रक्षा का काम कभी नहीं किया था। इनके बारे में लिखा है—

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्ग मास्थितः।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥ ६ ॥

(भागवत १।३)

अर्थात्—पहले कौमार सर्ग में सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, इन चार ब्राह्मणों के रूप में अवतार ग्रहण करके अत्यन्त कठिन अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया था।

इस अवतार की विशेषता यही थी कि इनका विवाह नहीं हुआ था। यह आजन्म स्वेच्छा से या विवशता से क्वांरे रहे थे। बस इसी विशेषता के कारण इनको अवतार मान लिया गया है। यदि अवतार होने की यह अविवाहित रहने की विधि कसौटी मानी जावे तब तो और भी अनेक लोग इस पदवी के लिए अपने नाम नोट करा देंगे जिनको आजन्म अविवाहित (ब्रह्मचारी) रहना पड़ता है, चाहे स्वेच्छा से या शादी न होने की मजबूरी से।

ऋषभदेव को जैनी अपना तीर्थङ्कर मानते हैं। उसका जो वर्णन भागवत में दिया है वह घ्राणाउत्पादक है।

शयान एवाश्नासि पिवति खादत्य वमेहति हृदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धोद्देशः ॥ ३२ ॥ तस्य ह यः पुरीषसुरभि सौगन्ध्य वायुस्तं देशं दशयोजनं समन्तात् सुरभिं चकार ॥ ३३ ॥

(भाग० ५।१)

अर्थ—वे लेटे ही लेटे खाने पीने, चबाने और मलमूत्र त्यागने लगे। अपने त्यागे मल में लोट लगाते थे। उनके मल में सुगन्धि (दुर्गन्धि) वायु को दस योजन तक चारों ओर देश में फैलाता था।

जैनियों के इस गन्दे तीर्थङ्कर को अवतार मान लेना पौराणिक अवतारों पर स्वयं कलङ्क लगाना नहीं तो क्या है ? जैनी साधु नंगे रहते हैं, न नहाते हैं न दांत साफ करते हैं। ऐसा गन्दा व्यक्ति उसी नास्तिक सम्प्रदाय की शोभा हो सकता था। परन्तु वैष्णव सम्प्रदाय भी वाम मार्ग से ही निकला है अतः उसे इस गन्दे व्यक्ति को भी अपना अवतार मानने में संकोच नहीं हुआ।

बलराम को तो श्रीकृष्ण के बड़े भाई होनेके कारण अवतार मान लिया गया है। वरना इन्होंने कोई भी काम अवतारपन का नहीं किया था। ये तो शराब पीकर औरतों से रङ्गरेलियों में मस्त रहते थे। यह कोरे किसान थे। हल इनके कन्धे पर हर समय रहता था। वही इनका शस्त्र था। यह मजदूर पेशा किसान ही थे। इनको अवतार नहीं माना जा सकता है।

धन्वन्तरि आयुर्वेद विज्ञान को विकसित करने वाले शल्य क्रिया के आविष्कारक एवं शल्य क्रिया-कर्ता को आज भी धन्वन्तरि कहते हैं। जिस व्यक्ति ने प्रारम्भ में इस चिकित्सा

विज्ञान का आविष्कार व प्रचार किया था उसे अवतार मान लिया गया है। इस वैद्य को अवतार नहीं माना जा सकता है। क्योंकि वैद्य को पतित माना गया है। उसका यज्ञ-दान श्राद्ध आदि सभी शुभकर्मों में बहिष्कार करने का आदेश पुराणों में दिया गया है यदि वैद्य अवतार माना जाता तो शुभ कार्यों में वैद्यों की निन्दा नहीं की जा सकती थी और न अश्विनी कुमारों का बहिष्कार किया जाता। वैद्य होने के कारण पौराणिक दृष्टि से धन्वन्तरि को अवतार सूची में से तुरन्त प्रथक कर देना चाहिये।

श्रीकृष्णजी के अवतारवाद की परीक्षा पर प्रथक एक अध्याय में विचार किया जावेगा। वही देख लेवें।

हयग्रीव अवतार तो साक्षात् पशु था। अवतार न तो पशु होते हैं, और न पशुओं को अवतार ही माना जा सकता है। सनातनी पुराणों की यही विशेषता है कि वे पशुओं को भी अवतार मानते हैं। जब सूअर, मछली, नृसिंह, कच्छप को अवतार मान लिया है तो हाथी, ऊँट, हयग्रीव (घोड़ा) को भी अवतार मानने में भागवतकार को लज्जा आने की कोई बात नहीं है।

रामचन्द्र राजा थे। मनुष्य थे, उनकी पत्नी का हरण हुआ, रावण युद्ध में मारा गया, पत्नी प्राप्त हो गई। फिर राज्य करते रहे। अत में गृह कलह से दुःखी होकर सरयू में प्राणांत किया। इस महा-मानव को प्रशंसा के लिये कुछ भी कहा जावे, पर वे ईश्वर अवतार नहीं थे।

सनक, कपिल, नारद, दत्रात्रेय, योगेश्वर थे।

कपिलो नारदो दत्तो योगेशाः सनकादयः ।
तमन्वीयुर्भागवता ये च तत्सेवनोत्सुकाः ॥ ६ ॥
(भाग० ४ । १९)

अर्थ—कपिल, नारद, दत्तात्रेय एवं सनकादिक योगेश्वर भी साथ में आये थे। इस प्रमाण में इन चारों को योगेश्वर बताया गया है। योगी लोग मनुष्य होते हैं। परमात्मा या उसके अवतारों को योगाभ्यास नहीं करना चाहिए। अतः स्पष्ट है कि ये लोग भी मनुष्य ही थे, न कि भगवान या उसके अवतार थे।

उपरोक्त संक्षिप्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि गीताकार ने जो कसौटी अवतारों की परीक्षा की पेश की है उस पर भागवत के २४ अवतारों में एक भी व्यक्ति अवतार पूरा नहीं उतरता है। इनमें से एक ने भी वेद का प्रचार, धर्म का उत्थान, दुष्टों का विनाश तथा सज्जनों की रक्षा ये सारे कार्य (शर्त्त) पूरी नहीं की थीं। कोई पशु था कोई पोस्टमैन, कोई जलजन्तु था, कोई राजा था, कोई ऋषि तपस्वी था। ईश्वर के अवतारत्व की एक भी बात किसी में भी नहीं थी। पुराणकारों ने वेद धर्म विनाशक ऋषभदेव तथा गौतमबुद्ध इन नास्तिक मतप्रवर्तकों को भी अपना पूज्य अवतार मानकर भयंकर भूल की है। पौराणिक ईश्वर का इनको अवतार मान लेने से अवतार वाद का आदर्श नहीं रह जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि अवतारवाद के मौलिक सिद्धान्त की दृष्टि से भागवत के अवतारों की परस्पर विरुद्ध दोनों सूचियों का कोई महत्व नहीं रह जाता है। वह मिथ्या है। भागवत के सारे ही अवतार जाली तथा ढकोसला हैं।

—:o:—

पाँचवां अध्याय

भागवत और श्रीकृष्ण

—०—

प्रातः स्मरणीय श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज आर्य जाति के गौरवशाली महापुरुष थे। आज प्रायः पाँच हजार वर्ष पूर्व उनका जन्म माता देवकी के गर्भ से वासुदेवजी के यहाँ हुआ था। कुछ बड़े होने पर श्रीकृष्ण जी को उज्जैन नगरी में सन्दीपन मुनि के आश्रम (गुरुकुल) में शिक्षार्थ प्रविष्ट कर दिया गया था। वहाँ उन्होंने ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करते हुए गुरु कुलीय शिक्षा को पूर्ण किया था। भागवत पुराण में इसका उल्लेख निम्न प्रकार किया गया है:—

श्रीकृष्ण की शैक्षणिक योग्यता—

अथो गुरुकुले वासमिच्छन्ता वुप जग्मतुः ।
काश्यं सांदीपनिं नाम ह्यवन्तो पुरवासिनम् ॥३१॥
अथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् ।
ाहयन्तावुपेतौस्म भक्त्या देवमिवाहतौ ॥३२॥
तयो द्विज वरस्तुष्टः शुद्धभावानु वृत्तिभिः ।
प्रोवाचवेदान खिलान् साङ्गो पनिषदो गुरुः ॥३३॥

सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान् न्याय पथांस्तथा ।
तथा चान्वी क्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम्।३४।
अहोरात्रै श्चतुः षष्टया संयत्तौ तावतीः कलाः ॥३६॥

(भाग० १०।४५)

अर्थ—अब दोनों गुरुकुल में निवास की इच्छा से काश्यप गोत्रीय सान्दीपनि मुनि के पास गये, जो अवन्तीपुर (उज्जैन) में रहते थे। ३१। वे दोनों भाई विधिपूर्वक गुरुजी के पास रहने लगे। वे बड़े ही सुसंयत तथा नियमित जीवन रखते थे। गुरुजी उनका तथा वे गुरुजी का बड़ा आदर करते थे तथा इष्टदेव के समान गुरुजी को मानते थे। ३२। गुरुजी उनसे प्रसन्न थे, उन्होंने छः अङ्ग तथा उपनिषदों सहित चारों वेदों की उनको शिक्षा दी। ३३। गोपनीय भेदों के सहित धनुर्वेद, धर्मशास्त्र, मनुस्मृति, वेदों का तात्पर्य बताने वाले शास्त्र, तर्कशास्त्र आदि की भी शिक्षा का ज्ञान उनको पूरा करा दिया। ३६।

इससे ज्ञात होता है कि श्रीकृष्णजी वेद विद्या विद्-स्नातक थे। इसके साथ ही वे बड़े भारी राजनीतिज्ञ एवं शूर-वीर योद्धा भी अपने युग के थे इस युग में उनका मान सभी शूर वीर एवं विद्वान करते थे।

श्रीकृष्ण चन्द्रजी महाराज का जन्म यादव कुल में हुआ था। उनकी बहिन सुभद्रा की शादी अर्जुन के साथ हुई थी। इस प्रकार निकट सम्बन्धी होने के कारण उनकी सहायता पांडव पक्ष को सदा ही प्राप्त होती रही थी। महाभारत के महान संग्राम में उन्हीं की कुशलता एवं राजनीतिज्ञता के आधार पर पाण्डव पक्ष विजयी हो सका था। उन्होंने भारत के छोटे-छोटे

राज्यों में विभाजित प्रदेशों को एक कराकर अखण्ड भारत का एक शक्तिशाली साम्राज्य युधिष्ठिर के शासन में बनाने का महान एवं सफल उद्योग किया था। अत्याचारी सामन्तों का विध्वंस उन्होंने स्वयं किया तथा अर्जुन पक्ष से कराया था। जनता को अत्याचारी सामन्तशाही उत्पीड़न से रक्षित बनाने के महान् कार्य करने के कारण इस देश की भावुक जनता ने श्रीकृष्ण जी को साक्षात् भगवान का अवतार मान लिया है।

श्रीकृष्णजी का विवाह रुक्मिणी के साथ हुआ था। उससे उनके प्रद्युम्न नाम का पुत्र पैदा हुआ था। श्रीकृष्णजी का जीवनकाल संघर्षों में बीता था। एक बार उनको जरासन्ध के आक्रमण के कारण मथुरा छोड़कर द्वारिका चला जाना पड़ा था और फिर वे अपने जीवन के अन्त काल तक वहीं राजधानी बना कर रहे थे। एक बार जङ्गल में वे ध्यानावस्थित बैठे थे कि किसी बहेलिये ने उनके एक विषैला बाण मार दिया। बाण उनके पैर में लगा था और वहीं उनके प्राणान्त का कारण हुआ था। उस समय उनकी आयु १२५ वर्ष की थी।

श्रीकृष्णजी महाराज महान् विद्वान्, ईश्वर के परम भक्त, कुशल राजनीतिज्ञ, नित्य सन्ध्या अग्निहोत्र करने वाले, राष्ट्र के पथ प्रदर्शक एवं राष्ट्र-निर्माता थे। उनके पिता वासुदेवजी दृढ़ वैदिक धर्मी थे। बालकपन में उन्होंने श्रीकृष्णजी का विधिवत यज्ञोपवीत संस्कार भी कराया था।

अथ शूर सुतो राजन् पुत्रयोः समकारयत्।
पुरोधसा ब्राह्मणश्च यथावद् द्विज संस्कृतिम् ॥२६॥

(भाग० १० । ४५)

राजन्! वासुदेव ने अपने पुरोहित गार्गाचार्य से दोनों

बालक बलराम व श्रीकृष्णजी का यज्ञोपवीत संस्कार कराया था।

हमारे अध्ययन के अनुसार उनका सम्पूर्ण जीवन अत्यन्त उच्च-पवित्र एवं दूसरों का मार्ग-दर्शक रहा है। इसीलिये आर्य जाति गौरव के साथ उनको अपना प्रातः स्मरणीय पूर्वज स्वीकार करती है। किन्तु भारत का दुर्भाग्य रहा है कि कुछ स्वार्थी साम्प्रदायिक लोगों ने महात्मा श्रीकृष्ण के आदर्श चरित्र को कलङ्कित करने के लिये पुराणों की रचना करके उनको अपनी रचनाओं को व्यासजी के नाम से प्रसिद्ध करके जनता को भ्रम में डाल रक्खा है। पुराणों में भागवत, ब्रह्मवैवर्त, तथा विष्णु पुराण विशेष रूप से श्रीकृष्ण से सम्बन्ध रखते हैं। ये तीनों पुराण वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रंथों में हैं। ऐसा कौन सा लांछन है जो इन पुराणकारों ने कृष्ण के निर्मल चरित्र पर न लगाया हो। हम इस स्थिति पर विचार करते हैं।

भागवतकार श्रीकृष्णजी को विष्णु का अवतार मानता है और अवतार के रूप में श्रीकृष्णजी के जीवन की समस्त घटनाओं को उनकी लीलायें स्वीकार करता है। भागवतकार ने कृष्ण के जीवन की बाल्यावस्था के काल में अनेक घटनाओं की कहानियाँ कल्पित करके अपने पुराण में जोड़ दी हैं जिन पर यदि विचार किया जावे तो इन तुच्छ कहानियों का मिथ्यात्व स्वयं प्रगट हो जाता है।

कहा जाता है कि श्रीकृष्ण को मारने के लिये पूतना नाम की औरत को राजा कंस द्वारा भेजी गयी थी। उसने उनके गाँव में जाकर उनके घर का पता लगाया। घर में घुस कर पालने में पड़े बालक कृष्ण को इसने उठा लिया और स्तन मुँह में दे

दिया। बालक ने स्तन को जोर से दाब दिया और उससे पूतना राक्षसी मर गई। मरकर जब वह गिरी तो छः कोस के स्थान के वृक्ष आदि सभी नष्ट हो गये। अनुमान कीजिये कि पूतना का शरीर कितना बड़ा था। छः कोस लम्बी चौड़ी औरत जिस गाँव में घूमती रही होगी इसकी गलियाँ कितनी बड़ी होंगी तथा जिस घर में वह घुसी होगी उसका दरवाजा व मकान कितना लम्बा-चौड़ा होगा ? यह शेखचिल्ली की गल्प नहीं तो क्या है। यह कथा भागवत स्कन्द १० अ० ६ में दी है।

एक बार नन्हा-सा बालक कृष्ण एक शकट (गाड़ी) के नीचे पालने में सो रहा था। उसने पैर के स्पर्श से गाड़ी उलट दी, और वह गिर कर चूर-चूर हो गई। एक दिन तृणावर्त नाम का (वायु का चक्कर) दैत्य गोकुल में आया और बालक कृष्ण को उड़ाकर आकाश में ले गया। वहाँ कृष्ण ने उसका गला दबोच लिया। वह मर गया। यह कथा भागवत स्कन्द १० अ० ७ में दी हैं।

यह दोनों कहानियाँ बच्चों का दिल बहलाने वाली गल्पें हैं। नन्हा शिशु माल से भरी गाड़ी को लौट दे। वायु के चक्कर तो गर्मी के मौसम में देहातों में बहुधा आते हैं वह (तृणावर्त) कोई शरीर धारी प्राणी नहीं होते हैं जो कोई उनका गला पकड़ कर मारदे। तृणावर्त को दैत्य बताना और गला पकड़ कर उसे मार देना यह स्पष्ट गल्प सिद्ध है।

एक बार कृष्णजो बालकपन में ऊखल को रस्सी से कमर में बाँधकर उसे खींचते हुए यमलार्जुन नाम के दो वृक्षों के बीच में से गुजर गये। ऊखल के धक्के से दोनों महान वृक्ष उखड़ कर गिर पड़े। इसे 'यमलार्जुन' उद्धार का नाम दिया

है। यह कथा भागवत स्क० १० अ० १० में दी है। यह घटना भी कोरी गल्प है। इसे बालक कृष्ण के बल प्रदर्शनार्थ गढ़ा गया है। यदि ये दोनों घास के पौधे हों तब तो कोई महत्व की बात नहीं है। अन्यथा वृक्षों का उखड़ना कल्पित कहानी मात्र है।

एक बार एक बगुला श्रीकृष्ण को निगल गया। उन्होंने उसके अन्दर उसका तालू जलाना प्रारम्भ किया तो उस बगुला ने उनको उगल दिया। बाहर आकर उन्होंने उसकी चोंच पकड़ कर चीर डालो और वह मर गया। यह कहानी भागवत स्क० १० अ० ११ में दी है। उस बगले को बकासुर लिखा है इसी बगुला का भाई अघासुर बताया है। वह एक दिन मुँह फाड़ कर बैठ गया। सारे ग्वाल-बाल बजड़े गायें उसके मुँह में घुस गये। उसके मुँह में फूलकर श्रीकृष्ण ने अपना शरीर इतना बढ़ाया कि अघासुर का मुँह रुन्ध गया और वह मर गया। यह कहानी भाग० १०। १२ में दी है।

यह दोनों कहानियाँ बच्चों का दिल बहलाने के लिये सुन्दर गल्पें हैं, यह सहज ही समझा जा सकता है। इसी प्रकार भागवत स्क० १० अ० १५ में लिखा है कि कृष्ण व बलराम ने एक गधा मार डाला। उसे 'धेनुकासुर उद्धार' का नाम दे दिया गया है। किसी गधे को मार देना भी बड़ी भारी बहादुरी भागवतकार की दृष्टि में थी।

कोई एक काला नाग कहीं यमुना किनारे रहता था। जैसे लोग बहुधा बरसात में सांपों को पकड़ते या मार देते हैं, वैसे ही श्रीकृष्णजी ने उसे या तो पकड़ लिया होगा या मार दिया होगा। आज भी सैकड़ों सांप पकड़े जाते हैं, पर कोई भारी

यश उनको नहीं मिलता है। साँप पकड़ने वालों के शिष्य या बालक भी युक्ति पूर्वक सांप वश में कर लेते हैं। कृष्ण ने उस सांप को वश में कर लिया था, तो इसकी कहानी बनाकर भागवत में स्क० १० अ० १५-१६ तथा १७ में देदी गई है ताकि कृष्ण का महत्व बढ़ जावे—

छोटे काम बड़े करें, तऊ न बड़ाई होय।
ज्यों गिरधर हनुमान को, गिरधर कहे न कोय॥

छोटे लोग बड़ा काम कर देवें तब भी उनको यश नहीं मिलता है जैसे हनूमान को गिरिधर कोई नहीं कहता है।

एक दिन एक व्यक्ति खेलने वाले ग्वाल-वालों में मिल गया और बलराम को पीठ पर चढ़ा कर ले भागा। बलराम ने उसे दैत्य समझा और सर में एक घूँसा मारा। वह मर गया। यह कथा भागवत स्कन्द १० अ० १८ में 'प्रलम्बासुर उद्धार' के नाम से दी है। इस बहादुरी की गल्प पर भागवतकार को पूरा एक ग्रंथ लिखना चाहिये था, पर बेचारा भूल गया। एक छोटा सा अध्याय लिख कर चुप हो गया।

एक बार यात्रा में सब लोग जा रहे थे। नन्द बाबा को एक अजगर ने पकड़ लिया। वे चिल्लाये तो श्रीकृष्ण ने पैर से उसे छू दिया। वह तत्काल एक आदमी बन गया और अजगर की योनि से छूट गया। एक बार एक शङ्खचूड़ नाम का राक्षस सुन्दरी गोपियों को लेकर भाग चला। कृष्ण ने भाग कर उसे पकड़ लिया और उसके सर पर एक घूंसा मारा। वह मर गया। यह कहानी (गल्प) भागवत स्क० १० अ० ३४ में दी है।

एक बार एक बैल दीवाना होकर ब्रज में भागने दौड़ने

लगा। कृष्णजी ने उसे मार डाला। उसे अरिष्टासुर बध, कह कर भागवत स्क० १० अ० ३६ में लिखा गया है।

एक बार श्रीकृष्णजी ने एक घोड़ा का बध किया था तो उसे केशी उद्धार बता दिया गया। एक व्योमासुर नाम का व्यक्ति था। श्रीकृष्ण ने उसको भी मार डाला। इसे व्योमासुर उद्धार का नाम दिया गया है। ये दोनों कथायें भागवत स्क० १० अ० ३७ में दी हैं।

यह सारी की सारी गल्पें नहीं तो क्या हैं। घोड़ा-गधा-बगुला-बैल-औरत पूतना आदि की बध, प्रलम्बासुर, यमलार्जुन, शङ्खचूड़, तृणावर्त उद्धार, सांप पकड़ना आदि की कहानियाँ और इन सब निरर्थक गल्पों की पुराण में भरमार कृष्ण चरित्र का कोई गौरव नहीं बढ़ाती हैं। इनसे भागवत पुराण के मनोरञ्जन उपन्यास होने की पुष्टि तो होती है पर इन गल्पों के गढ़ने से भागवतकार का कोई गौरव नहीं बढ़ सका है।

श्रीकृष्ण के बारे में बहुत प्रसिद्ध किया गया है कि उन्होंने एक बार घोर वर्षा होने पर अपनी ७ साल की आयु में गोवर्धन पर्वत भूमि पर से उखाड़ कर हथेली पर रख लिया था और सात दिन तक वे दिन रात उसे अपने हाथ पर रखे ऊपर उठाये रहे थे। सारे गोकुल वासी उसी पर्वत के नीचे अपना सामान पशु-गाड़ी-बैल आदि लेकर आ गए और सात दिन तक वर्षा बन्द होने तक उसा के नीचे रहे थे। श्रीकृष्णजी ने सारे गोकुल को इस प्रकार विनाश से बचा लिया था। पर्वत धारण करने के कारण उनको गोवर्धनधारी अथवा 'गिरिधारी' भी कहा जाता है। यह कथा भागवत स्क० १० अ० २५ में दी गई है।

यह सम्भव नहीं कि पूरा पहाड़ जमीन में से उखाड़ा जा

सके। पहाड़ों में पत्थर की बड़ी स्थूल तह होती हैं जो पृथ्वी के अन्दर बहुत अधिक गहराई तक चली जाती हैं। पर्वतों को उखाड़ लेना तो असम्भव ही है, यह भी सरलता से सम्भव नहीं होता है कि पर्वतों की खुदाई भी बिना भारी २ यन्त्रों के हो सके, एवं बिना बारूद के उनको तोड़ा भी जा सके। शिक्षित सभी लोग इस विषय को समझ सकते हैं। यदि किसी प्रकार कल्पना भी की जावे कि कोई पहाड़ पृथ्वी के अन्दर किसी भारी विस्फोट के कारण उड़ या उखड़ जावे, तो भूमि के अन्दर सैकड़ों गज गहरे भयङ्कर गड्ढे, ऊबड़-खाबड़ खाईयाँ बन जावेंगी जिनमें धुसना भी सम्भव नहीं होगा। हाँ! यदि कृष्णजी ने उस बचपन की आयु में चाकू से उस पहाड़ को तह नीचे से तराश कर पवत को इस प्रकार काट लिया हो जैसे मूली को एक-सा काट लेते हैं तब तो पहाड़ उखड़ने के बाद जमीन एक-सी चौरस उसके नीचे निकल आई होगी जहाँ कोई छिप सका होगा और साथ ही यह भी होगा कि गोवर्धन पहाड़ कोई मूली या गाजर जैसा नाजुक पौधा या कोई फल रहा होगा जिसे उन्होंने उखाड़ या काट लिया होगा तथा गोकुल वासी चींटियों जैसे कीड़े रहे होंगे जो उसके नीचे छिप गये होंगे। सात वर्ष की आयु के बालक कृष्ण के शरीर की ऊँचाई एक गज की रही होगी, ऊपर को हाथ उठाने से दो बालिश्त वह पौधा और ऊँचा उठ गया होगा। भागवतकार चण्डू पी कर यह कहानी लिखने बैठा होगा ऐसा अनुमान होता है। अन्यथा पहाड़ को खोद कर हथेली पर उठा लेना, ऐसी गल्प वह सही होशहवास में नहीं लिखता। यह सम्भव हो सकता है कि जैसे लोक में कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति सारे जन-समूह को अपनी अंगुली पर नचाता है, गान्धीजी की अँगुली पर भारत नाचता था। अमुक

व्यक्ति आसमान सर पर उठाये फिरता है इत्यादि। तो इसका सीधा अर्थ यह होता है कि वह व्यक्ति इतना प्रभावशाली है कि जन-समूह या सारा देश उसके इशारे पर चलता है इत्यादि— ठीक इसी प्रकार श्रीकृष्णजी ने इसी प्रकार अपने बालवर-मण्डल द्वारा किसी वर्षा काल में गोकुल निवासियों की सेवा करके उनकी रक्षा की हो और प्रतिष्ठा के रूप में कहा गया हो कि उन्होंने सारे गोवर्धन को हथेली पर उठा रखा था, तब इस अर्थ में तो इस कथा की सङ्गति लग सकती है। किन्तु पर्वत उठाना, उसके नीचे सारे गोकुल वासियों का सारे पशु आदि सहित आकर सात दिनों तक निवास करना जिस रूप में भागवत में लिखा है उसी रूप में यदि माना जावेगा तो यह सारी कथा भागवत रूपी उपन्यास की दिलचस्प गल्प से अधिक मूल्य नहीं रखेगी।

इसी प्रकार भागवतकार ने स्क० १० अ० २ में एक बड़ी मनोरञ्जक गल्प और लिखी है। वह लिखता है कि—भगवान विष्णु ने योगमाया को आदेश दिया कि:—

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोप गोभिरलंकृतम्।
रोहिणी वासुदेवस्यभार्याऽऽस्ते नन्दगोकुले।
अन्याश्च कंस संविग्ना विवरेषु बसन्ति हि ॥७॥

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम्।
तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेषय ॥८॥

अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे।
प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्द पत्न्यां भविष्यसि ॥९॥

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ।
अहोविस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥१५॥
(भा० १०।२)

अर्थ--देवि ! कल्याणी ! तुम बृज में जाओ। उस गौओं और ग्वालों से सुशोभित प्रदेश में नन्द बाबा के गोकुल में वासुदेव की पत्नी रोहिणी तथा अन्य पत्नियाँ कंस के भय से गुप्त रूप से निवास करती हैं।७ इस समय मेरा शेष नाम का अंश देवकी के गर्भ में स्थित है। उसे वहाँ से निकाल कर रोहिणी के गर्भ में रख दो।८। अब में अपने पूरे अंशों के साथ देवकी का पुत्र बनूंगा और तुम नन्द पत्नी यशोदा के गर्भ से जन्म लेना।९। तब उक्त आदेशानुसार योगमाया ने देवकी के पेट में से उसका गर्भ निकाल कर रोहिणी के गर्भाशय में रख दिया तो गाँव वाले कहने लगे कि देवकी का गर्भ तो नष्ट हो गया।१५।

देवकी के उदर में से गर्भ निकाल कर रोहिणी के गर्भाशय में रख दिया गया परन्तु न तो देवकी को पता उसके निकलने का लगा और न रोहिणी को उसके घुसने का लगा। कैसी सुन्दर गल्प भागवतकार ने लिखी है। दोनों औरतें किसी जनाने अस्पताल में भी नहीं गईं, न उन्हें कोई प्रसव या प्रवेश का दर्द हुआ और गर्भ भी एक की कोख में से निकल कर दूसरे के गर्भाशय में पहुँच गया। यह बाजीगरी का सुन्दर करिश्मा रहा। पुराणकार की सूझ बड़ी विलक्षण रही है। उसकी बेतुकी कल्पना की उड़ान बहुत ऊँची थी।

जिस प्रकार भागवतकार ने कृष्ण के बाल-चरित्र में स्वकल्पित अनेक निरर्थक कथाओं का प्रवेश किया है, उसी

प्रकार उसने अपनी कल्पना की उड़ान में उनके निर्दोष चरित्र को कलङ्कित करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी है। ऐसा प्रतीत होता है कि भागवतकार श्रृङ्गार-रस प्रिय कवि था और उसने श्रृङ्गार-रस का भागवत में प्रवेश करने के लिये श्रीकृष्णजी को श्रृङ्गार-रस का नायक बनाया है, गोपियों को श्रृङ्गार-रस की नायिका बनाया है और भागवत के दशम स्कन्द में अपने कल्पित काम कौतुक पूर्ण कल्पनाओं को कृष्ण और गोपियों के माध्यम से अपनी रसिक कविता में प्रदर्शित किया है।

पुराणों की कल्पित गोपियाँ कौन हैं, इस विषय में पुराण-कारों ने अनेक कल्पनायें प्रस्तुत की हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि गोलोक में सुदामा ने राधा को शाप दे दिया तो—

वृषभानु सुता राधा सुदाम्नः शाप कारणात् ॥८६॥

त्रिंशत्कोटिञ्च गोपीनां गृहीत्वा भर्त्तुराज्ञया।

पुण्यचभारतं क्षेत्रं गोलोकादा जगामसा ॥८७॥

ताभिः सार्द्धं स रेमे च स्वपत्नीभिर्मुदान्वितः।

पाणिं जग्राह राधायाः स्वयं ब्रह्मा पुरोहितः ॥८८॥

(ब्रह्मवैवर्त कृष्ण जन्म खं० ४ अ० ११५)

अर्थ—सुदामा के शाप के कारण राधा वृषभानु की पुत्री ने तीस करोड़ गोपियों को साथ लेकर गोलोक से आकर पवित्र भारत क्षेत्र में जन्म लिया था। उनके साथ पत्नी के समान श्राकृष्णजी ने रमण (विषय भोग) किया था। तथा ब्रह्मा के पारोहित्य में राधा के साथ विवाह किया था।

उपरोक्त विवरण के अनुसार सारी गोपियां किसी कल्पित गौलोक से भारत में आकर जन्मी थीं और उनकी संख्या तीस

करोड़ पुराणकार बतलाता है। आज भारत की घनी आबादी में सारे भारत और पाकिस्तान में मिला कर भी तीस करोड़ स्त्रियाँ नहीं हैं, तो उस युग में जबकि आबादी देश की बहुत कम थी, अकेले मथुरा-गोकुल-वृन्दावन में तीस करोड़ गोपियाँ (औरतें) लिख देना गल्प नहीं तो क्या है गोपियाँ विवाहिता औरतें थीं। तब क्या साठ करोड़ की जनसंख्या जिला मथुरा के छोटे से क्षेत्र में समा सकती थीं ? स्पष्ट है कि पुराणकार गल्प लिख गया है, जो कि सत्य से बहुत दूर है। इसी प्रकार गोपों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है:—

कृष्णस्य लोम कूपेभ्यः सद्यो गोप गणो मुनेः।
आविर्बभूव रूपेण वेशेनैव च तत्समः॥
(ब्रह्मवैवर्त पु० ब्रह्म खं० अ० ५।४२)

अर्थ—कृष्ण के लोम कूपों से गोपों की उत्पत्ति हुई जो रूप और वेष में उन्हीं के समान थे। कृष्ण के शरीर से उत्पन्न हुए गोप उनके पुत्रवत हुए। तब उनकी बधुऐं पुत्र बधू हुईं। उन्हीं से कृष्ण का श्रृङ्गार क्रीड़ा का सम्बन्ध महान अनुचित कर्म हुआ। गोप व गोपियों की उत्पत्ति की उपरोक्त कल्पनाऐं ऊटपटांग होने से मिथ्या हैं। यह सारी कल्पनाऐं इसीलिए की गईं कि श्रीकृष्ण तथा गोपियों का निकट का सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि आज भी जैसे ग्रामों में लड़के लड़कियाँ गाय आदि पशु चराने का काम साथ-साथ करते हैं, वैसे ही उस समय भी करते थे। श्रीकृष्णजी भी बाल्य काल में गौ चराने जाते होंगे। श्रृङ्गार-रस के कवियों ने उन ग्वाले बालकों को गोप, उन ग्वालिन छोकरियों (कन्याओं) तथा स्त्रियों को गोपी बना कर उनको अपने पुराण रूपी उप-

न्यासों में नायका व श्रीकृष्ण को नायक बना दिया है, और इन्हीं दोनों गोप गोपियों को अपने इन नाटक या उपन्यासों में पात्र बना कर शृङ्गार-रस की कविता की रचना की है।

गीताकार तथा महाभारत ग्रन्थकार ने श्रीकृष्ण को विद्वान्, शूरवीर, चतुर राजनीतिज्ञ एवं एक श्रेष्ठ व्यक्ति सिद्ध किया है, वहाँ शृङ्गार प्रिय पुराणकारों ने उनको चरित्र की दृष्टि से बहुत नीचे गिराने का प्रयास किया है। ब्रह्मवैवर्त तथा भागवत पुराण इस दृष्टि से इस प्रयास में सब से अग्रणी हैं। इस विषय में इन दोनों ही वैष्णव पुराणों के निम्न उद्धरण द्रष्टव्य हैं। श्रीकृष्ण के बाल चरित्र में घोड़ा-गधा-बैल-बगुला आदि के बध की घटनाओं को स्वकल्पना से जोड़ने के बाद भागवतकार श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ प्रेम व रासलीलाओं का वर्णन करते हुए लिखता है कि ब्रज की गोपियाँ जंगली व बदमाश स्त्रियां थीं।

गोपियां व्यभिचारिणी थीं

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचार दुष्टाः ॥५६।

(भा० १०।४७)

अर्थात्--गोपियां जंगली, व्यभिचारिणी और बड़ी दुष्टा औरतें थीं।

तमेव परमात्मानं जार बुद्ध्यापि संगताः ॥११॥

(भा० १०।२६)

अर्थ--उन व्यभिचारिणी गोपियों का श्रीकृष्ण में व्यभिचार भाव रहता था।

गोपियों की कृष्ण को पति बनाने की प्रार्थना

नन्द गोप सुतं देवि पतिं मे कुरुते नमः ॥४॥

(भा० १०।२२(

अर्थ—हे देवि ! श्रीकृष्ण को हमारा पति बना दीजिये।

इन तीन प्रमाणों से स्पष्ट है कि भागवतकार की गोपियाँ जङ्गली, बदमाश, व्यभिचारिणी तथा दुष्टा औरतें थीं। वे श्रीकृष्ण के साथ विषय भोग की कामना तथा उसी प्रकार का प्रेम रखती थीं। गोपियों की इस व्यभिचार भावना की पूर्ति श्रीकृष्णजी किया करते थे। इसके लिए रास रचाये जाते थे, यमुना के जल में जल-क्रीड़ायें होती थीं। और भी अनेक प्रकार रहे होंगे क्योंकि श्रीकृष्णजी को उनकी मनोकामनाओं की पूर्ति करनी थी। रासलीला एवं जल क्रीड़ाओं का वर्णन उपस्थित करने से पूर्व हम कृष्ण के भागवती चरित्र पर प्रकाश डालने वाली एक दो घटनायें प्रस्तुत करते हैं जिससे आगे के विषय को समझने में सरलता होगी।

चीर हरण की कथा

एक बार कुछ गोपियां यमुना के जल में भागवत के अनुसार नग्न स्नान कर रही थीं। उनके सारे वस्त्र किनारे पर रखे हुए थे ताकि जल में से निकल कर वे उनको पहन सकें। श्रीकृष्णजी वहाँ जाते हैं और सारे वस्त्र उठा कर एक वृक्ष पर चढ़ जाते हैं। जब गोपियों का ध्यान वस्त्रों पर गया तो उन्होंने देखा कि श्रीकृष्णजी उनको लिए वृक्ष पर बैठे हैं। जाड़े की ऋतु थी। उन्होंने कृष्ण से वस्त्र देने को कहा—कृष्ण ने कहा, जल से बाहर आ कर ले जाओ। बहुत खुशामद करने पर भी जब वस्त्र नहीं दिए गए तो विवश हो कर वे अपने हाथों से अपने गुप्ताङ्गों को ढक कर जल से बाहर आईं और वस्त्र मांगे, तो उनके साथ गम्भीर मजाक की गई। भागवतकार इसका निम्न प्रकार वर्णन करता है:—

भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ ।
अत्रागत्यस्व वासांसि प्रतीक्षन्तु शुचिस्मिताः ॥१६॥
ततो जलाशयात् सर्वा दारिकाः शीत वेपिताः ।
पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्षिताः ॥१७॥

यूयं विवस्त्रा यदपो धृतवृता
व्यगाहृ तैत्ततदु देव हेलनम् ।
बध्वाञ्जलिं मूर्ध्न्य पनुत्तयेंऽहसः
कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥१६॥

तांस्तथावनता दृष्ट्वा भगवान् देवकी सुतः ।
वासांसि ताभ्य प्रायच्छत् करुणस्तेन तोषितः ॥२१॥

दृढं प्रलब्धा त्रपया च हापिताः
प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ।
वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं
तानाभ्यसूयन् प्रिय सङ्ग निर्वृताः ॥२२॥

परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठ सङ्गमसज्जिताः ।
गृहीत चित्ता नो चेलुस्तस्मिंल्लज्जायितेक्षणाः ॥२३॥
(भा० १०।२२)

अर्थ—कृष्ण ने कहा—जब तुम मेरी दासी बनती हो तो जैसे में कहूँ वैसे करो। यहाँ आकर अपने कपड़े ले जाओ।१६। वे कुमारियाँ ठण्ड से काँप रही थीं। कृष्ण की यह बात सुन कर

दोनों हाथों से अपने आगे के गुप्ताङ्ग छिपाकर वे कृष्ण के पास गईं। तो श्रीकृष्ण ने कहा कि तुमने वृत लिया है और नग्न होकर स्नान करके वरुण देवता का अपमान किया है। अतः दोनों हाथ (गुप्ताङ्ग से हटाकर) जोड़कर सर से लगाकर प्रणाम करो तब कपड़े मिलेंगे। १९। जब गोपियों ने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर प्रणाम किया तो कृष्ण बहुत आनन्दित हुए और उनके वस्त्र दे दिए। २१। भागवतकार कहता है कि श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ छल व मजाक की, उनका लज्जा संकोच छुड़ाया, उनको कठपुतली की भाँति नचाया फिर भी बजाय अप्रसन्न होने के वे कृष्ण के संग से प्रसन्न हुई। २२। उन्होंने अपने वस्त्र पहिन लिए और बजाय आगे जाने के वे श्रीकृष्ण के साथ समागम करने के लिए सजकर उन्हीं की ओर लजीली चितवन से निहारती रहीं। २३।

भागवतकार लिखता है कि उसके बाद श्रीकृष्ण ने यह आश्वासन दिया कि आने वाली शरद ऋतु की रात्रियों में मेरे साथ बिहार करना।

इस घटना के विषय में स्थिति स्पष्ट है। भागवत के अनुसार कृष्ण ने उन व्यभिचार दुष्टा गोपियों के साथ गन्दी हँसी मजाक करने के लिए ही उनके कपड़े चुराये थे। उनके हाथ योनि पर से उठवाकर जब उनके गुप्ताङ्गों के नग्न-दर्शन कर लिए और उन्हें कठपुतली की भांति नचा लिया तब उनको वस्त्र दिये थे। पुराणकार यदि यह न लिखता कि इनके साथ छल व मजाक किया, उन्हें नचाया तब तो इस घटना को कृष्ण के अबोधपन की बात माना जा सकता था, किन्तु उक्त शब्द अबोधपन नहीं बताते हैं। वस्त्र चुराने का उद्देश्य ही गोपियों के गुप्ताङ्गों का

नग्न दर्शन व उनसे हँसी मज़ाक करना था। यदि कहा जावे कि उस समय कृष्ण सात साल के बालक थे। उनमें काम विकार सम्भव नहीं था तो यह भी मिथ्या तर्क होगा। पाँच साल के बालक प्रहलाद ने अपने को काम पीड़ित बताया था तथा उस आयु में उसे कामशास्त्र की सभी बातों का प्रत्यक्ष अनुभव था। यह हम 'भागवत में गल्पों का विशाल भण्डार' नामक अध्याय में आगे लिखेंगे। हम आगे राधा तथा कुब्जा से कृष्ण के विषय भोग की घटनायें देते हैं जिनसे भी यह स्पष्ट हो जावेगा कि पुराणकारों की दृष्टि में श्रीकृष्ण बाल्यावस्था से ही 'काम-शास्त्र विशारद' थे। ऐसी दशा में चीर हरण की घटना का कोई पवित्र उद्देश्य सिद्ध नहीं किया जा सकेगा।

—कुब्जा समागम—

श्रीकृष्णजी मथुरा गये। बलरामजी उनके साथ थे। मथुरा में राजमार्ग पर उन्होंने एक कुबड़ी युवती को देखा। उसका मुख सुन्दर था पर शरीर टेढ़ा था। कृष्ण ने उससे पूछा तू कौन है? उसने उत्तर दिया कि मैं कुब्जा नाम की स्त्री हूँ। कंस को अंगराग ले जाती हूँ।' कृष्ण की बातों से वह उन पर काम मुग्ध हो गई—

रूप पेशलमाधुर्यहृ सितालाप वीक्षितैः।
धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम् ॥४॥

अर्थ—कृष्ण के रूप, सुकुमारता, रसिकता, हास्य एवं चितवन से वह उन पर अनुरक्त हो गई (आशिक हो गई) उसने अपना अंगराग उनको दे दिया।

इसके बाद श्रीकृष्ण ने उसके—

पद्भ्यांमाक्रम्यप्रपदे द्वयङ्गुल्युत्तानपाणिना ।
प्रगृह्य चुबुके ऽध्यात्म मुदनी नमदच्युतः ॥७॥
सा तदर्जु समानाङ्गी बृहच्छ्रोणि पयोधरा ।
मुकुन्द स्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ॥८॥
ततो रूप गुणौ दार्य सम्पन्ना प्राह केशवम् ।
उत्तरीयान्तमाकृष्य स्मयन्ती 'जात हृच्छया ॥९॥
एहि वीर गृहम् यामो न त्वां त्यक्तु मिहोत्सहे ।
त्वयोन्मथित चित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥१०॥
एष्यामि ते गृहम् सुभ्रूः पुंसामाधि विकर्शनम् ।
साधि तार्थोग्रहाणांनः पन्थानां त्वं परायणम् ॥१२॥

(भाग१० । ४२)

अर्थ—श्रीकृष्ण ने अपने पैरों से कुब्जा के दोनों पैर के पंजे दबा लिये और हाथ ऊँचा करके दो अँगुलियाँ उसकी ठोड़ी में लगाईं तथा उसके शरीर को तनिक उचका दिया । ७ । उचकाते ही उसका अङ्ग सीधा एक-सा हो गया । कृष्ण की कृपा से तत्काल वह विशाल नितम्ब तथा उठे हुये पयोधर (स्तनों वाली सुन्दरी युवती बन गई । ८ । उसी क्षण वह रूप, गुण तथा उदारता से युक्त हो गई । उसके मन में श्रीकृष्ण से मिलने की कामाग्नि जाग उठी । उसने उनके दुपट्टे को पकड़कर खींचते हुए कहा । ९ । वीर ! मेरे घर चलो, तुमने मेरे दिलको मथ डाला है । अब मैं तुमको छोड़ नहीं सकती हूँ । १० । कृष्ण ने कहा—सुन्दरी ! मैं तुम्हारे घर अवश्य आऊँगा । तुम्हारा घर

संसारी लोगों को मानसिक परेशानी मिटाने का साधन है।१२। ('मानसिक परेशानी' शब्दों से श्रीकृष्ण जी का रहस्यार्थ क्या था यह प्रत्येक व्यक्ति समझ सकेगा)

इसके बाद श्रीकृष्ण बलराम आदि चले गये। कंस बध के बाद पुनः लौट कर श्रीकृष्णजी कुब्जा के घर पर गये। वहाँ उसकी बहुमूल्य सेज पर बैठ गये। कुब्जा सज कर सुन्दर वस्त्र पहिनकर मुस्कराती हुई उनके पास आई—

आहूय कान्तां नवसंगम ह्रिया
विशंकितां कङ्कण भूषिते करे।
प्रगृह्य शय्या मधिवेश्य रामया
रेमेऽनुलेपार्पण पुण्य ले शया ॥६॥

सानङ्गतप्त कुचयोरुर सस्तथा क्षणे
जिघ्रन्त्यनन्त चरणेन रुजो मृजन्ती।
दोर्भ्यां स्तनान्तर गतं परिरभ्य कान्त-
मानन्द मूर्ति मजहादतिदीर्घतापम् ॥७॥

अहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कति चिन्मया।
रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं सङ्ग तेऽम्बु रुहेक्षण ॥६॥
(भागवत १० ।४८)

अर्थ—कुब्जा नवीन मिलन के संकोच से कुछ झिझक रही थी। तब कृष्ण ने उसे अपने पास बुला लिया। और उसकी कंकण से शोभित कलाई पकड़कर अपनी खाट पर डाल लिया

और उसके साथ रमण करने लगे। कुब्जा ने अङ्गराग का लेप देकर यह पुण्य कमाया था। ६। कुब्जा कृष्ण के चरणों को अपने काम सतप्त हृदय वक्षस्थल और नेत्रों पर रखकर उनकी सुगंध लेने लगी। अपनी छाती से लगे हुए आनन्द मूर्ति कृष्ण का अपनी दोनों भुजाओं से गाढ़ आलिङ्गन करके कुब्जा ने अपना दीर्घकालीन विरह ताप को शान्त किया। ७। वह बोली! प्रियतम्! यहीं रहकर कुछ दिनों तक मेरे साथ रमण (विषय-भोग) कीजिये। मुझसे अब आपका साथ छोड़ा नहीं जाता है। ९।

भागवत के इस वर्णन से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण का कुब्जा के साथ विषय भोग (व्यभिचार) हुआ था। जिसे भागवतकार पुण्य कर्म मानता था। इस कुब्जा समागम की कथा को विस्तार के साथ देकर वैष्णव धर्म के मुख्य दूसरे पुराण ब्रह्मवैवर्त ने अधिक स्पष्ट विवरण प्रस्तुत किया है, जो संक्षेप में निम्न प्रकार है—

निद्राञ्चलेभे साकुब्जा निद्रेशोऽपि ययौमुदा ।।५३।।
बोधयामास तां कृष्णो न दासी श्चापि निद्रिताः।
तामुवाच जगन्नाथो जगन्नाथ प्रियां सतीम् ।।५५।।
त्यजनिद्रां महाभागे श्रङ्गारं देहि सुन्दरि।
पुरा शूर्पणखा त्वञ्च भगिनी रावणस्य च ।।५६।।
राम जन्मनि मद्धेतोस्त्वया कान्ते तपः कृतम् ।।५७।।
अधुना सुख सम्भोगं कृत्वा गच्छ ममालयम् ।।५८।।

इत्युक्त्वा श्री निवासश्च कृत्वा तामेव वक्षसि ।
नग्नां चकार शृङ्गारं चुम्बनञ्चापि कामुकीम् ॥५६॥
सा सस्मिता च श्रीकृष्णं नव सङ्गम लज्जिता ।
चुचुम्ब गण्डे क्रोड़े तां चकार कमलां यथा ॥६०॥
सुरते विर तिर्नास्ति दम्पती रति पण्डितौ ।
नाना प्रकार सुरतं बभूव तत्र नारद ॥६१॥
स्तनश्रोणि युगं तस्या विक्षतं च चकारह ।
भगवान् न खरैस्तीक्ष्णै र्दशनै रधरं वरम् ॥६२॥
निशावसान समये वीर्या धानं चकार सः ।
सुख संभोग भोगेन मूर्छामाप च सुन्दरो ॥६३॥
तत्राजगाम तां तन्द्रा कृष्ण वक्षः स्थलस्थिताम् ॥६४॥
भगवानपि तत्रैव क्षणं स्थित्वा स्वमन्दिरम् ।
जगाम यत्र नन्दश्च सानन्दो नन्द नन्दनः ॥६५॥

(ब्रह्मवैवर्त पु० अ० ७२)

अर्थ—कुब्जा अपने घर पर रात को सो रही थी। श्रीकृष्ण चुपके से वहाँ पहुँच गये और धीरे से उसे जगाया। उन्होंने उसके पास सोती हुई दासी को नहीं जगाया । श्रीकृष्ण ने उससे कहा—प्रिये ! निद्रा त्याग दो और मेरे साथ सम्भोग करो (मुझे शृङ्गार दान दो)। हे सुन्दरी, तुम पूर्व जन्म की रावण की बहिन सूर्पणखा हो। हे प्रिये ! तुमने पूर्व जन्म में मेरे रामावतार के समय में मेरे लिये बड़ी तपस्या की थी । अब

तुम मेरे साथ सुखपूर्वक संभोग करो और मेरे लोक को प्राप्त करो। यह कह कर कृष्ण ने उसे अपनी छाती से चिपटा लिया। उन्होंने उस कामुकी को नङ्गा कर लिया और संभोग करने लगे तथा उसे चूमने लगे। वह श्रीकृष्ण के साथ नये विषय भोग से लज्जित हो गई। लक्ष्मी के समान वे उसे चूमने व संभोग करने लगे। क्योंकि दोनों ही विषय भोग की विद्या में पूर्ण चतुर थे अतः दोनों के विषय भोग का अन्त ही न आता था। हे नारद! वहाँ नाना प्रकार से संभोग क्रिया की गई। कृष्ण ने उसके दोनों स्तनों को नोंच-नोंच कर जख्मी कर दिया और उसके ओठों को दांतों से (चूसते-चूसते) काट खाया। रात्रि के अन्त होने के समय (दिन निकलने के पूर्व) श्रीकृष्ण ने वीर्याधान कर दिया। कृष्ण के साथ संभोग के आनन्द से वह स्त्री मूर्छित हो गई और उसे श्रीकृष्ण की छाती के ऊपर पड़े हुए ही तन्द्रा आ गई। श्रीकृष्णजी भी क्षण भर वहाँ ठहर कर अपने घर को चले गये, जहाँ नन्दजी सानन्द ठहरे हुए थे।

इस विवरण से स्पष्ट है कि कृष्णजी कुब्जा से व्यभिचार करने रात को छिप कर उसके घर गये थे। चुपके से उसे जगा लिया, दासियों तक को पता न चल पाया। रात भर घमासान विषय भोग किया। रात के बीतने के समय वीर्याधान किया और दिन निकलने से पहिले चुपके से अपने घर जा पहुँचे ताकि कोई जान न ले। पुराणकार ने तुक मिलाई कि पूर्व जन्म में श्रीकृष्णजी रामचन्द्रावतार थे। कुब्जा उस समय उस जन्म में सूर्पणखा के नाम से रावण की बहिन थी। वह राम पर आसक्त थी। पर सीता और लक्ष्मण की उपस्थिति के कारण वहाँ उसकी काम भावना पूर्ण न कर सके थे। बल्कि लक्ष्मण ने उस की राम में कामासक्तता देख कर उसकी नाक तक काट ली थी।

वही सूर्पणखा इस जन्म में कुब्जा बन गई। रामचन्द्र कृष्ण बन गये। दोनों का संभोग हो गया। दोनों की दोनों जन्मों की तबियत भर गई। क्या सुन्दर रसिक कल्पना की गई है। पर इस कल्पना से श्रीकृष्णजी को पुराणकारों ने व्यभिचारी, पर-स्त्रीगामी तो सिद्ध कर ही दिया, चाहे उनकी आयु कुछ भी क्यों न रही हो। इसी प्रकार की एक कल्पना और भी की गई है, पद्म-पुराण में श्रीकृष्ण के परनारियों (गोपियों) से व्यभिचार का उल्लेख करते हुए लिखा है।

गोपियों से विषय भोग

अवधीरित कन्दर्प कोटि लावण्य मच्युतम्।
सर्वा गोपस्त्रियो दृष्ट्वा मन्मथास्त्रेण पीड़िताः ॥१६३॥

पुरामहर्षयः सर्वे दण्डकारण्य वासिनः।
दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तु मैच्छन्सु विग्रहम् ॥१६४॥

ते सर्वे स्त्रीत्व मापन्नाः समुद्भूतास्तु गोकुले।
हरिं सम्प्राप्यकामेन ततो मुक्त्वा भवार्णवात् ॥१६५॥

तस्य वेणु ध्वनिं श्रुत्वा रजन्यां वल्ल वाङ्गनाः।
शयनादुत्थिताः सर्वा विकीर्णाम्बर मूर्द्धजाः ॥१६६॥

त्यक्त्वापतीन् सुतान्बन्धूंस्त्यक्त्वा लज्जां कुलंस्वकम्।
जगत्पतिं समाजग्मुः कन्दर्पशर पीड़िताः ॥१७०॥

समेत्यगोप्यः सर्वास्तु भुजैरालिङ्ग्य केशवम्।
बुभुजुश्चाधरं देव्यः सुधामृत मिवाऽमरा ॥१७१॥

तामिः सर्वाभिरात्मेशः क्रीडया मास गो वृजे ।
तेनाऽपि ताः स्त्रियः सर्वारेमिरे निर्भया वृजे ॥१७२॥
इत्येवं रमया मासुरहन्य हनि केशवम् ।
वृन्दावने मनो रम्ये कालिन्दी पुलिने तथा ॥१७३॥

पार्वत्युवाच—

धर्म संरक्षणार्थाय जगत्यामवतीर्य सः ।
परदाराभि गमनं कथं कुर्याज्जनार्दनः ॥१७४॥

रुद्र उवाच—

तयाऽपहृतपापात्व सामर्थ्याद् व्यापिनः प्रभोः ।
दोषोअत्र नास्ति सुभगे देवस्य परमात्मनः ॥१७७॥

(पद्म पुराण उत्तर खण्ड अ० २४५ कलकत्ता)

अर्थ—श्रीकृष्ण के करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर रूप को देख कर सारी गोप स्त्रियां कामदेव की अग्नि से पीड़ित हो गईं। (यह गोपियाँ कौन थीं, इसका समाधान करते हुए पुराणकार बताता है)। पहिले दण्ड कारण्य बन में सारे ऋषि लोग राम को देख कर उनसे भोग करने की इच्छा करने लगे थे। वे ऋषिगण ही द्वापर के अन्त में गोपियां बन गये। रामचन्द्रजी कृष्ण बन गये और कृष्ण के साथ उन्होंने अपनी कामदेव की अग्नि को शान्त कर लिया तथा संसार सागर से तर गये।—(आगे पुराणकार लिखता है) कृष्ण की बांसुरी की ध्वनि रात में सुन कर सारी गोप स्त्रियां सोते से उठ कर अपने पति, पुत्र, भाईयों को तथा कुल की लज्जा को त्याग कर कामदेव की आग से पीड़ित होकर उसे बुझाने को श्रीकृष्ण के

पास चली जाती थीं। वे वहाँ जाकर श्रीकृष्ण को भुजाओं में भर कर आलिङ्गन करती थीं। वे उनके ओठों को चूसते थे। वे गोपियां कृष्ण के साथ कालिन्दी के कूल में तथा वृन्दावन में गो वृज में रात को निर्भय होकर रमण विषय भोग किया करती थीं।

पार्वती ने पूछा—जब भगवान् का अवतार धर्म की रक्षा के लिए हुआ तो उन्होंने पर-स्त्री गमन क्यों किया ? तो शिवजी ने उत्तर दिया कि भगवान् को कोई पाप नहीं लगता है। वे तो हे देवी ! सर्व सामर्थ युक्त है।

उपरोक्त विवरण से भी प्रगट है कि श्रीकृष्ण पर-स्त्री-गामी थे। सारी गोपियां उन्होंने भ्रष्ट कर डाली थीं। पार्वती का प्रश्न भी उनके पर-स्त्री गमन की पुष्टि करता है, जब कि शिवजी का उत्तर ऊटपटांग है। क्या पाप कमजोर व गरीबों को ही लगता है। पाप तो पाप है, चाहे निर्बल करे, चाहे बलवान करे। यदि बड़े आदमी ही कुकर्म करके गंदा आदर्श पेश करेंगे, तो दूसरे उनका अनुकरण करके सारे समाज को गंदा व पापी बना देंगे। इस प्रकार पुराणों से सिद्ध है कि जङ्गली, व्यभिचारिणी गोपियों के साथ कृष्ण का विषय भोग का सम्बन्ध था। इसी प्रकार राधा नाम की स्त्री के साथ पुराणकार ने कृष्ण की रति क्रिया का वर्णन किया है। यद्यपि भागवत पुराण में राधा का कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु ब्रह्मवैवर्त पुराण में इसका भी विस्त्रित उल्लेख है। यह पुराण भी वैष्णवो पुराण है। हम अति संक्षेप से उस वर्णन को उद्धृत करते हैं।

राधा के साथ श्रीकृष्ण की रति क्रिया

एकदा कृष्ण सहितो नन्दो वृन्दावनं ययौ ॥१॥

चकार मायया ऽकस्मान्मेघाच्छन्न नभो मुने ॥३॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगाम कृष्ण सन्निधिम् ॥८॥
जग्राह बालकं राधा जहास मधुरं मुखात् ॥२८॥
कृत्वा वक्षसितं कामात् श्लेषं श्लेषं चुचुम्ब च ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा माया सद्रत्न मण्डप्म् ।
ददर्श रत्न कलशं शतेन च समन्वितम् ॥३६॥
सा देवी मण्डपं दृष्ट्वा जगामाभ्यन्तरं मुदा ॥४४॥
ददर्श तत्र ताम्बूलं कर्पूरादि समन्वितम् ॥४५॥
पुरुषं कमनीयं च किशोर श्याम सुन्दरम् ॥४६॥
शयानं पुष्प शय्यायां सस्मितं सुमनोहरम् ॥४७॥
क्रोड़ं बालक शून्यञ्च दृष्ट्वा तं नव यौवनम् ॥५२॥
सर्व स्मृति स्वरूपा सा तथापि विस्मयं ययौ ॥५३॥
तमुवाच हरिस्तत्र स्मेरानन सरोरुहाम् ॥५५॥
आगच्छ शयने साध्वी कुरु वक्षःस्थलेहिमाम् ॥६१॥
तिष्ठ त्यह शयानस्त्वं कथाभिर्यत्क्षणंगतम् ॥८१॥
वक्षःस्थले च शिरसि देहिते चरणाम्बुजम् ॥८२॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा जगाम पुरतो हरेः ॥८६॥
तस्या हस्तञ्च श्रीकृष्णं ग्राहयामास तं विधिः ॥१२४॥

प्रणम्य राधां कृष्णं च जगाम स्वालयं मुदा ॥१३७॥
प्रणम्य श्री हरिं भक्त्या जगाम शयनं हरेः ॥१३६॥
कृष्णश्चर्वित ताम्बूलं राधिकायैमुदा ददौ ॥१४३॥
राधा चर्वित ताम्बूलं ययाचे मधुसूदनः ॥१४४॥
यः कामो ध्यायते नित्यं यस्यैक चरणाम्बुजम् ।
बभूव तस्य सवशो राधा संतोष कारणात् ॥१४६॥
करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामास वक्षसि ।
चकार शिथिलं वस्त्रं चुचुम्बनञ्च चतुर्विधम् ॥१४८॥
बभूव रति युद्धेन विच्छिन्ना क्षुद्र घंटिका ।
चुम्बने नोष्ट रागश्च ह्याश्लेषेण च पत्रकम् ॥१४६॥
पुलकाङ्कित सर्वाङ्गी बभूव नव सङ्गमात् ।
मूर्छामवाप सा राधा बुबुधे न दिवानिशम् ॥१५१॥
प्रत्यंगे नैव प्रत्यंगमंगेनांगं समाश्लिषत् ।
शृङ्गाराष्टविधं कृष्णश्चकार काम शास्त्रवित् ॥१५२॥
पुनस्ताश्च समाश्लिष्य सस्मितां वक्रलोचनाम् ।
क्षत विक्षत सर्वाङ्गी नख दन्तैश्चकार ह ॥१५३॥
बभूव शब्द स्तत्रैव शृङ्गार समरोद्भवः ॥१५४॥
निर्जनेकैतुकात् कृष्णः कामशास्त्र विशारदः ॥१५६॥
निवृत्ते काम युद्धे च सस्मिता वक्रलोचना ॥१५६॥

बभूव शिशु रूपश्च कैशोरं च बिहाय च ।
ददर्श बाल रूपंतं रुदन्तं पीड़ितं क्षुधा ॥१६३॥
यशोदायै शिशुं दातुमुद्यता सेत्युवाच ह ॥१७३॥
यशोदा बालकं नीत्वा चुचुम्ब च स्तनं ददौ ।
वहि निविष्टा सा राधा स्वगृहे गृह कर्मणि ॥१७७॥
नित्यं नक्तं रति तत्र चकार हरिणां सह ॥१७८॥
(ब्रह्मवैवर्त पु० कृष्ण जन्म खं० ४ अ० १५)

अर्थ—एक दिन कृष्ण के साथ नन्दजी वृन्दावन को गये ।१। कृष्ण ने माया से आकाश बादलों से युक्त बना दिया ।३। इतने में राधा कृष्ण के पास गई ।८। बालक कृष्ण को राधा ने गोद में ले लिया और मुख से मधुर हँसने लगी ।२८। काम से पीड़ित हो कर उसे बगल में ले कर छाती से चिपटा कर चूम लिया ।३२। इतने में राधा ने सैकड़ों रत्नों से भरे घड़ों से युक्त मण्डप देखा, जो माया से बना था ।३६। राधा मण्डप देख कर प्रसन्नता से अन्दर गई ।४४। वहाँ कपूर से युक्त पान ।४५। और कामना के योग्य जवान सुन्दर ।४६। सुन्दर हंसमुख पुरुष को पुष्प शैया पर सोते देखा ।४७। अपनी गोदी को बालक से खाली और उस नौजवान को देख कर ।५२। सब कुछ जानते हुए भी हैरान हो गई ।५३। उस कमल मुख वाली राधा से कृष्ण ने कहा ।५५। प्रिये ! चारपाई पर आजा, मुझे छाती पर ले ले ।५१। राधा बोली—मैं बैठी हूं और आप लेटे हैं, व्यर्थ समय जा रहा है ।८१। मेरी बगल और सिर में चरण कमल अर्पण करो ।८२। इतने में ब्रह्मा कृष्ण के सामने आया ।८६। ब्रह्मा ने राधा का हाथ कृष्ण के हाथों में पकड़ा दिया ।१२४। ब्रह्मा राधा तथा

कृष्ण को प्रणाम करके अपने घर चला गया ।१३७। राधा कृष्ण को प्रणाम करके पलंग पर गई ।१३९। कृष्ण ने स्वयं चबाया हुआ पान राधा को दे दिया ।१४३। राधा का चबाया हुआ पान कृष्ण ने मांगा ।१४४। काम जिसके चरणों का स्मरण करता था, राधा के सन्तोषार्थ वही कृष्ण काम के वशीभूत हो गये ।१४६। कृष्ण ने हाथ से पकड़ कर राधा को छाती पर ले लिया, उसके कपड़े ढीले कर दिए और चतुर्विध चुम्बन किया ।१४८। रति युद्ध (विषय भोग) में क्षुद्र घंटिका नष्ट हो गई। चूमने से होठों का रंग तथा लिपटने से पत्रावली नष्ट हो गई ।१४९। नये समागम से राधा रोमांचित हो गई। बस राधा मूर्छित हो गई और रात दिन होश में नहीं आई ।१५१। दोनों का अङ्ग से अङ्ग तथा प्रत्यङ्ग से प्रत्यङ्ग लिपट गया। काम शास्त्र विशारद कृष्ण ने यूं राधा से आठ प्रकार से भोग किया ।१५२। फिर उस राधा से लिपट कर उस मुस्कराती हुई टेढ़ी नजर वाली को नाखूनों और दांतों से काट खाया, जख्मी कर दिया ।१५२। काम भोग युद्ध से बड़ा शब्द हुआ ।१५४। कामशास्त्र में चतुर कृष्ण ने एकान्त में सम्भोग किया ।१५६। काम युद्ध की समाप्ति पर वह तिरछी नजर वाली राधा मुस्कराने लगी ।१५९। वह कृष्ण भी युवावस्था को त्याग कर फिर बालक रूप हो गए। राधा ने कृष्ण को बालक रूप में भूख से पीड़ित होते देखा ।१६३। वह राधा यशोदा को बालक देकर बातें करने लगी ।१७३। यशोदा ने बालक कृष्ण को लेकर चूमा और स्तन से दूध पिलाया। राधा बाहर चली गई और अपने घर का काम करने लगी ।१७७। वह राधा रात को रोजाना कृष्ण के साथ सम्भोग किया करती थी ।१७८।

वैष्णव सम्प्रदाय के मान्य पुराण के उक्त विवरण से

स्पष्ट है कि मां का स्तन पीने वाला बालक कृष्ण प्रौढ़ आयु की राधा से रोजाना रात को माया से जवान बन कर विषय भोग किया करता था। इतने छोटे से बच्चे को पुराणकार ने काम-शास्त्र विशारद लिखा है। यद्यपि उक्त कथा के मिथ्या होने में तनिक भी सन्देह नहीं है, फिर भी पुराणों के अन्धविश्वासी सम्पूर्ण पौराणिक विद्वान इसे मानते हैं। तब उपरोक्त प्रमाणों की उपस्थिति में किसी का यह कहना कि—'श्रीकृष्णजी पाँच सात साल के थे, उनमें कामोत्तेजन सम्भव नहीं था, वह तो केवल बाल-कीड़ा मात्र थी, अतः निर्दोष थी' निराधार एवं व्यर्थ की बकवास मात्र होगी। जब दूध पीने वाले बच्चे को काम-शास्त्र विशारद माना जा सकता है, वह माया से जवान बन कर राधा से रात को नित्य विषय भोग कर सकता है, तो पांच या सात साल का बालक तो विषय भोगों में पारङ्गत अनुभवी हो जाना चाहिए। अतः श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ सम्पूर्ण शृङ्गार लीलायें स्पष्ट तया विषय भोगों से युक्त थीं। और क्योंकि गोपियां पति-पुत्रों वाली पर नारियां थीं, अतः उनके साथ काम-क्रीड़ायें, स्पष्टतया व्यभिचार थीं। गोपियों के वस्त्र चुराकर पेड़ पर चढ़ जाना, उनके हाथ गुप्ताङ्गों पर से उठवा कर उनके गुह्याङ्गों का नग्न दर्शन करना, उनसे छल व मजाक करना, इन सारी बातों का उद्देश्य स्पष्टतया गुण्डापन था। श्रीकृष्ण को यह बोध था कि मैं क्या व क्यों कर रहा हूँ। इसीलिए भागवतकार ने चीर हरण वाली घटना में कृष्ण के हँसी मजाक व छल करने का उल्लेख किया है। कुब्जा से व्यभिचार, गोपियों को बांसुरी की कामोत्तेजक रसीली गाने की ध्वनि के इशारे पर जङ्गल में एकान्त में बुला लेना और खुला व्यभिचार करना तथा पुराणकारों का इस व्यभिचार को

रास बता देना, यमुना किनारे व्यभिचार को जल-क्रीड़ा बता देना यह सब शरारतबाजी है। वास्तव में श्रीकृष्णजी ने कभी भी यह बदमाशियां नहीं की थीं। किन्तु वैष्णवी धर्माचार्यों ने अपनी व्यभिचार लीलाओं को वैध बनाने के लिए श्रीकृष्णजी की यह सारी लीलायें कल्पित करके भागवतादि पुराणों की सृष्टि कर डाली है।

हम यहाँ कुछ विवरण भागवत पुराण में से रासलीला का संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं। रास और उसमें व्यभिचार क्रम का विस्त्रित उल्लेख ब्रह्मवैवर्त पुराणकार ने दिया है जो उक्त पुराण में देखा जा सकता है।

भागवत पुराण में रास

बनं च तत्कोमलगोऽभिरंजितं
जगौ कलं वाम दृशां मनोहरम् ॥२॥

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
ब्रज स्त्रियः कृष्ण गृहीत मानसाः।
अजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्रकान्तो जव लोल कुण्डलाः ॥४॥

ता वार्यमाणाः पति भिः पितृभिर्भात्रि बन्धुभिः।
गोविन्दा पहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥८॥

तमेव परमात्मानं जार बुद्धयापि संगताः ॥११॥

कृष्ण उवाच—

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रंभयावहम्।
जगुप्सितं च सर्वत्र औप पत्यं कुलस्त्रियाः ॥२६॥

गोपा उवाच—

त्वत्सुन्दरस्मित निरीक्षण तीव्रकाम-
तप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥३८॥

नद्याः पुलिन माविश्य गोपी भिर्हिम वालुकम् ।
रेमे तत्तरला नन्द कुमुदा मोद वायुना ॥४५॥

बाहुप्रसार परिरम्भ कराल कोरु-
नीवीस्तनालभननर्म नखग्र पातैः ।
क्ष्वेल्या वलोक हंसितै र्व्रज सुन्दरोणां
मुत्तमभयन् रति पतिं रमयाञ्चकार ॥४६॥
(भा० १०।२९)

तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानियत् ।
यैकापहृत्य गोपीनां रहो भुङ्क्तेऽच्युताधरम् ॥३०॥

केश प्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ।
तानि चूडयता कान्ता मुपविष्ट मिह ध्रुवम् ॥३४॥

रेमेतया चात्मरत आत्मा रामोऽप्य खण्डितः ।
कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥३५॥
(भा० १०।३०)

सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं न बधः ॥२॥
(भा० १०।३१)

कस्याश्चिन्नाट्य विक्षिप्त कुण्डलत्विष मण्डितम् ।
गण्डं गण्डे सन्दधत्या अदात्ताम्बूल चर्वितम् ॥१३॥
नृत्यन्ती गायती काचित् कूजन्नूपुर मेखेला ।
पार्श्वस्थाच्युत हस्ताब्जं श्रान्ताधात् स्तनयोः शिवम्॥१४॥
एवं परिष्वङ्ग कराभिमर्श,
स्निग्धेक्षणोद्दाम विलास हासैः ।
रेमे रमेशो ब्रज सुन्दरीभिः,
यथाऽर्भकः स्वप्रतिबिम्ब विभ्रमः ॥१७॥
तासामति विहारेण श्रान्तानां वदनानिसः ।
प्रामृजत् करुणः प्रेम्णा शन्तमेनाङ्ग पाणिना ॥२१॥
सिषेव आत्मन्य वरुद्ध सौरतः ॥२६॥

राजोवाच—

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमाये तरस्य च ।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥२७॥
स कथं धर्म सेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमा चरद ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥२८॥

शुक्र उवाच—

धर्म व्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वन्हेः सर्व भुजो यथा ॥३०॥
(भा० १०।३३)

अर्थ—कोमल चांदनी से सारा बन रंजित था। उसमें श्रीकृष्ण ने कामदेव को उत्पन्न करने वाली, सुन्दरियों के मन को हर लेने वाली सङ्गीत की तान बांसुरी पर छेड़ दी। ३। उस कामदेव को बढ़ाने वाले गीत को सुन कर ब्रज स्त्रियों के मन कृष्ण में फँस गये। वे सुन्दर कुण्डल पहिने एक दूसरे को सूचना देती हुई अपनी चेष्टा को छिपाकर जहाँ कृष्ण थे वहाँ चली गईं ४। वे पिता और पतियों, भाई और बन्धुओं के रोकने से भी नहीं रुकीं। क्योंकि उनके दिल कृष्ण ने मोहित कर लिए, थे चुरा लिये थे।८। गोपियों की श्रीकृष्ण के साथ व्यभिचार की भावना थी।१९। श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—कुलीन स्त्रियों को जार (व्यभिचारी), पुरुष की सेवा नहीं करनी चाहिए। इससे उनका परलोक बिगड़ता है। कृष्ण ने अपने को व्यभिचारी पुरुष बताते हुए गोपियों को यह उपदेश दिया था।२६। गोपियों ने कहा—हे प्यारे! तुम्हारी सुन्दर मुसकान देखकर हमारे दिलों में कामदेवकी प्रबल दाह हो रही है। हे पुरुषभूषण! हमें अपनी दासी बना लो।३८। इसके बाद श्रीकृष्ण ने चाँदनी रात में यमुना के किनारे पावन पुलिन पर जो कपूर के समान चमकीली शीतल बालू से जगमगा रहा था, प्रवेश किया उन्होंने वहाँ कुमुदिनी की सुगन्ध से सुवासित स्थान पर गोपियों के साथ रमण (विषय-भोग) किया।४५। बाहें फैलाना आलिङ्गन करना, गोपियों के हाथ दबाना, चोटी, नीवी पकड़ना, छाती मसकना, जांघों पर हाथ फेरना, नाखूनों से उनके अङ्गों की चुटकी लेना, हँसी मजाक करना, मुसकान आदि क्रियाओं से गोपियों में कामदेव को खूब जाग्रत करके उनके साथ कृष्ण ने खूब रमण (भोग) किया। ४६। (भाग० १०।२९। गोपी कहती हैं कि जो सखी (गोपी) श्रीकृष्ण को एकान्त में ले जाकर

उनका ओठ चूस रही हैं, उसके उभरे हुए यह बालू पर चरण चिह्न हमारे मन में क्षोभ पैदा कर रहे हैं। ३०। परम कामी कृष्ण ने यहाँ कामिनी गोपी के बाल काढ़े हैं। वे उसके सर में फूलों को गूंथने के लिए यहाँ अवश्य बैठे होंगे।३४। उन श्रीकृष्ण ने एकान्त में गोपी के साथ इस प्रकार रमण किया जैसे लौकिक कामी पुरुष करते हैं। गोपियां बड़ी दुष्टा थीं, वह जैसे भी जो कुछ चाहतीं थीं उनसे करातो थीं।३५। (भाग १०।३०) गोपियों ने कहा, हे सम्भोग के पति कृष्ण! तुमने हम बिना फीस की दासियों का अपनी निगाह से बध कर डाला है। क्या यह हमारो हत्या करना नहीं है। २। रास (नाच) में एक गोपी के कुण्डल हिल रहे थे, कपोल चमक रहे थे। उसने अपने गालों कों कृष्ण के गालों से लगा दिया और कृष्ण ने अपना चबाया हुआ पान उसके मुँह में दे दिया ।३३। कोई गोपी नूपुर और करधनी के घुघुरुओं को झनकारती हुई नाच और गा रही थी। जब वह बहुत थक गई तो उसने अपने बगल में ही खड़े कृष्ण के शीतल हाथों को अपने स्तनों पर रख लिया। अर्थात् छाती दबवाकर थकावट मिटवाली। ४। जैसे नन्हा बच्चा मस्त होकर अपनी परछाई से खेलता है वैसे ही श्रीकृष्ण ने कभी गोपियों को छाती सेलगाकर, कभी उनके हाथ दाबकर, कभी हँसी मजाक करके उन व्रज सुन्दरो औरतोंके साथ रमण किया। १७। जब अधिक रमण कराने से गोपियाँ थक गईं तो श्रीकृष्णजी ने प्रेम-पूर्वक अपने हाथों से उनके मुँह पर के पसीने पोंछे। २३। श्रीकृष्णजी में यह भारी विशेषता थी कि वे इतना विषय भोग एवं काम क्रीड़ा होने पर भी अपना वीर्य रोक लेते थे शुक्रपात नहीं होने देते थे।२६।

(श्रीकृष्ण) का अपना वीर्य रोक लेने का उल्लेख ही बताता है कि खुल कर विषय भोग रास में होता था)

राजा ने प्रश्न किया—श्रीकृष्ण का अवतार धर्म की स्थापना के लिये एवं अधर्म का नाश करने को हुआ था। २७। वे धर्म मर्यादा बनाने वाले, उपदेश करने वाले और रक्षक थे। तब उन्होंने पर नारियों को स्पर्श (उनके साथ विषय भोग) क्यों किया था। २८।

शुकदेव ने उत्तर दिया--सामर्थवान ईश्वर द्वारा धर्म के व्यक्तिक्रम का साहस देखा जाता है किन्तु उन्हें दोष नहीं लगता है जैसे अग्नि सर्वभक्षी होता है पर वह दोषों से लिप्त नहीं होता है। ३०। भाग० १०।३३॥

गोपियों ने कहा—

खगा वीत फलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम्।
दग्धं मृगास्तथा रण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥८॥

मधुप कितव बन्धो मां स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः।
कुच विलुलितमाला कुंकुमश्म श्रुभिर्नः ॥ १२ ॥

(भागवत १०।४७)

गोपियों ने कहा—जैसे फल न रहने पर पक्षी वृक्ष को, भोजन कर लेने के बाद अतिथि घर को, आग लगने के बाद मृग बन को जिस प्रकार छोड़ देते हैं तथा जैसे व्यभिचारी (जार) पुरुष भोगने के बाद स्त्री को त्याग देते हैं वैसे ही श्रीकृष्ण ने हमको त्याग दिया है। (इसमें श्रीकृष्ण कीं उपमा जार पुरुष से देकर उनकी असलियत खोल दी है) । ८। गोपी ने भ्रमर को सम्बोधन करके कहा—हे मधुप तू कपटी का सखा है हमारे पैरों को मत छू। श्रीकृष्ण की वनमाला जो हमारी सौतों के स्तनों से

मसली हुई है, उसी का पीला कुंकुम तेरी मूछों पर लगा है।०२। इसमें गोपियों ने अपने को कृष्ण पत्नियों की सौतें बताकर अपना और कृष्ण का पति-पत्नी का रिश्ता प्रगट किया है।

पद्म, ब्रह्मवैवर्त तथा भागवतादि पुराणों के पिछले विवरणों से यह स्पष्टतया सिद्ध है कि श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ व्यभिचार का सम्बन्ध था। वे रात को बन में बांसुरी पर कामोत्तेजक गाने गाते थे, जिन को सुनकर इशारे पर गोपियाँ पति-पुत्रों को छोड़कर एकान्त में उनके पास चली जाती थीं और वहाँ उनके साथ नाच गाना, छाती पकड़ना, लंहगे का नारा खींचना, जांघों पर हाथ फेरना, नोंचना, आलिङ्गनादि क्रियायें करके श्रीकृष्णजी उनमें भरपूर कामोत्तेजक पैदा करके विषय भोग किया करते थे। गोपियों ने उनको जार पुरुष, संभोग का पति आदि बताया है। स्वयं कृष्ण ने अपने को जार पुरुष से उपमा दी है। पद्म-पुराण के अनुसार गोपियाँ पूर्व जन्म में दण्ड कारण्य बन के ऋषि लोग थे जिन्होंने राम से भोग की इच्छा की थी। वे ही द्वापर में गोपियां बने, रामचन्द्रजी कृष्ण बने, और उन गोपियों से संभोग करके उन्हें तार दिया था। पद्म-पुराण में पार्वती ने स्पष्ट रूप से कृष्ण के परस्त्री गमन पर आक्षेप किया है। वैसा ही आक्षेप भागवत में भी राजा ने किया है। इन आक्षेपों के जो उत्तर दिये गये हैं, वे भी कृष्ण के परस्त्री-गमन का विरोध नहीं करते हैं।

एक पौराणिक विद्वान् ने रास के व्यभिचार को सफाई देते हुए लिखा है कि यदि रास में वस्तुतः व्यभिचार जैसी कोई अनुचित बात होती तो गोपियों को उनके घर वाले रातों में कदापि घर से बाहर न जाने देते। मगर कभी किसी ने स्त्रियों

को रोका नहीं था अतः स्पष्ट है कि उनको कृष्ण तथा अपनी पत्नियों के सदाचार पर विश्वास था।

इस प्रश्न का उत्तर पुराण में दिया है कि गोपियाँ अपने पति पुत्रों के रोकने पर भी नहीं रुकती थीं। वे रात में श्रीकृष्ण की बाँसुरी के कामोत्तेजक गानों के इशारे पर चुपचाप उनके पास वन में चली जाती थीं। साथ ही वे घर वाले भी श्रीकृष्ण जी के द्वारा मोहित कर दिए जाते थे।

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहिता स्तस्य मायया।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः
॥३८॥

(भाग० स्क० १० अ० ३३)

ब्रजवासी गोपों ने श्रीकृष्ण में तनिक भी दोष बुद्धि नहीं की। वे उनकी योगमाया से मोहित होकर (पत्नियों के रात में चुपचाप जङ्गल में कृष्ण के पास चले जाने पर भी) ऐसा समझ रहे थे कि हमारी स्त्रियाँ हमारे पास ही हैं।

इस प्रकार गोपियाँ कामवासना की पूर्ति के लिए श्रीकृष्ण के पास पहुँच जाती थीं और उनके पति विचारे यही समझते थे कि वे घर में ही हैं। उन पर श्रीकृष्णजी मैस्मरेजम कर दिया करते थे। ऐसी दशा में गोपों का निज पत्नियों के चरित्र पर सन्देह करने को स्थान ही नहीं रहता था। यह सारा दुष्कर्म षण यन्त्र पूर्वक चलता था।

श्रीमद्भागवत पुराण में दिये गये रास के पिछले विवरण की अपेक्षा ब्रह्मवैवर्त पुराण में अधिक स्पष्ट विवरण उसका

प्रस्तुत किया गया है। वैष्णवी रास के स्वरूप को भली प्रकार समझा जा सके, इसलिये हम उसे भी यहाँ उद्धृत करते हैं—

—महारास के नजारे—

एक दा हरिर्नक्तं बनं वृन्दावनं ययौ ।
शुभे शुक्ल त्रयोदश्यां पूर्णे चन्द्रोदये मुने ॥६॥
चकार तत्र कुतुकाद्विनोद मुरलीवरम् ।
गोपीनां कामुकीनां च कामवर्धन कारणम् ॥१८॥
तच्छ्रुत्वा राधिका सद्यो मुमोह मदनातुरा ।
बभूव स्थाणु वद्देहा ध्यानैकतान मानसा ॥१९॥
बहिर्बभू वुस्तास्त्रस्ता वरेण हृत चेतनाः ।
कुल धर्म परित्यज्य निःशंकाः काम मोहिताः ॥२३॥
त्रय स्त्रिंशद्वयस्याश्च ताः सुशीलादयः स्मृताः ।
राधिकायाः प्रियतमा गोपीनां प्रवरा ययुः ॥२४॥
मूर्छा मवाप सासद्यः काम बाण प्रपीड़िता ।
पुलकाञ्चित - सर्वाङ्गी बभूवहत चेतना ॥६१॥
कटाक्ष काम बाणैश्च विद्धिः क्रीड़ा रसोन मुखः ।
मूर्छां प्राप्य न पपातू तस्थौ स्थाणु समो हरिः ॥६२॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य ययौराधान्तिकंमुदा ।
कृत्वा वक्षसि तां प्रीत्या समाश्लिष्य चुचुम्बसः ॥६४॥

श्रीकृष्ण स्पर्श मात्रेण संप्राप्य चेतनां सती ।
प्राणाधिकं प्राणनाथं समाश्लिष्य चुचुम्बः ह ॥६५॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र सकामः सुरतोन्मुखः ।
सुष्वाप राधया सार्धं रति तल्पे मनोहरे ॥७२॥
शृङ्गाराष्ट प्रकारं च विपरीतादिकं विभुः ।
नख दन्त कराणां च प्रहारं च यथोचितम् ॥७३॥
काम शास्त्रेषु यद्गोप्यं चुम्बनाष्ट विधं परम् ।
कामिनीनां मनोहारि चकार रसिकेश्वरः ॥७४॥
अङ्गैरङ्गानि प्रत्यङ्गैः प्रत्यङ्गानि स्मरातुरः ।
चकाराश्लेषणं तत्र कामुकीनां सुखावहम् ॥७५॥
श्रङ्गार कुशलौ तौतु कामशास्त्र सुपण्डितौ ।
रति युद्ध विरामश्च न बभूव द्वयोरपि ॥७६॥
एवं गृहे गृहे रम्ये नाना मूर्ति विधाय च ।
रेमे गोपाङ्गनाभिश्च सुरम्ये रास मण्डले ॥७७॥
अभ्यन्तरे रतिं कृत्वा बहिः क्रीड़ा चकारह ।
काचित्कामातुरा कृष्णं बलादा कृष्य कौतुकात् ।
हस्ताद्वंशी निज ग्राह वसनञ्चचकर्ष ह ॥८५॥
काचित्काम प्रमत्ता च नग्नं कृत्वातु माधवम् ।
निज ग्राह पीत वस्त्रं परिहास्यं पुनर्ददौ ॥८६॥
कृष्णौ राधां समाकृष्य वास यामास वक्षसि ॥९४॥

श्रोणिदेशे च स्तनयोर्नखच्छिद्रं चकार ह ॥१००॥
चकार दन्त दलनं पक्व बिम्बाधरे वरे ॥१०१॥
भ्रङ्गारोद्रेकतस्तत्र बभूव सुन्दरो र वः ।
मूर्छामवापुस्ताः सर्वा नव संगम मात्रतः ॥१०५॥
नख दन्त प्रहारं च प्रचकार परस्परम् ।
कृष्णः कर रुहाघातं ददौ तासां कुचोपरि ॥१०७॥
श्रोणोदेशे सुकठिने नख चिन्हं चकार ह ।
नीवी विस्रंसिता तासां कवरी क्षुद्र घंटिका ॥१०८॥
दूरीभूतं सुवसनं सुवेषं सुमनोहरम् ।
आलिङ्गनं नवविधं चुम्बनाष्ट विधं मुदा ॥१०९॥
भ्रङ्गार षोडशविधं चकार रसिकेश्वरः ।
अंगैरंगानि प्रत्यंगै प्रत्यंगानि च योषिताम् ॥११०॥
गोपी भिः सह जग्मुश्च मायाः श्रीकृष्ण रूपिकाः ।
प्रपीड़िताः काम वाणैः क्रोड़ां चक्रुर्जले मुदा ॥१३४॥
तां च नग्नां समाश्लिष्य निममज्ज जले हरिः ।
प्रकृत्याभ्यन्तरे क्रीड़ां सुतस्थौ च तया सहः ॥१३८॥
उत्थायमाधवःशीघ्रं तां गृहीत्वा प्रहस्य च ।
कृत्वा वक्षसि नग्नां च चुचुम्ब च पुनः पुनः ॥१४३॥
एवं रेमे कौतुकेन कामा त्रिंशाद्दिवा निशम् ।
तथापि मानसं पूर्णं न च किंचिद्बभूव ह ॥१७०॥

(ब्रह्मवैवर्त पु० कृष्ण जन्म खं० ४ अ० २८)

अथ गोपांगनाः सर्वाः काममत्ततयामुने ।
अति प्रौढ़ाश्च मानिन्यो नेश्वरं मेनिरे पातम् ।।१।।

पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं सस्मिता मैथुनाय च ।
काचिद् ग्राह मुरलीं बलादाकृष्य माधवम् ।।८।।

जगाम मलय द्रोणीं रम्यां चन्दन वायुना ।
शय्यां पुष्पमयीं कृत्वा तत्र रेमे तया सहः ।।१७।।

(ब्रह्मवैवर्त पु० कृष्ण जन्म खं० ४ अ० २९)

भावार्थ—एक बार त्रयोदशी की रात को पूर्ण चांदनी में श्रीकृष्णजा वृन्दावन को गये। वहाँ उन्होंने कामुकी गोपियों के कामदेव को बढ़ाने वाला विनोद किया। उसे सुन कर राधा मोहित व अत्यन्त कामातुर हो गई, अपने को भूल कर वह कृष्ण के ध्यान में मस्त हो गई। वह अर्ध चेतनावस्था में घर से निकल कर कुल व धर्म को लाज को तिलाञ्जलि देकर बेखटके तेतीस साल की आयु वाली राधा कृष्ण के पास चली गई। राधा की प्रियतमा गोपियां भी वहां गई। वह कामाग्नि से पीड़ित हो रही थी। उसका सारा अङ्ग पुलकाय .ान हो रहा था, उसकी कामदेव के कारण चेतना शक्ति भी लुप्त हो रही थी। कामदेव के बाणों से घायल विषयानन्द में मस्त राधा को मूर्छा आ गई। जब उसे क्षण भर को होश आया तो श्रीकृष्णजी ने पास जा कर राधा को अपनी छाती से लगा लिया और उसका चुम्बन किया। कृष्ण के स्पर्श मात्र से राधा चेतन्य हो गई और उसने कृष्ण से चिपट कर उनका प्रेम से चुम्बन लिया। इसके बाद वहाँ पर श्रीकृष्णजी विषय भोग की इच्छा से राधा के साथ सो गए। कृष्ण ने उसके पश्चात् विपरीत आदि आठ प्रकार से

राधा के साथ मैथुन किया, नाखून व हाथों से उचित प्रहार भी किए। कामिनी औरतों के मन को हरने वाले एवं कामशास्त्र में गुप्त रखे जाने वाले आठ प्रकार के चुम्बन रसिकों के शिरोमणि कृष्ण ने राधा के लिए। कामुकी स्त्रियों को सुख देने वाले अङ्गों से अङ्ग एवं प्रत्यङ्गों से प्रत्यङ्ग दोनों के लिए लिपट गए। विषय भोग में पूर्ण कुशल दोनों राधा व कृष्ण कामशास्त्र में पूर्ण पण्डित थे। उन दोनों का घोर विषय युद्ध शान्त नहीं होता था। इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने अनेक प्रकार की मूर्ति धारण करके घर-घर में गोपियों के साथ रासमण्डल में रमण किया। मकानों के अन्दर विषय भोग एवं बाहर रास क्रीड़ा की गई। किसी कामातुरा गोपी ने कौतुक से बलपूर्वक खींच कर उनके हाथ से वंशी तथा वस्त्र छीन लिए। किसी कामातुरा अन्य गोपी ने उनको नङ्गा कर दिया और फिर उनको पीला वस्त्र दे दिया। कृष्ण ने राधा को खींच कर छाती से लगा लिया, उसके कठिन श्रोणिस्थान एवं स्तनों पर नाखून से नोंच कर जख्म कर दिए। दांतों से उसके लाल नीचे के ओष्ठ को काट खाया। विषय भोग की क्रीड़ा से सुन्दर शब्द उत्पन्न हुआ। उस नये समागम से राधा मूर्छित हो गई। नाखून व दाँतों से परस्पर एक दूसरे पर प्रहार किए गए। कृष्ण ने अपने हाथों के (मुक्कों) की चोट राधा के स्तनों पर की, उसके कठिन श्रोणि देश पर नाखून के निशान बना दिए। राधा के लहँगे की डोरी (नीबी) खुल गई और कमर की करधनी नष्ट हो गई। उसके सुन्दर वस्त्र नौ प्रकार के आलिङ्गनों एवं आठ प्रकार के चुम्बनों के कारण उसके मनोहर शरीर से दूर हो गए। रसिकों के शिरोमणि कृष्ण ने अङ्ग से अङ्ग और प्रत्यङ्ग से प्रत्यङ्ग मिला कर लिपट कर राधा के साथ सोलह प्रकार

से विषय भोग किया। श्रीकृष्ण ने गोपियों को अपनी माया से कामदेव की आग से पीड़ित बना कर उनके साथ पानी के अन्दर उनको नङ्गा करके क्रीड़ा की। उनको शीघ्र ही पानी में उठा कर अपना छाती से लगा लिया और बारम्बार उनका चुम्बन किया। इस प्रकार कृष्ण ने तीस दिन व रात तक उनके साथ कौतुकपूर्ण रमण किया, तो भी गोपियों का मन काम-क्रीड़ा से नहीं भरा। सारी गोपियां कामदेव की आग से मस्त हो गईं। वे प्रौढ़ आयु की थीं। वे कृष्ण के कमल रूपी मुख को मैथुन की लालसा से देखती थीं। किसी ने कृष्ण को पकड़ कर जबर्दस्ती उनकी मुरली छीन ली। उनके साथ द्रोणाचल पर्वत पर सुन्दर चन्दन की सुगन्धित वायु में फूलों की सेज बना कर श्रीकृष्णजी ने विषय भोग किया।

इस वर्णन में स्पष्ट रूप से गोपियों का विशेषकर राधा से रति क्रीड़ा का श्रीकृष्ण का सम्बन्ध सिद्ध किया गया है। महारास व्यभिचार का एक प्रकार का साधन था यह भी स्पष्ट हो गया है।

गोपियों के पूर्व जन्म की कथा

एक अन्य वैष्णव संस्कृत ग्रंथ 'आनन्द रामायण' की भी चन्द कल्पनायें देखने योग्य हैं। गोपियां पूर्व जन्म में कौन थीं तथा उनका इस जन्म में श्रीकृष्णजी के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध क्यों हुआ, इस विषय पर उक्त रामायणकार ने लिखा है:—

अथैकदा देव पत्न्यो ज्ञात्वाऽस्पृश्यां विदेहजाम् ।३२।
परस्परं ताः संमन्त्र्य निशीथे राघवं प्रति ।
समाजग्मुर्दिव्य वस्त्ररत्नाभरण भूषिताः ।।३३।।

राम सौन्दर्यं संभ्रान्ताः काम बाण प्रपोडिताः
दृष्ट्वा राम दूतास्ते पप्रच्छ रक्षण स्थिताः ॥
यूयं किमर्थं संप्राप्ता निशीथेऽत्राभयावहे ।
कथयध्वं हि नः सर्वं मां शंकां कुरुताऽत्र हि ।

ता ऊचू राघवं द्रष्टुं समायाता वयं स्त्रियः ।
अधुना चेद्राघवस्य दर्शनं न भविष्यति ॥३६॥
जातोवधस्तदाऽस्माकं जीवितस्य नदी जले ।
इतिहासां वचः श्रुत्वा दूतास्ते राघवं जवात् ॥
दास्या निवेदयामासुः स्त्री वृत्तं तत्सविस्तरम्
श्रुत्वा दासी मुखा द्रामः सैकते मञ्च के स्थितः
समाह्य स्त्रियः सर्वा ददर्श रघुनायकः ।
तश्चाऽपि दृष्ट्वा श्रीरामं मेनिरे कृतकृत्यताम्
ततस्ता राघवं नत्वा लज्जायाऽधोमुखास्त्रियः
पीड़िताः काम वाणैश्च तस्थुः श्रीराम सन्निधौ
ज्ञात्वा तासां रामचन्द्रो हृद्गतं प्राह ताः पुनः
एक पत्नी व्रतं मेऽस्ति चैतज्जन्मनि भोः स्त्रिय
न ज्ञेयं मे मृषा वाक्यं गम्यतां स्वस्थलं जवात्
इति राघव वाग्वाणैर्भिन्नमर्म स्थलाः स्त्रियः ।
ययुर्मूर्छां क्षणादेव सिकतायां सहस्रशः ॥४४॥

ता मूर्छा विह्वला दृष्ट्वा रामो विह्वल मानसः ।
नारीः सन्तोषयन प्राह, हे नार्यः ! श्रूयतां मम् ।४५।

वाक्यं खेदापहं वोऽद्य द्वापरे कृष्ण रूप धृक् ।
अहं व्रजे भविष्यामि नन्दगोपेश पालिते ।।४६।।

तदा देवास्तु गोपाला भाविमद्वरदानतः ।
भविष्यन्ति सुरेशश्च नन्दस्तत्रभविष्यति ।।४७।।

भविष्यथ तदा यूयं गोपिकाः सकला व्रजे ।
युष्माकं पूरयिष्यामि यथेच्छं वांच्छितं तदा ।।४८।।

रास क्रीड़ां हि युष्माभिः करिष्यामि न संशयः ।
वृन्दावने तु कालिन्द्यां सैकते निशि वैचिरम् ।।४९।।

भवध्वं स्वस्थ चित्ताश्च गच्छध्वं स्वस्थलंमुदा ।।५०।।
(आनन्द रामायण विलास काण्ड सर्ग ७)

भावार्थ—एक समय देवताओं को पत्नियां परस्पर में सलाह करके वस्त्राभूषण धारण करके रात के समय रामचन्द्र के पास चल दीं। वे राम के सौन्दर्य को देख कर काम बाणों से पीड़ित थीं। उनको देख कर राम के रक्षक दूत ने पूछा—तुम भयानक रात्रि में क्यों आई हो ? उन्होंने कहा कि राम के दर्शन को आई हैं। यदि हमें उनके दर्शन न होंगे तो हम नदी के जल में आत्म-हत्या कर लेंगी। इस पर दूत ने राम को उनके आने की सूचना दी। काम पीड़ित वे सब स्त्रियाँ राम के पास गईं तथा उन्होंने दर्शन करके अपने को धन्य माना। राम ने उनके मन की बात जान कर उनसे कहा, इस जन्म में मेरा एक पत्नी

वृत है, यह मैं मिथ्या नहीं कहता हूँ। तुम अपने घरों की वापिस चली जाओ। राम के शब्द वाणी से घायल होकर वे सब मूर्छित हो गईं। उनको मूर्छित तथा विह्वल देख कर राम ने उनके सन्तोष के लिए कहा कि द्वापर में मैं श्रीकृष्णावतार लूंगा। देवता लोग गोपाल बनेंगे। तुम सब ब्रज में गोपियां बन जाना। तब तुम्हारी (कामेच्छा) मन की इच्छायें मैं जैसे तुम चाहोगी भली प्रकार पूर्ण कर दूंगा। यमुना के किनारे रात में तुम्हारे साथ रास क्रीड़ा वृन्दावन में किया करूंगा। तुम विश्वास रखो। स्वस्थ हो कर प्रसन्नतापूर्वक अपने घरों को अभी चली जाओ।

इसमें गोपियों की पूर्व जन्म से ही विषय भोगों की इच्छायें कृष्ण के प्रति होने का समर्थन किया गया है तथा गोपियों को पूर्व जन्म को देव पत्नियां बताया गया है। अन्य पौराणिक कल्पनाओं से यह कल्पना सर्वथा भिन्न है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में कुब्जा को पूर्व जन्म की सूर्पणखा कृष्ण ने बताया है किन्तु आनन्द रामायण विलास काण्ड अ० ८ में कुब्जा को पूर्व जन्म की पिङ्गला वेश्या लिखा है। वह भी राम के पास देव पत्नियों जैसी ही कामना लेकर उस समय गई थी। किन्तु राम ने उसे भी वही उत्तर दिया जो देव पत्नियों को दिया था। पिंगला द्वापर के अन्त में कुब्जा बन गई। राम ने कृष्णावतार में पिछला वायदा पूरा कर दिया और कुब्जा रूपी पिंगला वेश्या के साथ समागम पूरा हो गया। आनन्द रामायण में लिखा है:—

—कुब्जा पूर्व जन्म की पिंगला वेश्या थी—

एकदा पिंगला नाम्नी वेश्या रात्रौ विनिद्रिताम्।
सीतया दिव्य पर्यंके ययौ सा राघवं रहः ॥४८॥

विहाय नूपुरा दीनि स्वनवंति पदौः शनैः ।
इतस्ततो निरीक्षन्ती दिव्यवस्त्रादि भूषिता ॥४९॥
सीता भ्रमात्प्रकंपन्ती काम वाण प्रपीड़िता ।
मण्डिता पुष्पमालाद्यैर्भूषणै रति शोभिता ॥५०॥
अज्ञाता द्वारपालैस्सा निद्रितैर्म्मचकं ययौ ।
स्वकरेण पद स्पर्शंकृत्वा रामं प्रबोधयत् ॥५१॥
तदा प्रबुद्धः श्रीरामस्तां ददर्श पुरः स्थिताम् ।
सा धृत्वा तत्पदे गाढ़ं प्रार्थयामास राघवम् ॥५२॥
रामराजीव पत्राक्ष मयातेऽद्यापराधितम् ।
त्वं क्षमस्व कृपां कृत्वा मयि चानुग्रहं कुरु ॥५३॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा काम प्रपीड़िताम् ।
तां समाश्वासि तुं प्राहराघवः कञ्जलोचनाम् ॥५४॥
एक पत्नीवृतं मे ऽस्मिन्भवे त्वं वेत्सि पिंगले ।
अतस्त्वत्काम पूर्त्यर्थं वदामि तच्छ्रुणुष्व हि ॥५५॥
यदाऽहं मथुरामग्रे व्रजाच्छ्री कृष्णरूप धृक ।
यास्यामि मातुलं कंसं हत्वा स्थास्या मि तत्पुरीम्॥५६॥
तदाभजिष्यसि त्वं मां कुब्जा रूपेण पिंगले ।
गच्छ दासी स्वरूपेण तिष्ठ त्वं कंस वेश्मनि ॥५७॥
आयुः क्षये त्विमं देहंविसृज्य बहुभुक्तकम् ।
इत्युक्त्वा पिंगलां रामो ददा वाज्ञांभयात्स्त्रियः ॥५८॥

तच्छ्रुत्वा जानकी रुष्ट्वा त्यक्त्वा पर्यंक मुत्तमम् ।
राघवं प्राह स क्रोधा कथं न हं प्रवोधिता ॥६०॥
तदैवाऽद्य मया ज्ञातमेक पत्नीवृतं मेऽस्ति मृषा ।
भुक्त्वाऽऽदौ पिंगलां तूष्णीं त्वयाहं बोधिता ततः ॥६१॥
सीतोवाच तदा वेश्यां यस्मान्मेद्या पराधितम् ।
भविष्य सि त्रिवक्रा त्वं मथुरायां हि कुत्सिता ॥६७॥
वेश्याया प्रार्थिता प्राह कृष्णस्त्वा मुद्धरिष्यति ॥६८॥

(आनन्द रामायण विलास कांड अ० ८)

अर्थ --एक समय पिंगला वेश्या ने रात के समय सीता के साथ राम को दिव्य शय्या पर सोते देखा। अपने बिछुए उतार कर वह धीरे-धीरे चलकर इधर-उधर देखती हुई दिव्य-वस्त्र पहिने, सीता के भय से कांपती हुई एवं कामवाणों से व्यथित हुई, सुन्दर पुष्पमाला धारण किये, कामदेव की शोभा से युक्त हुई, द्वारपाल से छिपकर सोते हुए राम के पास पहुँची। उसने अपने हाथ से राम के पैरों को स्पर्श करके धीरे से उनको जगा लिया । चेतन्य होने पर राम ने उसे अपने घर में आया हुआ देखा। उसने राम के पैरों को कस कर पकड़ लिया और प्रार्थना करने लगी । हे कमल लोचन राम ! मैं तुम्हारी अपराधिनी हूँ, मुझे क्षमा करो और मेरे ऊपर कृपा कर दो। उसके उन शब्दों को सुनकर और उसे कामातुर जानकर कमल नयन राम उससे बोले। हे पिंगले तू यह बात जान ले कि मैं इस जन्म में एक पत्नी व्रत धारी हूँ। अतः तेरी कामवासना की पूर्ति के लिये तुझे बताता हूँ, सो तू सुन। मैं अब आगे मथुरा में कृष्ण

के रूप में जन्म लूँगा और अपने मातुल कंस का उसी के नगर में बध करूँगा। तू कुब्जा के रूप में कंस के यहाँ रहकर मेरा भजन करती रहना। तेरी इस देह को बहुत लोगों ने भोग लिया है। अब इस तेरी देह की आयु का क्षय होगा। यह कह कर राम ने पिंगला को आज्ञा दी। यह सुनकर जानकी बड़ी क्रुद्ध हुई और खाट से उठ बैठी। राम से क्रोधपूर्वक उन्होंने कहा कि तुमने मुझे क्यों नहीं जगाया? अब मैंने जाना है कि तुम्हारा एक पत्नीव्रत बिलकुल झूठा है। तुमने पिंगला वेश्या से भोग किया है यह मैंने अब जान पाया है। सीता ने उस वेश्या से कहा कि तूने मेरा अपराध किया है! तू मथुरा में त्रिवक्रा (तीन स्थानों से शरीर से टेढ़ी) तथा बदसूरत हो जावेगी। इस पर वेश्या ने बहुत विनय की तो सीता ने कहा कि श्रीकृष्ण ही तेरा उद्धार करेंगे।

ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा आनन्द रामायण दोनों में कुब्जा के पूर्व जन्म के विवरण में मतभेद सर्वथा स्पष्ट है, यह विद्वान् पाठक देख सकते हैं।

आनन्द रामायण में स्पष्टतया यह भी लिखा है—

कृष्णेन रति कामेन मोहिता गोपिका स्त्रियः ॥७७॥

(आनन्द रामा० राज्य का सर्ग ३)

श्रीकृष्णजी ने विषय भोग की इच्छा से गोप स्त्रियों को मोहित कर लिया था।

सवासां काम पूर्त्यर्थं निशि निद्रा विवर्जितः।
बन्धुभ्यां गोपिका भुक्त्वा मातृ तुल्यो वयोधिकाः॥४७॥

(आनन्द रामा० राज्य का सर्ग ३)

श्रीकृष्ण ने कामेच्छाओं की पूर्ति के लिये रात-रात भर जाग कर अपने से बड़ी आयु की माता के तुल्य नीच गोपियों के साथ भोग किया था।

परनारो गमनं ज्येष्ठ नारीभिः क्रीडनं चिरम् ॥३०॥
नग्न स्त्री दर्शनं वह्नि प्राशनं दाम वन्धनम् ॥३१॥

(आनन्द रामा० राज्य का सर्ग ३)

श्रीकृष्ण ने पर नारियों से सदैव विषय-भोग करना, बड़ी आयु की औरतों से क्रीड़ा करना, सर्वथा नंगी औरतों के नग्न दर्शन करना (जैसे कि चीर हरण के समय किये थे) आदि आदि कर्म किये थे।

वैष्णव सम्प्रदाय के इस ग्रन्थकार ने भी श्रीकृष्णजी महाराज के परस्त्री गमन के अपने सम्प्रदाय के दृष्टि कोंण का खुला समर्थन किया है। यह प्रथक बात है कि उसने गोपियों को पूर्वजन्म की राम पर आसक्त हुई देव पत्नियों का अवतार बताया है। पद्म पुराण ने उनको दण्डकारण्य के ऋषि मुनियों का अवतार माना है, ब्रह्मवैवर्त पुराणकार ने गौलोक की गोप-स्त्रियों का भारत में श्रीकृष्ण के मनोरंजन के लिये अवतरित होकर गोपियाँ बनना, लिखा है। पर यह बात स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण की वर्तमान उप पत्नियाँ गोपियाँ पूर्व जन्म से ही कामासक्त थी और वे श्रीकृष्ण से मैथुन की लालसा मन में ले कर आई थीं। इस सम्प्रदाय के मतानुसार श्रीकृष्ण ने उनकी तत्सम्बन्धी कामनायें भली प्रकार पूर्ण करके उनका उद्धार कर दिया था। पिंगला वेश्या अथवा शूर्पणखा जो भी हों, वह भी राम पर कामासक्त थी। पूर्व जन्म के वायदे के अनुसार उसकी भी रति इच्छा श्रीकृष्ण को पूर्ण करनी थी। अतः वे एक रात

को चुपके से कुब्जा के घर चले गये थे और कार्य समाप्त करके दिन निकलने से पूर्व अपने घर चुपचाप वापिस आ गये थे। जैसा कि ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है। श्रीकृष्ण के जीवन का सर्वाधिक महत्व इस सम्प्रदाय की दृष्टि में यही था कि वे बहु तथा परस्त्री गामी थे। ऐसा ही इस पन्थ के आचार्यों ने अपने भ्रष्ट-ग्रन्थों में सिद्ध करने का दुष्प्रयास किया है।

इसी प्रकार विष्णु पुराण में भी वर्णन किया गया है—

ता वार्य माणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा।
कृष्ण गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रति प्रियाः ॥५९॥
सोऽपि कैशोर कवयो मान यन्मधुसूदनः।
रेमेताभि रमेयात्मा क्षपासु क्षपिता हितः ॥६०॥

(विष्णु पुराण ५। १३)

अर्थ—वे गोपियाँ पति, पिता तथा भाईयों के रोकने पर भी नहीं रुकती थीं। विषय भोग की कामना रखने वाली वे स्त्रियाँ रात के समय (वन में एकान्त में जाकर) श्रीकृष्ण के साथ रमण (भोग) किया करती थीं। ५९। श्रीकृष्णजी भी अपनी किशोर अवस्था का मान करते हुए रात्रि के समय उनके साथ विषय भोग किया करते थे। ६०।

इस पुराण ने स्पष्ट ही लिख दिया है कि विषय की केकामना से वे गोपियाँ रात के समय जंगल में जाकर श्रीकृष्ण साथ विषय भोग किया करती थीं।

'गीत गोविन्द' वैष्णव सम्प्रदाय की वल्लभ शाखा का सम्मान्य ग्रंथ है। दृष्टान्तरूप से हम दो पद उसके उद्धृत करते हैं जिनसे अनुमान किया जा सकेगा कि वैष्णव धर्म में श्रीकृष्ण को किस दृष्टि से देखा जाता है।

रति सुख सारे गतमभिसारे मदन मनोहर वेषम् ।
न कुरु नितम्बिनि गमन विलम्बन मनुसर तं हृदयेशम् ।
धीर समीरे यमुना तीरे बसति बने बन माली ।
गोपी पीन पयोधर मर्दन चञ्चल कर युग शाली ॥
(५।१)

हे प्रिये ! गोपियों के उन्नत स्तनों का चंचलता पूर्वक मर्दन करने वाले बनमाली, श्रीकृष्ण यमुना किनारे जहाँ पर मन्द-मन्द पवन चल रहा है, बैठे हैं। अतः हे नितम्बिनि ! रति के तत्ववेत्ता संकेत स्थान में बैठे हुए उन कामदेव के सदृश्य सुन्दर छविधारी अपने प्राणेश के निकट चलने में विलम्बन न करिये।

मारांके रति केलि संकुल रणारम्भेतया साहस-
प्रायं कान्त जयाय किञ्चदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात् ।
निष्पन्दा जघन स्थली शिथिलिता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं ।
वक्षो मीलित मक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुःत सिद्धयति। ३।
(सर्ग १२)

राधा और कृष्ण के बीच रति के लिए युद्ध प्रारम्भ होने पर राधा ने कृष्ण पर विजय पाने के लिए साहस से कुछ समय तक कृष्ण के वक्ष स्थल के ऊपर सम्भ्रम पूर्वक रति क्रिया की। विपरीत रति की। किन्तु शीघ्र ही उनकी जाँघ स्तब्ध हो गई, बाहें शिथिल हो गयीं, छाती धड़कने लगी, तथा नयन निमीलित होने लगे, अतः सत्य ही है, स्त्रियों में पौरुष कहाँ से आ सकता है।

यह सारी पुस्तक 'गीत-गोविन्द' इसी प्रकार के श्रङ्गार-रस से भरी पड़ी है। उपरोक्त विवरण यह प्रगट करने को पर्याप्त है कि श्रीकृष्ण जी बाल्यावस्था में ही पुराणों एवं वैष्णव धर्म के अनुसार कामशास्त्र विशारद थे। सम्पूर्ण वैष्णव धर्म ईश्वर भक्ति के नाम पर इसी प्रकार की श्रङ्गार लीलाओं से भरा पड़ा है। तथा उनका आधार वैष्णव धर्म के मान्य संस्कृत ग्रंथ हैं।

इसी प्रकार कृष्ण का कुब्जा जो परनारी थी उससे संभोग करना, राधा के साथ रोजाना रात को विषय-भोग किया करना भी उनको व्यभिचारी बताते हैं। भागवत पुराण में रास का प्रकरण बहुत संक्षेप से दिया गया है। विस्तार से इसका उल्लेख ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण जन्म खण्ड अ० २८ व० २९ में दिया है जिसमें रासलीला तथा जलक्रीड़ा की प्रत्यक्षदर्शी जैसी बातें खुलकर लिखी गई हैं। हमने उनको अपनी पुस्तक 'अवतार रहस्य' में सविस्तार दिया है। जो वहाँ देखा जा सकता है। श्रीकृष्ण के निर्मल चरित्र पर, पर स्त्रीगमन एवं बहुस्त्री गमन के भयङ्कर लांछन भागवतादि वैष्णवी पुराणों ने लगाये हैं। इन पुराणकारों का उद्देश्य यह रहा है कि कृष्ण ने जिस विषयभोग को अधर्म नहीं माना था, उसी को यदि रास या गुरु की सेवा के रूप में स्त्रियाँ अपने वैष्णव धर्माचार्यों के साथ करती रहेंगी तो वह भी पाप नहीं होगा। इसी के आधार पर वैष्णव गुरु लोग परस्त्री गमन को पाप नहीं मानते हैं। पर नारियों से रास या जल क्रीड़ा करते हैं। मन्दिरों में देवदासी के रूप में सैकड़ों युवतियां पुजारियों की कामेच्छाओं की पूर्ति को रखी जाती हैं। रासधारी मण्डलियाँ इसी व्यभिचार का प्रचार देश में घूम-घूम कर करती रहती हैं। पुराणों की घटनायें और उन में दिये

इलोक धर्म शास्त्रीय प्रमाणों के रूप में जनता को सुनाकर उसे उनका अन्धानुकरण करने को प्रेरित किया जाता है। वास्तव में इन भागवतादि पुराणों ने जहाँ महात्मा कृष्ण जैसे श्रेष्ठ पुरुषों को कलंकित किया है, वहाँ देश के उच्च वैदिक चरित्र को नष्ट करके धर्म प्रेमी भारतियों को पतित बनाने में विष मिश्रित गुड़ का काम किया है। जिसने भी इनको पढ़ा और उसकी थोड़ी-सी भी श्रद्धा इन ग्रन्थों पर हुई कि उस व्यक्ति पर इनका विषैला प्रभाव हो जाता है। अतः इन ग्रंथों के बहिष्कार की अत्यन्त आवश्यकता है ताकि देश का चरित्र सुरक्षित रह सके।

भागवत पुराण ने श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज को जहाँ असंख्य गोपियों के साथ विषय भोग करने के लांछन लगाये हैं वहाँ उनके ऊपर बहुपत्नीत्व का दोष भी मढ़ दिया है। इसके लिए हम को भागवत में जो सामग्री मिलती है वह निम्न प्रकार है:—

तत्रराजन्य कन्यानां षट सहस्राधिकायुतम्।
भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥३३॥
तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नर वीरं विमोहिताः।
मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥३४॥
अथो मुहूर्त एकस्मिन् नाना गारेषु ताः स्त्रियः।
यथोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥४२॥
(भा० १०।५९)

अर्थ—वहाँ जाकर श्रीकृष्ण ने (भौमासुर के कैदखाने में) देखा कि भौमासुर ने बलपूर्वक राजाओं से सोलह हजार राज-कुमारियां छीन कर अपने यहाँ रख छोड़ी थीं।३३। जब उन राजकुमारियों ने अन्तःपुर में पधारे हुए श्रीकृष्ण को देखा तो

वे उन पर मोहित हो गईं और उन्होंने उनको अपना पति मन में चुन लिया ।३४। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने एक ही मुहूर्त में प्रथक-प्रथक भवनों में प्रथक-प्रथक रूप धारण करके एक ही साथ स्वयं उनके साथ विवाह कर लिया ।४२।

तास्व पत्यान्यजनयदात्म तुल्यानि सर्वतः ।
एकै कस्यां दश-दश प्रकृतेर्विबभूषया ॥६॥

(भा० ३।३)

अर्थ—श्रीकृष्णजी ने उन सोलह हजार रानियों में प्रत्येक के गर्भ से १०-१० सुन्दर पुत्रों को पैदा किया ।६।

रेमे रमाभिर्निज काम सम्प्लुतो
यथे तरो गार्हकमेधिकांश्चरन ॥

(भा० १०।५८।४३)

अर्थ—श्रीकृष्णजी उन सभी स्त्रियों के साथ साधारण गृहस्थों के समान विषय भोग किया करते थे ।

एते षां पुत्र पौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ॥

(भा० १०।६१।१६)

अर्थ—श्रीकृष्ण की उन रानियों के कारण पुत्र-पौत्रों की संख्या करोड़ों में थी ।

आस्थि तस्यपरं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम् ।
आसन् षोडश साहस्रं महिष्यश्च शताधिकम् ॥२६॥
तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः ।
रुक्मिणी प्रमुखा राजंस्तत्पुत्रा श्चानुपूर्वशः ॥३०॥

(भा० १०।६०)

अर्थ—श्रीकृष्णजी गृहस्थ धर्म का पालन करते थे । उन की पत्नियों की संख्या सोलह हजार एक सौ आठ थी ।३९। उनमें आठ रुक्मिणी आदि श्रेष्ठ रानियां थीं जिनके पुत्रों का पूर्व ही वर्णन हो चुका है ।३०।

इस प्रमाण के अनुसार श्रीकृष्णजी की १०८ रानियां पहले से थीं तथा १६००० स्त्रियाँ भौमासुर के यहाँ से उन्होंने मुक्त कराके अपनी पत्नियां बना ली थीं । अतः १६१०८ रानियां उनके हो गई थीं । किन्तु इन रानियों में राधा नाम की किसी स्त्री का उल्लेख भागवतकार ने नहीं किया है । वह रुक्मिणी को हो प्रमुख रानी बताता है । जबकि ब्रह्मवैवर्त पुराण ने केवल राधा को प्रमुख प्रेमिका तथा पत्नी माना है और रुक्मिणी के नाम का बहिष्कार उसने कर दिया है । सम्पूर्ण भागवत में राधा शब्द तक देखने को नहीं मिलता है । केवल एक श्लोक की एक पंक्ति में एक शब्द आता है ।

अनयाऽऽराधितोनूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।।२८।।

(भा० १०।३०)

इसमें कुछ पौराणिक विद्वान खींचतान करके 'आराधितो' शब्द में से 'राधा' शब्द की सिद्धि करने का कुप्रयास करते देखे जाते हैं । किन्तु भागवत के किसी भी टीकाकार ने राधा शब्द की सिद्धि इसके अर्थ में नहीं की है । सभी ने 'आराधितः' का अर्थ आराधना करने वाला ही किया है जो कि उचित अर्थ है ।

श्रीकृष्णजी की जो मुख्य आठ पटरानियां भागवतकार ने लिखी हैं, उनमें कई एक का वे अपहरण करके लाये थे । इन पटरानियों की प्राप्ति के निम्न प्रकार थेः—

रुक्मिणी—यह विदर्भराज की पुत्री थी । इसकी शादी

शिशुपाल से तै हुई थी। श्रीकृष्णजी इसको विवाह से पूर्व हरण कर लाये थे। प्रद्युम्न इसी से उत्पन्न हुआ, श्रीकृष्ण का पुत्र था। इसका विवरण भागवत स्क० १० अ० ५२ व ५३ में दिया है।

कालिन्दी—यह सूर्य की पुत्री तपस्विनी थी। श्रीकृष्णजी इसे ले आये थे और विवाह किया था। इसकी कथा भा० १०। ५८ में दी है।

मित्रवृन्दा—यह श्रीकृष्ण की बुआजात बहिन थी। स्वयंवर में बलपूर्वक श्रीकृष्ण उसे हर लाए थे और स्वयं विवाह कर लिया था। यह कथा भा० १०।५८ में दी है।

सत्या—यह राजा नग्नजित की पुत्री थी। राजा ने उसका स्वयं विवाह कृष्ण के साथ किया था। यह कथा भा० १०।५८ में दी है।

भद्रा—श्रीकृष्ण की दूसरी बुआ श्रुतिकीर्ति जो केकय देश में ब्याही थी, उसकी पुत्री थी। अर्थात् कृष्ण की बुआ जात बहिन थी। भद्रा की शादी उसके पिता ने स्वयं कृष्ण के साथ कर दी थी। यह कथा भा० १०।५९ में दी है।

लक्ष्मणा—यह भद्र प्रदेश के राजा की पुत्री थी। स्वयंबर में से श्रीकृष्ण उसका बलपूर्वक अपहरण कर लाए थे और विवाह कर लिया था। यह कथा भा० १०।५९ में दी है।

सत्यभामा—यह सत्राजित की पुत्री थी। उसने स्वयं उसको विवाहार्थ श्रीकृष्ण को भेंट किया था। यह कथा भाग० १०।५६ में दी है।

जाम्बवती—यह जाम्बवती रीछ की पुत्री थी। इसको विवाहार्थ श्रीकृष्ण को जाम्बन्त रीछ ने भेंट किया। यह विव

रण भा० १०।५६ में दिया है। श्रीकृष्णजी ने रीछ पशु की पशु पुत्री जाम्बवती से भी शादी कर ली थी। मनुष्य की पशु से शादी भी एक विलक्षण बात थी। इस पशु मैथुन से साम्ब नामी पुत्र हुआ था।

यह आठों श्रीकृष्ण की विशेष (पटरानियां) रानियां मानी गई हैं।

इस प्रकार भागवत के दृष्टिकोण से यदि देखा जाय तो श्रीकृष्णजी अत्यन्त विषयी थे। उनकी विषय भोगों की हविस अमर्यादित थी। सोलह हजार एक सौ आठ औरतें तो उनके विषय भोगों की तृप्ति के लिये उनके पास हर समय रहती थीं। उनके अतिरिक्त असंख्य गोपियों से भी उनका नाजायज ताल्लुक था। उनकी व्यभिचार कामना इन पुराणों के अनुसार उनके बिलकुल बचपन से ही अत्यधिक बढ़ी हुई थी। जब वे मां का स्तन पीने वाले बच्चे थे तभी से रोजाना रात को जवान बन कर उस समय तेतीस वर्ष की राधा नाम की रायाण वैश्य की पत्नी से नित्य रात को विषय भोग किया करते थे। ऐसा ब्रह्मवैवर्त पुराण ने माना है। कुब्जा जो अछूत औरत एवं पर-नारी थी उससे भी उन्होंने विषय भोग किया। गोपियों को जो कि पति पुत्रों वाली थी, वे रात को बांसुरी के इशारे से जङ्गल में एकान्त में बुला लेते थे और रास व जल-क्रीड़ा आदि के माध्यम से खुला विषय भोग उनसे होता था। भागवतकार ने स्वीकार किया है कि वे विषय भोग करते समय अपना शुक्र-पात नहीं होने दिया करते थे अर्थात् खाली इन्जेक्शन लगाया करते थे। हो सकता है कि कोई रुकावट की दवा सेवन कर लेते हों। गोपियों को तो भागवतकार ने स्पष्टतया जङ्गली, व्यभि-चारिणी तथा दुष्ट औरतें लिखा है। और उन बदमाश औरतों

के साथ श्रीकृष्ण का नित्य रति क्रिया करना बताकर भागवत-कार ने श्रीकृष्ण को भी व्यभिचारियों का सरताज बना दिया है। 'गोपालसहस्रनाम' ग्रन्थ में जिसका वैष्णव लोग नित्य पाठ किया करते हैं, श्रीकृष्ण के बारे में स्पष्ट लिखा है:—

बाल क्रीड़ा समासक्तो नवनीतस्य तस्करः।
गोपाल कामिनीं जारश्चौर जारशिखामणि ॥१३७॥

अर्थात् श्रीकृष्णजी बचपन में माखन चुराते थे, गोपियों से क्रीड़ा में आसक्त रहते थे। वे चोर और व्यभिचारियों में शिरोमणि थे।

श्रीकृष्ण को व्यभिचारियों में शिरोमणि बताकर पुराण कार संसार को क्या बताना चाहते हैं ? यही न कि जब भगवान ही पर-स्त्रीगामी एवं बहु-स्त्रीगामी थे, वे व्यभिचारियों में शिरोमणि थे तो व्यभिचार-पर-स्त्री गमन सनातन धर्म में पाप या कोई बुरी चीज नहीं रह गई है। सनातन धर्म व्यभिचार धर्म का ही दूसरा नाम है। जिस कृष्ण को महाभारत में अत्यन्त संयमी बताते हुए लिखा है:—

ब्रह्मचर्य महद्घोरं चीर्त्वा द्वादश वार्षिकम्।
हिमवतपार्श्व मभ्येत्य यो मया तपार्जितः॥
समान व्रत चारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनत्कुमार तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम वै सुतः॥

(महाभारत सौप्तिक पर्व

अर्थ—श्रीकृष्ण ने कहा कि मैंने और मेरी पत्नी रुक्मिणी ने हिमालय के दामन में बैठ कर बारह वर्ष तक कठोर ब्रह्मचर्य

व्रत का पालन करते हुए एक पुत्र की प्राप्ति के लिए तप किया है। तब हमने प्रद्युम्न नाम के अपने पुत्र को जन्म दिया है।

एक ओर तो हमारे सामने कृष्ण के महान् संयमी होने का उपरोक्त प्रमाण है जो कि उनके गौरव को बढ़ाता है, वहाँ दूसरी ओर भागवतादि पुराणों के प्रमाण हैं जो कृष्ण को महान व्यभिचारी, पर-स्त्रोगामी तथा लम्पट सिद्ध करते हैं। कुछ ठीक हैं इस भागवतकार की इन मूर्खतापूर्ण बातों का कि कृष्ण अकेले के गले में सोलह हजार एक सौ आठ औरतें बांध दी हैं और लिखा है कि वे योग शक्ति से सभी औरतों से नित्य तफरीह किया करते थे, जैसे कि साधारण गृहस्थ करते हैं। हर एक से १०-१० लड़के भी उन्होंने पैदा कर डाले थे। अर्थात् १६१०८० तो केवल उनके बेटे ही थे। विचारे श्रीकृष्ण की मुसीबत पर सभी को तरस आता होगा। क्या उनका गौरव केवल औरतों से विषय भोग करने के ही लिये था? क्या पौराणिक योगियों या अवतारों का कर्तव्य जङ्गली व्यभिचारिणी औरतों की गुप्तेन्द्रियों की खुजली मिटाना ही होता है। कैसी मूर्खतापूर्ण कल्पना है कि महापुरुष व्यभिचारी होते हैं। जबकि योगाभ्यासी को नारी स्पर्श से पृथक रहना अनिवार्य होता है। जो ऊर्ध्वरेता एवं संयमी नहीं है वह योगी कैसे बन सकेगा? क्या भागवत के लांच्छनों के होते हुए कोई भी व्यक्ति श्रीकृष्ण को योगी सिद्ध कर सकता है?

भागवतकार एक स्थल पर लिखता है:—

यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्नशेकुः ॥३६॥

(भा० १०।१३)

अर्थात्—वे औरतें श्रीकृष्ण की इन्द्रियों में, मन में कोई क्षोभ नहीं पैदा कर सकीं।

यदि ऐसी बात थी तब फिर रासलीला, बांसुरी पर कामोत्तेजक गाने गाना, औरतों की छातियां दबाना, उनको जांघों पर हाथ फेरना, उनका अधरामृत पान करना, राधा व कुब्जा के साथ खुला सम्भोग तथा वीर्याधान आदि बातें कैसे बनती थीं ? अनेक औरतों को अपहरण करके लाना और उनसे विवाह करना, सोलह हजार एक सौ आठ औरतें रखना यह सब किस उद्देश्य से किया गया था ? क्या श्रीकृष्णजी उनको माताजी मानकर उनका दूध पिया करते थे ? साधारण गृहस्थों के समान उनसे व्यवहार करने का दावा तब भागवतकार ने क्यों किया है ? १६१०८० लड़के उन औरतों से क्या श्रीकृष्णजी ने उनके गर्भाशय में फूंक मार कर पैदा किये थे ?

रेमे स्त्रीरत्न कूटस्थो भगवान प्राकृतो यथा ।।

(भा० १।१५।३५)

अर्थात् —सहस्रों स्त्रियों में रह कर श्रीकृष्ण ने उनके साथ साधारण पुरुषों के समान विषय भोग किया था —यह दावा भागवतकार ने कैसे किया है। क्या भागवत झूठा ग्रन्थ है ? और यदि विषय भोगों में तन्मयता कृष्ण की नहीं थी तो भागवतकार ने निम्न श्लोक किस प्रकार से लिखे हैं:—

इमं लोक ममुं चैव रमयन् सुतरांयदून् ।
रेमेक्षण दया दत्तक्षण स्त्री क्षण सौहृदः ।।२१।।
तस्यैवं रममाणस्य संवत्सरगणान् बहून् ।
गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ।।२२।।
दैवाधीनेष् कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् ।
कोविश्रम्भेत योगेन योगेश्वर मनुव्रतः ।।२३।।

(भा० ३।३)

अर्थ—श्रीकृष्ण ने यादवों को आनन्दित किया तथा उनकी औरतों से रात्रियों में अनुरागयुक्त (आसक्त) होकर कुछ काल उनके साथ प्रेमपूर्वक रमण (विषय भोग) किया ।२१। इस तरह बहुत वर्षों तक विषयभोग आदि गृहस्थ सुख भोगते-भोगते उन्हें उनसे वैराग्य हो गया ।२२। कामदेव सम्बन्धी बातें ईश्वर के आधीन हैं और मनुष्य भी ईश्वराधीन है। जब श्रीकृष्णजी को ही विषय भोगों को भोगते-भोगते उनसे वैराग्य हो गया तो साधारण मनुष्य जो उनका अनुगमन करता है उसे वैराग्य क्यों नहीं होगा ।२३।

इससे भी प्रगट है कि श्रीकृष्ण की विषय भोगों में प्रवृत्ति बहुत भारी थी। पुराण के अनुसार १६१०८ औरतें भोग के लिये रखना, बेशुमार गोपियाँ (रखैल औरतें) रखना इसका उज्वल प्रमाण है। बाद को विषयों से वैराग्य होना बताना भी उनके प्रारम्भ में विषयी होने को सावित करता है। तथा 'गोपाल सहस्रनाम' का उन्हें व्यभिचारी शिरोमणि लिखना पौराणिकवैष्णव पन्थ के सही दृष्टिकोण को सूर्य के प्रकाश बत स्पष्ट कर देता है।

एक ओर गीता के तथा महाभारत के कृष्ण का चित्र है जिसमें वे महान् विद्वान्, तपस्वी, संयमी, चतुर, राजनीतिज्ञ उस युग के विद्वानों एवं शूरवीरों में शिरोमणि ईश्वर-भक्त महात्मा व्यक्ति सिद्ध किये जा सकते हैं। दूसरी ओर भागवत आदि पुराणों के अति पतित व्यभिचारी शिरोमणि कृष्ण जनता के सामने हैं। यदि यह भागवतादि पुराण न होते तो महात्मा कृष्ण के पावन चरित्र पर कोई भी कलंक न लग सकता था। इस सम्बन्ध में आर्य समाज के प्रवर्तक युग पुरुष महर्षि दयानन्द

सरस्वतीजी महाराज की सम्मति देखने योग्यहै जो उन्होंने अपने विश्व-विख्यात ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज के विषय में दी है—

"देखो श्रीकृष्णजी" का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश्य है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा, और इस भागवत बनाने वाले ने अनुचित मन माने दोष लगाए हैं। दूध, दही, मक्खन आदि को चोरी और कुब्जा दासी से समागम, पर स्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्णजी में लगाये हैं। इसको पढ़-पढ़ा सुन-सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्णजी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता, तो श्रीकृष्णजी के सदृश्य महात्माओं को झूठी निन्दा क्यों कर होती।"

श्रीकृष्णजी महाराज एक श्रेष्ठ पुरुष थे। वे नित्य दोनों समय सन्ध्योपासन तथा यज्ञ किया करते थे। भागवत में भी उनके इस दैनिक कार्य का विवरण दिया है।

—श्रीकृष्ण का सन्ध्या व यज्ञ करना—

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वायु पस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्न करण आत्मानं तमसः परम् ॥४॥

अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथा विधि,
क्रिया कलापं परिधाय वाससी।

चकार संध्योपगमादि सत्तमो
हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥६॥
(भाग० १० ।७०)

अर्थ—श्रीकृष्णजी प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त में उठकर निवृत्त होकर परमात्माका ध्यान किया करतेथे। उस समय उनको अतीव आनन्द प्राप्त होता था। ४। इसके बाद वे विधिपूर्वक निर्मल जल में स्नान करते थे। तत्पश्चात् धोती पहिनकर सन्ध्या बन्दन करते थे और उसके बाद हवन, और फिर मौन होकर गायत्री का जाप किया करते थे।६।

जो महान व्यक्ति नित्यप्रति सन्ध्या, हवन, तथा प्रातः सायं मौन होकर ध्यानावस्थित होकर गायत्री तथा प्रणव के जाप करते हुए समाधिस्थ हुआ करता हो, ऐसा परमात्मा का परम भक्त बहु तथा परस्त्रीगामी हो ही नहीं सकता है। जिनका मन सात्विकी होता है वही ईश्वरभक्त होते हैं। कामी-इन्द्रिय-लोलुप तामसी प्रकृति के लोग ईश्वर भक्त तथा महान् व्यक्ति नहीं होते हैं। श्रीकृष्ण जी महाराज जैसे ईश्वरभक्त महानात्मा को असंख्य गोप बालाओं तथा सोलह हजार एक सौ आठ औरतों से विषय भोगों में रत रहने का पौराणिक लांछन सर्वथा मिथ्या वैष्णवी कल्पना है जो वाममार्गीय व्यभिचारियों ने गढ़ी है।

इन वाममार्गीय वैष्णव पन्थियों ने श्रीकृष्णजी के अवतारत्व पर भी एक करारी चोट विष्णु पुराण में करते हुए लिखा है कि श्रीकृष्णजी ईश्वर अवतार न होकर नारायण के सर के काले बाल अवतार मात्र थे। पुराणकार लिखता है—

—श्रीकृष्ण जी काले बाल का अवतार थे—

एवं संस्तूय मानस्तु भगवान्परमेश्वरः ।
उज्जहारात्मनः केशौ सित कृष्णौ महामुने ॥५६॥
उवाच च सुरानेतौ मत्केशौवसुधातले ।
अवतीर्य भुवोभार क्लेशहानिं करिष्यतः ॥६०॥
वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा ।
तस्याय मष्टमो गर्भो मत्केशो भविता सुराः ॥६३॥
अवतीर्य च तस्यायं कंसं घातयिताभुवि ।
कालनेमिं समुद्भूत मित्युक्त्वान्तर्दधेहरिः ॥६३॥

(विष्णु पुराण ५।१)

अर्थ—पराशर ने कहा—स्तुति किये जाने पर भगवान परमेश्वर ने अपने श्याम व श्वेत दो बाल उखाड़े ।५६। वे बोले, 'मेरे ये दोनों बाल पृथ्वी पर अवतार लेकर पृथ्वी का भार हरेंगे ।६०। वसुदेवजी की जो देवी सदृश्य देवकी नाम की पत्नी है उसके आठवें गर्भ से मेरा यह श्याम केश अवतार लेगा ।६३। अवतार लेकर यह कालनेमि के अवतार कंस का बध करेगा ।६४। (सफेद बाल बलराम बनकर उत्पन्न हुआ था)

उपरोक्त प्रमाण में विष्णु पुराण ने श्रीकृष्ण को न विष्णु का अवतार माना है और न ईश्वर का माना है। उसके अनुसार तो श्रीकृष्णजी काले बाल का अवतार थे। यह श्रीकृष्ण के भगवान के अवतारत्व पर गम्भीर प्रहार है। सनातन धर्म के अवतारवाद की जड़ ही इसने उखाड़ दी है। इसी प्रकार एक महा-

भागवत पुराण भी है। उसमें श्रीकृष्णजी को पार्वती का अवतार लिखा गया है। यह प्रमाण हमने 'अवतार रहस्य' ग्रन्थ में भी दिया है।

कृष्णो भूत्वा स्वयं गौरी चक्रे विहरणं मुने।
पुंरूपेण जगद्धात्रि प्राप्तायां कृष्णतां त्वयि।
वृषभानोः सुताराधास्वरूपा हंस्वयं शिवे॥

(महा भागवत अ० ४८)

अर्थात्—पार्वती ने स्वयं श्रीकृष्ण का अवतार धारण किया था तथा शिवजो वृषभानु के घर में जन्म लेकर राधा बने थे।

यह पुराण भी व्यास कृत माना जाता है। जब श्रीकृष्ण जी पार्वती का अवतार थे तो उनको ईश्वर या विष्णु अथवा काले बाल का अवतार मानना ही मिथ्या हो गया। भागवत पुराण ने इस सम्बन्ध में लिखा है—

एवं सुरगणैस्तात भगवन्ता वभिष्टुतौ।
लब्धा वलोकैर्ययतु रचितौ गन्ध मादनम् ॥५८॥
ताविमौ वै भगवतो हरेरंशा विहागतौ।
भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरुद्वहौ ॥५९॥

(भागवत ४।१)

अर्थ—भगवान नर नारायण का दर्शन पाकर देवताओं ने इनकी पूजा की। वे दोनों नर-नारायण गन्धमादन पर्वत पर चले गये।५८। भगवान के अंशभूत वे नर-नारायण ही नर-अर्जुन, तथा नारायण श्रीकृष्ण बन कर प्रगट हुए हैं।

इस प्रकार विष्णु पुराण और भागवत में स्पष्ट मतभेद है। एक कृष्ण को काले बाल का अवतार मानता है तो दूसरा उन्हें नारायण ऋषि का अवतार बताता है। महाभारत में इन नर व नारायण को ऋषि लिखा है और बताया है कि ये लोग सहस्रों वर्षों तक तपस्या किया करते थे। इन ऋषियों का पेशा ही युद्ध करना रहता है। जब कहीं युद्ध के अवसर आते हैं तो ये दोनों ऋषि वहाँ जन्म लेकर युद्ध किया करते हैं। (प्रमाण देखो 'अवतार रहस्य' ग्रन्थ में)

भागवत, विष्णु पुराण तथा महा भागवत पुराण इन तीनों के परस्पर विरुद्ध प्रमाणों से यह साफ हो जाता है कि वैष्णव पन्थ वालों ने महानात्मा कृष्ण को परमात्मा का साक्षात् अवतार बनाने में परस्पर विरोधी कल्पनायें की हैं जो कि सभी अमान्य हैं। इन कल्पनाओं से श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज का महत्व बढ़ाने के स्थान पर पुराणों के द्वारा गिराया गया है।

वाममार्गीय भागवतकार ने श्रीकृष्णजी से पशुबलि यज्ञ में भी करादी है।

चरन्तं मृगयां क्वापि हय मारुह्य सैन्धवम्।
घ्नन्तं ततः पशून मेध्यान् परीतं यदु पुङ्गवैः ॥३५॥

(भाग० १०।६९)

नारद ने देखा कि सिन्धी घोड़े पर चढ़ कर श्रीकृष्णजी शिकार खेल रहे हैं और यज्ञ में बलि के योग्य (मेध्य) पशुओं का ही बध कर रहे हैं।

यज्ञों में पशुओं को काटकर हवन करना साक्षात् वाममार्गीय धूर्तों का ही पेशा रहा है। श्रीकृष्णजी के यज्ञार्थ पशु-

बध करने का प्रमाण भागवत में देकर उन्होंने अपने कुकृत्य का समर्थन किया है। इसी प्रकार स्त्रियों के पति मरणोपरांत आग में जलने का उल्लेख करके मध्यकालीन पौराणिक पाशविक एवं नारी जाति पर मानव की घोर अत्याचारिणी वाममार्गीय प्रथा का समर्थन भागवत में किया गया है।

प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्वि रहातुराः ।
उपगुह्य पतींस्तात् चिता मारुरुहुः स्त्रियः ॥१९॥
वासुदेव पत्न्यस्तग्दात्र प्रद्युम्ना दीन् हरेः स्नुषाः ।
कृष्ण पत्न्योऽविशन्नग्नि रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥२०॥

(भाग० ११।३१)

बलराम व श्रीकृष्ण की मृत्यु के बाद देवकी रोहिणी व वासुदेव ने अपने प्राण छोड़ दिये। स्त्रियाँ उनकी अपने पतियों की लाशों के साथ चिताओं में जलकर मर गई।१९। वासुदेव, प्रद्युम्न तथा श्रीकृष्ण की रुक्मिणी आदि सभी रानियां (पत्नियाँ) इनकी चिताओं के साथ जल कर भस्म हो गईं।२०। भागवत में अन्य स्थलों पर भी इसी पौराणिक सती प्रथा का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है।

एवं मित्र सहं शप्त्वा पतिलोक परायणा ।
तदस्थोनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिंगता ॥ ३६ ॥

(भाग० ९।९)

मित्रसह को शाप देकर ब्राह्मणी अपने पति की अस्थियों

की धधकती हुई चिता मेंडालकर स्वयं भी उसी में भस्म हो गई और अपने पति की गति को प्राप्त कर गई।

विधाय कृत्यं हृदिनी जलाप्लुता
दत्वोदकं भर्तुरु दार कर्मणः ।
नत्वा दिविस्थां त्रिदशां स्त्रिः परीत्य
विवेश वह्निं ध्यायतीं भर्तृपादौ ॥२२॥

(भाग० ४। २३)

महाराज पृथु की मृत्यु के बाद सारे कृत्य करके नदी जल में स्नान करके पति को जलांजलि देकर चिता की तीन परिक्रमा करके पति चरणों का ध्यान करती हुई रानी चिता में प्रवेश कर गई।

इन उद्धरणों को देने से हमारा तात्पर्य यह दिखाना मात्र है कि भागवत की रचना उसी घोर अन्धकार मय भारत के मध्यकाल में हुई है जब स्त्रियों को आग में जलाना अनिवार्य धर्म पौराणिकों ने बना दिया था। श्रीकृष्ण की पत्नियों के आग में जलने की बात जहाँ भागवत में लिखी है, वहाँ इसी भागवत में इसके विपरीत यह प्रमाण भी मिलता है कि जब अर्जुन श्रीकृष्ण की पत्नियों को द्वारिका से उनकी मृत्यु के बाद ला रहे थे तो मार्ग में लोगों ने उनसे वे सारी पत्नियाँ छीन लो थीं। अर्जुन ने कहा—

अध्वन्युरुक्रम परिग्रह मङ्ग रक्षन्।
गोपैरसद्भिर बलेव विनि र्जितोऽस्मि ॥२०॥

(भाग० १।१५)

मैं भगवान की पत्नियों को द्वारिका से अपने साथ ला रहा था, परन्तु मार्ग में गोपों ने मुझे अबला की भाँति हरा दिया और मैं उनकी रक्षा नहीं कर सका।

महाभारत में श्रीकृष्ण की पत्नियों की लूट का वर्णन निम्न प्रकार दिया गया है—

ततो लोभः समभवद् दस्यूनां निहतेश्वराः ।
दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमानाः पार्थेनैकेन भारत ॥४६॥
ततो यष्टि प्रहरणा दस्य वस्ते सहस्रशः ।
अभ्यधावन्त वृषीणानां तं जनं लोप्रहारिणा ॥४६॥
कलत्रस्य बहुत्वाद्धि संपतत्सु ततस्ततः ।
प्रयत्नं करोत् पार्थो जनस्य परिरक्षणे ॥ ५८ ॥
मिषतां सर्व योधानां ततस्ता, प्रमदोत्तमाः ।
समन्ततोऽव कृष्यन्त कामाच्चान्याः प्रवव्रजुः ॥५६॥
प्रेक्ष तस्त्वेव पार्थस्य वृष्ण्यधक वरस्त्रियः ।
जग्मुरादाय ते म्लेक्षाः समन्तांजनमेजय ॥ ६३ ॥

(महाभारत मौसल पर्व अ० ७)

अर्थ—भारत नन्दन ! अर्जुन के संरक्षण में ले जायी जाती हुई इतनी अनाथ स्त्रियों को देखकर वहाँ रहने वाले लुटेरों के मनमें लोभ पैदा हुआ। ४६। हजारों लुटेरों ने चारों ओर से लाठियों से उन स्त्रियों के समूह पर आक्रमण कर दिया स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक थी। अर्जुन उनकी रक्षा का

प्रयत्न करते रहे ।४६।५८। सबके देखते-देखते डाकू उन सुन्दरी स्त्रियों को चारों ओर से खींच-खींच कर ले जाने लगे। अन्य स्त्रियाँ उनके स्पर्श के भय से उनके साथ स्वयं चली गईं ।५९। जनमेजय ! अर्जुन देखते ही रहे और डाकू सब औरतों को लूट कर ले गये ।६३।

भविष्य पुराण ब्राह्म पर्व अ० ७३ तथा उत्तर पर्व अ० १११ में श्रीकृष्ण की इन सोलह हजार पत्नियों को शाप वश रण्डियाँ बन जाने का उल्लेख है। यह उद्धरण हम इसी ग्रन्थ में पीछे "वैष्णव पन्थ" शीर्षक अध्याय दो में दे चुके हैं।

महाभारत में एक प्रमाण इन सबके विरोध में और भी मिलता है—

षोडश स्त्री सहस्राणि वासुदेव परिग्रहः ।
अमज्जंस्ताः सरस्वत्यां कालेन जनमेजय ॥१५॥

(महाभारत स्वर्गारोहण पर्व अ० ५)

हे जनमेजय ! श्रीकृष्ण की सोलह हजार स्त्रियां सरस्वती नदी में डूब कर मर गईं।

ये सारे ही प्रमाण परस्पर विरोधी हैं। तब भागवत की भी इस बात को सत्य नहीं माना जा सकता है कि ये स्त्रियाँ कृष्ण की मृत्यु के उपरांत जल कर मर गई थीं। श्रीकृष्ण की आयु के विषय में भागवत में स्क० ११ अ० ६ में लिखा है कि १२५ वर्ष की आयु पूर्ण करके उन्होंने शरीर त्यागा था। भागवतकार ने श्रीकृष्णजी के बड़े भाई बलरामजी को भी शराबी एवं बहुस्त्रीगामी लिखा है।

पूर्णाचन्द्र कला मृष्टे कौमुदी गन्धवायुना ।
यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्री गणैर्वृतः ॥१८॥
विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणु भिरि वेभराट ॥२८॥
(भाग० १० ।६५)

तत्रापश्यद् यदुपतिं रामं पुष्कर मालिनम् ।
सुदर्शनीय सर्वाङ्ग ललनायूथ मध्यगम् ॥ ९ ॥
गायन्तं वारुणीं पीत्वा मद विह्वल लोचनम् ।
विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्न मिव वारणम् ॥१०॥
(भाग० १० । ६७)

कुमुदिनी की सुगन्ध से सुवासित एवं पूणचन्द्र की चाँदनी में बलरामजी यमुना के मैदान में स्त्रियों के झुण्डों में विहार करते थे ।१८। मस्त हाथी जैसे हथिनियों के साथ रमण करता है वैसे ही वे औरतों (गोपियों) के साथ जल क्रीड़ा करने लगे ।२८। (भाग १०।६५) । उन्होंने देखा कि बलराम शराब पीकर गा रहे हैं। मस्ती से उनके नेत्र विह्वल हो रहे हैं। शरीर से वे अति सुन्दर लगते हैं स्त्रियों के झुण्ड में विद्यमान हैं । इत्यादि । १० ।

इसमें भागवतकार ने बलरामजी को भी शराबी व परनारी गामी लिख कर कलङ्कित किया है। बलराम व श्रीकृष्ण जैसे बाम मार्गीय व्यक्तियों को संसार में कभी उच्चस्थान नहीं मिल सकता है। भारत की वैदिक संस्कृति के वातावरण में जहाँ कि इन बातों को महा पाप माना जाता है, इस प्रकार के आचारवान व्यक्तियों को महा पतित माना जाता रहा है।

दक्षिण के वैष्णव पन्थ के द्रविण प्रवर्तकों ने जब इस अपने पाखण्डी सम्प्रदाय को उत्तर की ओर फैलाना प्रारम्भ किया तो यहाँ के महान पुरुषों के जीवन चरित्रों को भी अपने ही भ्रष्ट आचार विचारों में प्रदर्शित करने के लिए यह भागवतादि दूषित पुराण बना दिए और अपनी गन्दी भ्रष्ट परम्पराओं को उनमें अनेक रूपों में घुसेड़ दिया। यज्ञों में पशु बलि, मांस व शराब का आहार, पर-स्त्री तथा बहु-स्त्री गमन आदि उन्हीं शूद्र वैष्णव धर्म प्रवर्तकों की मान्यतायें एवं कल्पनायें हैं, जिनका कि इन्हीं भागवतादि पुराणों के आधार पर वैदिक धर्मी लोगों में भी धोखे से प्रचार किया गया है।

वैष्णव पन्थ प्रवर्तक गीता तथा भागवतकारों ने अपने मत को फैलाने के लिए श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज को प्रधान साधन बनाया है। उनको साक्षात् विष्णु का अवतार बनाया गया तथा साकार उपासना के लिए उन्हीं की मूर्ति तथा चित्र की उपासना व ध्यान करने का प्रचार किया गया। प्रचार में जनता पर विश्वास जमाने का एक साधन यह सोचा गया कि श्रीकृष्णजी के ही मुँह से उनकी भक्ति तथा उनकी मूर्ति की पूजा करने का उपदेश दिलाया जाय। भोली धर्म प्राण जनता को बहकाने के लिए भागवत में श्रीकृष्ण के मुख से कहलवाया गया कि—

संध्योपास्त्यादि कर्माणि वेदेना चोदितानि मे।
पूजां तै कल्पयेत् सम्यक् संकल्पः कर्मपावनीम् ॥११॥
शैली दारुमयी लौ ही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥१२॥

चला चलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीव मन्दिरम् ।
उद्वासा वाहने न स्तः स्थितिराया मुद्धवार्चने ॥१३॥
अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थण्डिले तुभवेदद्वयम् ।
स्नानं त्वविलेप्याया मन्यत्र परिमार्जनम् ॥१४॥
द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः ।
भक्तस्य चयथा लब्धैर्हृदिभावेन चैव हि ॥१५॥
(भा० ११।२७)

अर्थ—सन्ध्योपासनादि कर्म करने चाहिए। उसके बाद शुद्ध संकल्प से मेरी पूजा करनी चाहिए ।११। पत्थर, लकड़ी, लोहा (धातुकी), मिट्टी, चन्दन आदि की चित्रमयो, बालुका मयो, मनोमयो और मणिमयी यह आठ प्रकार की मेरी प्रतिमा होती है ।१२। चल और अचल भेद से दो प्रकार को प्रतिमा ही मेरा मन्दिर है। अचल प्रतिमा के लिए प्रतिदिन आवाहन और विसर्जन नहीं करना चाहिए।१३। चल प्रतिमा के विषय में करे चाहे न करे। किन्तु बालुकामयो प्रतिमा में प्रतिदिन आवाहन विसर्जन करे। मिट्टो, चन्दन तथा चित्रमयो प्रतिमा को प्रतिदिन स्नान न करावे। केवल मार्जन कर दे।१४। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पदार्थों से प्रतिमा में मेरी पूजा की जाती है। परन्तु जो निष्काम भक्त हैं वे प्राप्त पदार्थों से तथा भावना मात्र से मेरी पूजा हृदय में कर लिया करें ।१५। इत्यादि।

उपदेश देकर श्रीकृष्णोपासना तथा मूर्ति पूजा का पाखण्ड इस देश में फैलाया गया है। जब बौद्धों और जैनियों ने बुद्ध तथा महावीर स्वामी की प्रतिमाओं की पूजा जारी करा कर जनता को अपने मन्दिरों के द्वारा अपने गिरोह में खींचना

प्रारम्भ किया तो वैष्णव तथा शैवों ने भी अवतारों की कल्पना करके श्रीकृष्ण, लक्ष्मीनारायण, विष्णु, शिव, गणेश, भैरव आदि की मनगढ़न्त कथायें बना कर उनको भी परमात्मा मान कर प्रतिमायें बनवा कर मूर्ति पूजा का प्रचार हिन्दू समाज में जारी कर दिया। इन धर्म के आचार्यों से यह तो बन नहीं पड़ा कि उन नास्तिक सम्प्रदायों का तर्क से खण्डन करके उनके पाखण्डों को मिटाने का प्रयास करते। उसके बदले में उनकी बुराई के उत्तर में इन्होंने भी दुगनी बुराई का बीजारोपण अपने समाज में कर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि सारा हिन्दू समाज साकारोपासना के चक्कर में पड़ कर ईश्वर से विमुख बन कर नास्तिक बन गया। शराब, गोश्त, यज्ञों में पशु बलि, लड़कियों का मन्दिर में देवदासियों के रूप में व्यभिचार को रखना आदि सारे ही दुराचार इस समाज में इन सम्प्रदायों की आड़ में पैदा हो गए और सारी यह बुराईयां धर्म के नाम पर होने से जनता यह भी न समझ सकी कि यह सब पाप है या पुण्य है। उसकी तर्क बुद्धि अन्ध विश्वास के परदे में दब गई। हमारे पावन समाज का घोर पतन इन पुराणों और इनके मानने वालों ने कर दिया। हम आस्तिक से घोर नास्तिक बन गये। परमात्मा की जगह पत्थर पूजने लगे और हिन्दुओं की अक्लों पर पत्थर पड़ गए। अवतारवाद के मिथ्या सिद्धान्त को आड़ में सैकड़ों ढोंगी लोगों को अपने को अवतार घोषित करने का अवसर मिला। गुरुडम फैला, स्वार्थी लोगों ने भोले मनुष्यों को तथा स्त्रियों को मन माने तरीके से गुमराह किया, उनको लूटा खाया। अवतारवाद के कारण पचासों सम्प्रदाय इस देश में पैदा हो गए। एक सङ्गठित ईश्वर भक्त समाज के अनेकों टुकड़े हो गए। तरह-तरह के मतवालों के तरह-तरह के विचित्र वेष भूषा, झण्डे,

उपासना पद्धतियां, विभिन्न प्रकार के देवता, उनके परस्पर विरोधी मान्य ग्रन्थ, नाना प्रकार के माथे पर तिलक छापे, खान पान भेद आदि ने सारे समाज को एक दूसरे के शत्रु के रूप में खड़ा कर दिया।

जब सदाचार और दुराचार, शराब पीना और न पीना, मांस खाना और न खाना, निराकार पूजा और साकार उपासना, एक ईश्वरवाद और सैकड़ों ईश्वरवाद, ब्रह्मचर्य और व्यभिचार, अहिंसा और हिंसा सभी कुछ धर्म एवं सत्य होगा तो फिर सत्य असत्य का निर्णय, धर्म अधर्म की मर्यादा क्या रहेगी ? सत्य एक ही पक्ष होगा न कि दोनों पक्ष सत्य हो सकेंगे। वेद और पुराणों की मान्यताऐं एक दूसरे के सर्वथा विपरीत हैं। भागवत की स्थापनायें सर्वथा वेद धर्म के विरुद्ध है। तो वेद विश्वासी जनता के लिए भागवतपुराण सर्वथा वहिष्कार के योग्य ग्रन्थ हो जाता है। क्योंकि इस मिथ्या ग्रन्थ की रचना ही वैदिक धर्म की मान्यताओं को विनष्ट करने के लिए की गई थी। भागवत पुराण विष मिश्रित गुड़ के सदृश्य हैं जो चखने व देखने में सुन्दर है पर परिणाम में मारक है। इसके पठन-पाठन व सुनने का वही प्रभाव होता है जो गुड़ में मिला विष खाने का खाने वाले पर होता है। पवित्रात्मा महान् श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज जो वैदिक मर्यादाओं के रक्षक एवं प्रचारक, आर्य जाति के महान् आदर्श पूर्वज थे, जिनका सम्पूर्ण जीवन वैदिक ढांचे में ढला हुआ था, उन हमारे प्रातःस्मरणीय निष्कलङ्क आचार्य श्रीकृष्ण व बलराम को इस भागवत में गिन-गिन कर शराब, मांस, व्यभिचार, पर-स्त्री गमन, यज्ञों में पशु बलि, स्वयं परमात्मा बनने, बहु-स्त्री गमन आदि के सैकड़ों अवांच्छनीय घ्रणित दोष लगा कर कलङ्कित

किया है। अतः गप्पाष्टकों का यह पिटारा भागवत पुराण सर्वथा बहिष्कार के योग्य ग्रन्थ है।

वैष्णवो मान्यतानुसार श्रीकृष्णजी ने गीता में 'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तवचार्जुन' अ० ४ में अपने बहुत से जन्म-मरण होने की बात कही है। परन्तु भागवत ने 'संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमाये तरस्य च' श्लोक में उनको भगवान् का अवसर बता दिया है जो कि उनके विचारों के विपरीत है।

मनुस्मृति में अध्याय ३ में 'वेदानधीत्य' आदि श्लोकों में पूर्ण ब्रह्मचर्य सेवन के बाद गृहस्थ में जाने की आज्ञा दी है। 'वर्जयेन्मधुमाँसं च' अ० २ के श्लोक १७७ में ब्रह्मचर्य काल में—मधु, मांस, गन्ध, रस, स्त्री सेवन, देखना, छूना आदि का निषेध किया है। परन्तु भागवत ने उनको "रति विशेषज्ञः प्रियश्च वर योषिताम्" स्क० १० अ० ४७ श्लोक ४१ में उनको ११ वर्ष की आयु में विषय भोग कार्य में पूर्णतया दक्ष बना दिया है। तथा अध्याय ४२ में कुब्जा दासी से समागम करा दिया गया है। चन्दन लेप शरीर पर लगाना बताया है।

'नो च्छिष्टं कस्य चिद्दयात्' अ० २ श्लोक ५६ मनु० में किसी का झूठा खाने का निषेध किया गया है। किन्तु भागवत में 'गण्डं गण्डे संधत्या आदा त्ताम्बूलं चर्वितम्।' स्क० १०। ३३।१३ में एक गोपी द्वारा कृष्ण के गाल पर गाल रख कर अपने मुँह का चबाया हुआ पान उनके मुँह में देने का कथन है। श्रीकृष्ण को पर-नारियों के मुँह का उगलन खिलाया गया है।

मनु ने 'नाग्नं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम्' ॥४।५३ में नग्न अवस्था में स्त्रियों को देखने का निषेध किया है। किन्तु

भागवत १०।२२ में श्रीकृष्णजी ने चीर हरण करवे; गोपियों के गुप्ताङ्गों के नग्न दर्शन किए, ऐसा दोष लगाया है।

'मृगयाक्षा दिवा स्वप्नः' मनु० ७।४७ में शिकार खेलने, नाचने गाने आदि का निषेध किया है। किन्तु भागवत स्क० १०। ६९ में कृष्ण के शिकार खेलने आदि का वर्णन है।

'शूद्रां शयनमारोप्य' मनु० ३।१७ में शूद्रा स्त्री के साथ सोने का निषेध किया गया है। किन्तु भा० १०।४२ में श्रीकृष्ण का कुब्जा दासी से समागम (खुला व्यभिचार) करने का वर्णन है।

'पैत्रष्वसेयीम्' आदि श्लोकों में मनु ने फूफी की बेटी अर्थात् अपनी फुफेरी बहिन से विवाह करने का निषेध किया है। किन्तु श्रीकृष्ण को अपनी खास फुफेरी बहिनों मित्रवृन्दा और भद्रा के साथ विवाह करने का दोष लगाया गया है।

'ब्रह्महत्या सुरापानं' मनु० ११।५४ में शराब पीने को महा पाप माना है। किन्तु भागवत १०।६७ में बलरामजी को शराबी लिखा है।

इत्यादि अनेक बातें हैं जिनमें इन महापुरुषों का जीवन-चरित्र वैदिक मर्यादाओं को विरुद्ध पुराणकार ने सिद्ध किया है। यदि पुराणों को सत्य माना जावेगा तो यह महापुरुष वैदिक धर्मी अपने आचार व्यवहार से सिद्ध नहीं हो सकेंगे। इन विलासी एवं गल्प लेखक पुराणकारों की दृष्टि में विषय भोग भोगना ही ईश्वरत्व की महानता क्यों रहीं, यह हम नहीं समझ सके। जब गीताकार की दृष्टि में भगवान के अवतार का लक्ष्य धर्म की रक्षा, अधर्म का विनाश तथा दुष्टों का दमन ही था तो सहस्रों स्त्रियों से विषय भोग उनका कराना, यह इन बातों में से

किस उद्देश्य के अन्तर्गत आता है, यह प्रश्न बिना समाधान किए उन्होंने क्यों छोड़ दिया है ? श्रीकृष्ण अवतार का गौरव क्या इससे प्रगट होता है कि:—

स एष नर लोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया ।
रेमे स्त्रीरत्न कूटस्थो भगवान् प्राकृतो यथा ॥३५॥
यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ॥३६॥

(भा० १।११)

अर्थात्—(श्रीकृष्णजी की विशेषता यह थी कि) उन्होंने अवतार लेकर सहस्रों औरतों से साधारण पुरुषों के समान विषय भोग किया थातथा वे औरतें उनमें विषय भोग सम्बन्धी इन्द्रिय क्षोभ नहीं पैदा करा सकी थीं ।

उनमें जब औरतें कामोत्तेजन नहीं पैदा करा सकीं तो फिर बिना उत्तेजना एवं इन्द्रिय में सख्ती आये उन्होंने विषय भोग कैसे किया ? और फिर प्रश्न यह है कि क्या पौराणिक वैष्णव अवतारों का काम जङ्गली, व्यभिचारिणी, बदमाश औरतों के गुप्ताङ्गों की कामदेव की खुजली मिटाना ही होता है ? क्या ऊपर के प्रमाणों से यह प्रगट नहीं है कि कृष्णावतार का मुख्य उद्देश्य ही बदमाश औरतों से विषय भोग करके उनका उद्धार एवं उनकी कामवासना की तृप्ति करना ही था, अधर्म के नाश करने के स्थान पर इसी व्यभिचार एवं पर-नारी गमन के वाम-मार्गीय धर्म का प्रचार व स्थापना करना था । यदि नहीं था तो इन बेहूदी बातों को भागवत में क्यों लिखा गया है । क्या बद-माशी करने वाले व्यक्ति का भी कोई गौरव उसकी बदमाशी की कार्यवाहियों को खोल कर लिखने से बढ़ सकता है ? यदि बढ़ सकता है तो केवल बदमाशों की मण्डली में ही वह व्यक्ति 'चोर

जार शिखामणि' बन कर प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेगा। सभ्य संसार में तो वह पुरुष घृणा का पात्र सिद्ध होगा।

हमारी दृष्टि में श्रीकृष्णजी को दुराचारी बताने वाला भागवतकार स्वयं नम्बरी बदमाश रहा होगा। अन्यथा ऐसा मिथ्या एवं गन्दा ग्रन्थ कोई भला आदमी कभी भी लिखने का साहस नहीं कर सकता था जिसमें आर्य जाति के पवित्र महापुरुषों को झूठे कलङ्क लगा कर बदनाम किया गया है।

श्रीकृष्णचन्द्रजो महाराज की मृत्यु के सम्बन्ध में भागवतकार का वर्णन महाभारत से कुछ भिन्न है। जब बहेलिये ने उनके पैर में बाण मारा तब वे बैठे थे। यथा—

कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पङ्कजारुणम् ॥३२॥
मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशङ्कया ॥३३॥

(भा० ११।३०)

अर्थ—उस समय अपनी दाहिनी जांघ पर बायां चरण रख कर वे बैठे हुए थे। व्याध ने सचमुच हरिण समझ कर और उनके लाल तलवे को हरिण का मुख समझ कर बाण मार कर बींध दिया।

इसमें श्रीकृष्ण को बैठा हुआ बतलाया गया है। परन्तु महाभारत में लिखा है कि:—

स सं निरुद्धेन्द्रिय वांङ्मनास्तु
शिश्ये महायोग मुपेत्य कृष्णः ॥२१॥
जराथतं देश मुपाजगाम
लुब्धस्तदानीं मृग लिप्सु रुग्रः।
सकेशवं योग युक्तं शयानं

मृगा सक्तो लुब्धकः सायकेन ॥२२॥

जराविध्यत पादतले त्वरावां—

स्तं चाभितस्तज्जिघृक्षुर्जगाम् ।

अथापश्यत् पुरुषं योग युक्तं

पीताम्बरो लुब्धकोऽनेक बाहुकम् ॥२३॥

(महाभारत मौसल पर्व अ० ४)

अर्थ—श्रीकृष्णजी मन वाणी और इन्द्रियों का निरोध करके महायोग (समाधि) का आश्रय लेकर पृथ्वी पर लेट गये ।२१ उसी समय वहाँ जरा नामक एक भयङ्कर व्याध मृगों को मार ले जाने की इच्छा से आया । उस समय श्रीकृष्णजी योग युक्त हो कर सो रहे थे । मृगों में आसक्त हुए उस व्याध ने उनको मृग समझ कर बड़ी उतावली के साथ बाण मार कर उनके पैर के तलवे को जख्मी कर दिया । फिर जब वह वहाँ निकट गया तो उसने योग स्थित में चार भुजा वाले पीताम्बर धारी श्रीकृष्ण को देखा ।२२।२३।

भागवतकार ने श्रीकृष्ण को पेड़ के नीचे बैठा हुआ लिखा है जबकि महाभारतकार ने उनको ध्यानावस्थित हो कर पृथ्वी पर लेटे एवं सोते हुए लिखा है । दोनों वर्णनों में भिन्नता है । यदि भागवत की मिथ्या कल्पना को न मान कर इस सम्बन्ध में महाभारतकार का विवरण ठीक माना जावेगा तो वह बहुत अंशों में श्रीकृष्ण के गौरव की बढ़ाने वाला सिद्ध होगा । भागवतकार ने तो अपनी मिथ्या कल्पना से श्रीकृष्णजी महाराज के सारे गौरव को नष्ट करने का ठेका ले रखा था । वह कोई भी ऊँची बात सोच ही नहीं सकता था ।

॥ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥

छठा अध्याय

भागवत और अद्वैतवाद

'एको ब्रह्माद्वितीयो नास्ति' इस वाक्य का अर्थ यदि यह लिया जावे कि ब्रह्म एक ही है, दो या चार नहीं है तब तो ठीक होगा। किन्तु नवीन वेदान्तियों ने इसका अर्थ यह किया है कि जगत् में जो कुछ भी प्रतीयमान पदार्थ है वह सब स्वप्न के दृश्यवत मिथ्या हैं। केवल ब्रह्म ही सत्य है। अज्ञान से ब्रह्म ही अपने को जीव समझने लगा है। माया के वशीभूत हो कर वही मिथ्या जगत को सत्य मानने लगा है। अन्यथा सुख-दुःख सृष्टि जीव आदि कहीं कुछ भी नहीं हैं। जड़, चेतन्य जो कुछ भी है सभी ब्रह्म है। इसी सिद्धान्त का भागवत पुराण ने भी अनेक स्थलों पर इस प्रकार किया है:--

भगवान उवाच--

अहमेवासमे वाग्रे नान्यद् यत सदसत् परम्।
पश्चादहं यदे तच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥३२॥

(भा० २।९)

जड़ भरत उवाच--

एवं निरुक्तं क्षिति शब्दवृत्त—
मसन्निधानात्परमाणवो ये ।
अविद्यया मनसा कल्पितास्ते
येषां समूहेन कृतो विशेषः ॥६॥
(भा० ५।१२)

श्री शुक उवाच--

वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ।
भगवद्रूपमखिलं नान्यद् वस्त्विह किञ्चन ॥५६॥
(भा० १०।१४)

श्रीकृष्ण उवाच—

मये श्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना ।
सर्वात्मनापि सर्वेण न भावो विद्यते क्वचित् ॥३८॥
(भा० ११।१६)

ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च
प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम् ।
आद्यन्तयोरस्य यदेव केवलं
कालश्च हेतुश्च तदेवमध्ये ॥१८॥

यथा हिरण्यं स्वकृतंपुरस्तात्
पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ।

तदेव मध्ये व्यवहार्य माणं
नानापदेशै रहमस्य तद्वत् ॥१६॥
यदिस्म पश्यत्यसदिन्द्रियार्थं
नानानुमानेन विरुद्ध मन्यत् ।
नमन्यते वस्तुतया मनीषी
स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥३२॥
(भा० ११।२८)

अर्थ—सृष्टि से पूर्व केवल मैं ही था। मेरे अतिरिक्त सत-असत् (सूक्ष्म और स्थूल न उसका कारण) कुछ भी नहीं था। जहाँ यह सृष्टि नहीं है वहाँ मैं ही मैं हूँ, सृष्टि के रूप में जो कुछ प्रतीत हो रहा है वह भी मैं ही हूँ। जो कुछ बच रहेगा वह भी मैं ही हूँ। भाग० २। ६। ३२ । यह 'पृथ्वी' शब्द का व्यवहार भी मिथ्या ही है, वास्तविक नहीं । क्योंकि यह अपने उपादान कारण सूक्ष्म परमाणुओं में लीन हो जाती है। और जिनके मिलाने से पृथ्वी रूप'काय' की सिद्धि होती है, वे परमाणु, अविद्यावश मन से कल्पित किए हुए हैं। वास्तव में उनकी भी सत्ता नहीं है। भा० ५। १२। ६ जो लोग श्रीकृष्ण के वास्तविक स्वरूप को जानते हैं, उनके लिए जगत में चराचर पदार्थ अथवा इनसे परे, परमात्मा, नारायण, ब्रह्म आदि भगवत् स्वरूप, तथा सभी प्राकृतिक अप्राकृतिक वस्तु श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। भा० १०। १४। ५६

मैं ही ईश्वर हूँ, मैं ही जीव हूँ, मैं ही गुण हूँ, और मैं ही गुणी हूँ। मैं ही सबका आत्मा हूँ, मैं ही सब कुछ हूं। मेरे अति-

रिक्त और कोई भी पदार्थ कहीं भी नहीं है । भा० ११ । १६ । ३८ । ज्ञान-विवेक, वेद, तप-प्रत्यक्ष, इतिहास, अनुमान, इन सब प्रमाणों से यही स्पष्ट होता है कि जो संसार के आदि में था तथा अन्त में रहेगा, जो इसका मूल कारण और प्रकाशक है वह केवल परमात्मा ही है अन्य कुछ नहीं है । १८ । जैसे सोने से आभूषण बनते हैं । उनके बनने के पूर्व भी सोना था, उनके न रहने पर भी सोना रहेगा । आभूषणों के रूप में भी सोना ही है । इसी प्रकार जगत के आदि मध्य और अन्त में केवल ईश्वर ही ईश्वर है । वास्तविक सत्ता इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है । १९ । जैसे—नींद छूट जाने पर स्वप्न की बात सत्य नहीं मानी जाती है, वैसे ही इन्द्रियों द्वारा अनुभव में आने वाले जगत के व्यवहार या पदार्थों को ज्ञानी जन अनुमान से स्वप्नवत् मिथ्या ही मानते हैं, सत्य नही मानते हैं । ३२ । भाग० ११ । २८ ।

भागवत का उपरोक्त सिद्धान्त स्वयं भागवत के सम्पूर्ण वर्णन का खण्डन करता है । यदि सारा जगत् का व्यवहार स्वप्नवत् मिथ्या था तो पौराणिक भगवान के २३ अवतार, शुकदेव द्वारा भागवत् परीक्षित को सुनाये जाने की कहानी श्रीकृष्ण का जन्म लेना, कंस बध, महाभारत युद्ध कौरव पाण्डव तथा यादवों का विनाश, जरासन्ध के साथ कृष्ण के १८ युद्ध, कालयवन द्वारा मथुरा पर चढ़ाई, कृष्ण की सोलह हजार पत्नियां, बाल-क्रीड़ायें भागवत धर्म का वर्णन, कपिल के उपदेश आदि सभी मिथ्या हुए । जब इन सबका अस्तित्व स्वप्नवत है तो वह कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं रखता है । श्रीकृष्ण न तो कोई थे, न उनकी उपासना किसी को करनी हो चाहिए । भागवत के सिद्धान्त से

न उपदेशक कोई है और न उपदेश सुनने वाला न कोई है। न कोई ज्ञानी है, न ज्ञाता है और न, कुछ भी ज्ञेय है। केवल एक ब्रह्म ही की सत्ता है। सारे जीव जीव नहीं है। वे सभी ब्रह्म हैं। सारा, दृश्यमान जगत कुछ नहीं है। यह केवलम माया, प्रपञ्च अथवा धोखा मात्र है। जीव अपने को अज्ञान से जीव मानता है। वह शुद्ध ब्रह्म स्वयं है। जब जीव माया अथवा अज्ञानता से मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूप को समझने लगता है तो वह ब्रह्म हो जाता है, इत्यादि मिथ्या सिद्धान्त नवीन वेदान्तियों ने कल्पित कर रक्खे हैं जिनका वर्णन भागवतकार ने ऊपर दिया है।

इस पर प्रश्न होता है कि जब जीव अज्ञानता से अपने को जीव मानता है और वह वास्तव में ब्रह्म है, तो क्या ब्रह्म भी अज्ञानी है ? ब्रह्म में अज्ञानता का होना मानना ब्रह्म के गुणों को न समझना है। अल्पज्ञान, मूखता, अज्ञान यह गुण ब्रह्म के न होकर एक देशीय जीवात्मा के हैं। ब्रह्म तो सर्वोपरि सर्वज्ञ एवं सर्वव्यापक सत्ता है। ब्रह्म को किसने माया में फाँसा है और क्यों वह जन्म-मरण के चक्र में पड़कर बार-बार पुनर्जन्म धारण करता फिरता है। सर्व व्यापक सत्ता का मरना एवं पुनर्जन्म धारण करना, एक देशीय होना नहीं माना जा सकता है। पुनर्जन्म की घटनायें ही यह सिद्ध करती हैं कि जीवात्मा का एक देशीय स्वतन्त्र अस्तित्व है। ईश्वर का सर्वव्यापकत्व ही यह बताता है कि व्याप्य पदार्थ व्यापक परमात्मा से पृथक अस्तित्व रखता है। यदि व्याप्य पदार्थ न होगा तो ब्रह्म व्यापक किसमें होगा ? इससे व्याप्य जगत की सत्ता भी सिद्ध हो जाती है। भागवत के राजा नृग एवं भरत के पुन-

जन्म के वर्णनों से यह प्रगट है कि भागवत स्वतन्त्र एक देशीय सत्ता जीवों के अस्तित्व की मानता है।

जीव का एक शरीर में से निकलना तथा अन्य में प्रवेश करना ही मृत्यु तथा जन्म कहलाता है। यह एक देशीय सत्ता में ही सम्भव होता है। सर्वव्यापक का किसीमें से निकलना या प्रवेश करना नहीं बन सकता है। यदि बनता है तो वह सर्वव्यापक सत्ता नहीं होगी। भागवत का सम्पूर्ण वर्णन तथा ऊपर दिए गये स्कन्ध ११ अ० २८ श्लोक १८ में संसार की स्थिति स्वीकार कर लेना ही अद्वैतवाद के खण्डन तथा जगत के वास्तविक अस्तित्व को सिद्ध करने को पर्याप्त है। तो जब जगत् का तथा जीवों का अस्तित्व पृथ्वी आदि लोकों, पर्वतों, नदियों, नगरों, सेनाओं युद्धों, सम्बन्धी आदि पारिवारिक रिश्तों आदि की विद्यमानता स्पष्ट है तो यह भागवत का उपरोक्त वर्णन कि केवल ब्रह्म ही की सत्ता है अन्य सम्पूर्ण जगत का व्यवहार स्वप्नवत् मिथ्या, (अस्तित्व रहित) है, स्वयं मिथ्या सिद्ध हो जाता है। भागवतकार ने द्वैत-अद्वैत एवं त्रैतवाद के तीनों सिद्धान्तों को अपने ग्रन्थ में मिलाकर अपने ग्रन्थ की स्थिति हास्यास्पद बना दी है। यह ठीक है कि कार्यरूप जगत नाशवान होता है। प्रत्येक बनी हुई वस्तु का आदि एवं अन्त होता है। संयोग जन्य प्रत्येक वस्तु बनी हुई अथवा 'काय' मानी जाती है जो कि किसी कर्ता द्वारा किसी काल विशेष में बनाई जाती है। अतः उत्पन्न होने से सादि वस्तु सान्त भी होती है। जिन परमाणुओं के संयोग से किसी वस्तु का निर्माण होता है, भविष्य में कालान्तर में उन परमाणुओं का वियोग होने से उस वस्तु का विनाश भी होता है। जिन परमाणुओं में जितने काल तक संयुक्त रहने की सामर्थ्य होती है उतने समय तक उनके संयोग से बनी हुई वस्तु का अस्तित्व कायम रहता है और जब संयुक्त रहने की

शक्ति का क्षय हो जाता है तो वस्तु नष्ट हो जाती है। पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, वृक्ष, जीव जंतु, मानव आदि प्रत्येक की यही स्थिति है। सभी की उत्पत्ति प्राकृतिक (भौतिक) परमाणुओं के संयोग से होती है, और धीरे-धीरे उनको इस रूप में संयुक्त रहने की शक्ति का क्षय होता रहता है और अन्त में शक्ति का पूर्ण ह्रास हो जाने पर सभी का विनाश हो जाता है। लोकों के विनाश को प्रलय अथवा महा प्रलय कहा जाता है। हमारी पृथ्वी की इस प्रकार जो स्थिति रहती है उसकी अवधि भारतीय विज्ञान के अनुसार एवं वेद के प्रमाण से चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक की है।

—सृष्टि की आयु का वेद मन्त्र—

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगेत्रीणि चत्वारि कृष्मः।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्ताम हृणीयमानाः॥

(अथर्व ८। २। २१)

अर्थात् दस लाख तक बिंदु रखने पर उससे पूर्व २, ३,४ रखने से सृष्टि की आयु ४३२०००००० चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष निकल आती है।

इतने ही समय तक प्रलय काल रहता है। उसके पश्चात् पुनः सृष्टि रचना होती है जो कि पूर्व सृष्टि के समान ही होती है। जैसा कि वेद में लिखा है। देखो ऋग्वेद १०। १९०।३

सूर्या चन्द्र मसौधाता यथा पूर्वं कल्पयतू।
दिवं च पृथ्वीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

अर्थात्—विधाता ने सूर्य, चंद्र पृथ्वी, अंतरिक्ष आदि को

पूर्व कल्प के ही समान बनाया है। भागवत में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है—

सर्वं भूतमयो विश्वं ससर्जेद स पूर्वं वत् ॥३८॥

(भाग० २।६)

अर्थ—परमात्मा ने सम्पूर्ण जगत को पूर्व कल्प के समान ही बनाया है।

यथेदानीं तथाग्रे च पश्चादप्येत दीदृशम् ॥१३॥

(भाग ३।१०)

अर्थात्—यह जगत जैसा पूर्व कल्प में था वैसा ही अब बनाया गया है तथा भविष्य में भी अगले कल्प में ऐसा हो बनाया जायेगा।

वेद तथा भागवत के उक्त प्रमाण जगत के अस्तित्व को पुष्टि करते हैं। वे उसकी उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय तथा भूत कालीन पूर्व कल्पों में स्थिति एवं प्रलयान्तर भावी कल्पों में उत्पत्ति की घोषणा करते हैं। ऐसी स्थिति में वेद विरुद्ध होने से भागवतकार के अद्वैतवाद को कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता है। पंचभौतिक जगत जड़ प्रकृति का कार्य है। इस जड़ जगत का उपादान कारण भी जड़ ही होना चाहिए।

सत्व रज तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः ।

(सांख्य)

सत, रज, तम इन गुणों वाली (इन गुणों की साम्यावस्था में प्रलय में वर्तमान रहने वाली परमाणु रूप अवस्था की) प्रकृति ही सम्पूर्ण विश्व में भौतिक जगत की उपादान कारण है। यह जगत का जड़त्व गुण परमात्मा में नहीं है। परमात्मा तो चैतन्य स्वरूप है। यदि परमात्मा जगत का उपादान कारण

माना जावेगा तब या तो जगत् चैतन्य होना चाहिए। जैसे कि स्वर्ण के गुण स्वर्ण से बने आभूषण में आते हैं। अन्यथा जड़ जगत का गुण जड़त्व परमात्मा में वर्तमान होना चाहिए। चैतन्यता एवं जड़ता दोनों परस्पर विरोधी, गुण एक पदार्थ के स्वाभाविक गुण नहीं बन सकते हैं। प्रकृति विकारवान है। उसमें सत्, रज, तम आदि गुणों में यथा समय विकार (परिवर्तन) होते रहते हैं। यदि परमात्मा में प्रकृति के गुणों का अस्तित्व स्वीकार किया जावेगा तो परमात्मा भी विकारवान हो जावेगा। क्योंकि विकारवान वस्तु नाशपान होती है, तो परमात्मा भी नाशवान् सत्ता बन जावेगा। भागवत का स्वर्ण और जेबर का दृष्टांत पौराणिक परमात्मा को नाशवान् एवं जड़त्व गुण धर्म वाला बना देता है।

एक तर्क अद्वैतवादी बहुधा और दिया करते हैं कि जैसे मकड़ी अपने में से तार उगल कर जाला बना देती है तथा आवश्यकता न रहने पर उस जाले को पुनः निगलकर उसका अस्तित्व समाप्त कर देती है। इसी प्रकार ब्रह्म जगत् को उत्पन्न करता तथा अपने में प्रलय काल में लीन भी कर लेता है। भागवतकार इसी प्रकार का तर्क उपस्थित करता है। किन्तु यह मकड़ी का दृष्टान्त अद्वैतवाद के पक्ष की पुष्टि नहीं करता है। यह तो त्रैतवाद का समर्थक प्रमाण है। मकड़ी दो तत्वों के संयोग का नाम है। पंचभूतों से उसके शरीर का निर्माण होता है तथा चैतन्य जीवात्मा उस शरीर में वास करता है। मकड़ी का चैतन्य जीवात्मा उस पंच भौतिक शरीर में से तन्तु निकाल कर जाला बना देता है। तो जड़ जाला कार्य हुआ। उसका उपादान कारण मकड़ी का पंच भौतिक जड़ शरीर हुआ। तथा इसे बनाने वाला मकड़ी का चैतन्य जीवात्मा निमित्त

कारण बन गया। इसी प्रकार परमात्मा जगत की उत्पत्ति का का निमित्त कारण है। वह सर्व व्यापक होने से सम्पूर्ण विश्व में कण-कण में व्याप्त रहता है। प्रलयकाल में यह सम्पूर्ण प्रतीयमान जगत छिन्न-भिन्न होकर परमाणु रूप से स्थित रहता है। परमात्मा नित्य सर्व व्यापक होने से उसमें व्याप्त रहता है तो परमेश्वर उन व्याप्त परमाणु रूप प्रकृति से कार्य रूप जगत् की रचना कर देता है। इस प्रकार परमात्मा निमित्त कारण होता है, परमाणु रूप जड़ प्रकृति उपादान कारण होती है और रचा हुआ जगत् 'कार्य' बन जाता है।

इस प्रकार जगत् के लिए उपादान तथा निमित्त कारण प्रथक-प्रथक सिद्ध हैं और कार्यरूप जगत् का अस्तित्व मी तर्क व शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध है। तब भागवत के अद्वैतवाद की मान्यता वाले उपरोक्त श्लोक एवं सिद्धान्त असत्य स्वयं सिद्ध हो जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि भागवतकार ईश्वर व जगत के स्वरूप के विषय में सर्वथा भ्रम में था। उसे जगत् के उपादान कारण को ईश्वर से प्रथक किसी न किसी रूप में जगत् की रचना से पूर्व स्वीकार करना ही पड़ेगा फिर चाहे वह उस भौतिक जड़तत्व को, प्रकृति या किसी भी अन्य नाम से स्वीकार करे। यदि जीवात्माओं का प्रथक अस्तित्व नहीं माना जावेगा तो जगत् की रचना का कोई उद्देश्य भी सिद्ध नहीं हो सकेगा। परमात्मा को क्या आवश्यकता पड़ती है कि वह बिना उद्देश्य के इस विश्व की रचना करे। ईश्वर के प्रत्येक कार्य में उद्देश्य निहित होता है। यदि जीवात्मा नित्य नहीं है और ईश्वर से प्रथक इनकी अनादि सत्ता नहीं है तो क्या ईश्वर ने जगत् को अपने लिए बनाया है? यदि ऐसा माना जावेगा तो ईश्वर आवश्यकताओं वाला सिद्ध होगा। आवश्यकता अप्राप्त वस्तु की होती है। तब क्या ईश्वर को कोई

वस्तु अप्राप्त भी है? यदि ऐसा है तो ईश्वर अपूर्ण माना जावेगा। किन्तु प्रभु पूर्ण निष्काम सर्व शक्तिमान है। कामना सदैव अल्पज्ञ अपूर्ण जीवों को होती है। तब वैदिक सिद्धान्त यह है कि चालू सृष्टि के अन्त हो जाने पर जीवों के जो शुभ-अशुभ कर्म फल भोगने को शेष रह जाते हैं उनके फल भोग की व्यवस्था करने एवं जीवों को कर्मक्षेत्र में उतर कर अपना उत्थान करने का अवसर देने के लिए प्रलयकालोपरान्त परमेश्वर पुनः पूर्व कल्प के समान सृष्टि की रचना किया करते हैं। वैदिक व्यवस्था में ईश्वर जीवों के लिए जगत् के उपादान कारण प्रकृति से विश्व की रचना करता है। जीव ईश्वर तथा विश्व का उपादान कारण नित्य है। कार्यरूप जगत् अनित्य होता है। माया शब्द इसी उपादान कारण प्रकृति के लिये व्यवहृत होता है। परमात्मा स्वामी है। जीव उसके सखा हैं। प्रकृति माया उसकी सम्पत्तिहै। स्वर्ण के गुण स्वर्ण से निर्मित आभूषण में रहते हैं। वैसे ही सत्-रज-तम के गुणों वाली जड़ प्रकृति के ये तीनों गुण उसके कार्यरूप जगत् में रहते हैं। इन गुणों में विषमता होते रहने से सम्पूर्ण जगत् भिन्न-भिन्न गुणों वाला प्रतीयमान होता है। जड़ जगत सत्य है मिथ्या नहीं है। मिथ्या का अर्थ है नाशवान, तब उसे नाशवान जगत को मिथ्या कह सकते हैं। इसी प्रकार सत्य से हमारा तात्पर्य है वास्तविक सत्ता वाला। जगत का कार्य रूप में भी अस्तित्व सत्य है अतः वह सत्य है। किन्तु जहाँ सत्य का अर्थ नित्य लिया जावेगा,वहाँ सत्य शब्द परमात्मा तथा जीवात्मा के लिए व्यवहृत होगा। साथ ही कारणरूप प्रकृति भी नित्य होने से सत्य मानी जावेगी। पुराणों ने माया-प्रपंच तथा मिथ्या इन शब्दों का जाल फैलाकर एवं इनका गलत प्रयोग करके वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध अनेक कल्पित सिद्धाँत बना डाले हैं।

जो कि तर्क एवं वैदिक कसौटी पर गलत उतरते हैं । पुराणों का अद्वैतवाद भी इसी प्रकार का एक मिथ्या मनगढ़न्त सिद्धांत है जिसका समर्थन करने में स्वयं भागवतकार लड़खड़ा गया है।

न भविष्य सि भूत्वा त्वं पुत्र पौत्रादि रूपवान् ।
बीजांकुरवद् देहादेर्व्यतिरिक्तो यथानलः ॥३॥
घटे भिन्ने यथाऽऽकाशः आकाशः स्याद् यथा पुरा ।
एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पद्यते पुनः ॥५॥

(भा० १२।५)

अर्थ—जैसे बीज से अंकुर और अंकुर से बीज की उत्पत्ति होती है, वैसे ही एक देह से दूसरे और दूसरे से तीसरे देह को उत्पत्ति होती है । किन्तु न तो किसी से उत्पन्न हुए हो और न आगे किसी पुत्र पौत्रादि के शरीर के रूप में उत्पन्न होओगे । जैसे आग लकड़ी से प्रथक रहती है । लकड़ी की उत्पत्ति और विनाश से सर्वथा परे,वैसे ही तुम भी शरीर आदि से सर्वथा प्रथक हो ।३। जैसे घड़ा फूट जाने पर आकाश पहिले ही कीभांति अखण्ड रहता है, परन्तु घटाकाशता की निवृत्ति हो जाने से लोगों को ऐसा प्रतीत होता है कि वह महाकाश से मिल गया है—वास्तव में तो वह मिला हुआ था ही वैसे ही देह पात हो जाने पर ऐसा मालूम पड़ता है मानो जीव ब्रह्म हो गया। वास्तव में तो वह ब्रह्म था ही । उसकी अब्रह्मता तो प्रतीत मात्र थी ।५।

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ।
एवं समीक्षन्नात्मान मात्मन्याधाय निष्कले ॥११॥

(भाग० १२।५)

अर्थात्—तुम इस प्रकार चिन्तन करो कि—"मैं ही सर्वा-

धिष्ठान परब्रह्म हूँ। सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मैं ही हूँ।" इस प्रकार तुम अपने आपको अपने वास्तविक एकरस अनन्त अखण्ड स्वरूप में स्थित कर लो। १।

नवीन वेदान्ती इस तर्क द्वारा सम्पूर्ण जगत को मिथ्या बताते हुए जीव को ही परमेश्वर मानते हैं। पर उनका उपरोक्त तर्क सर्वथा मिथ्या है। बीज से बीज की उत्पत्ति अवश्य होती है। एक शरीर से दूसरे शरीर की उत्पत्ति में निमित्त कारण बीज ही होता है। जबकि बीज या शरीर पञ्चभूतों से उत्पन्न होता है तो उसके कार्य रूप शरीर में ज्ञान युक्त चैतन्यता नहीं आ सकती है, क्योंकि उसकी विद्यमानता का मूल कारण में अभाव होता है। स्त्री पुरुष के शरीर में से रज एवं वीर्य का नारी के गर्भाशय में मिलना भावी बालक के शरीर के लिये आधारभूत बीज का कार्य करता है। उस आधार का विकास होने पर उसमें जिस प्रकार मकान बनने पर मकान में किराये-दार आता है, चेतन्य जीवात्मा का प्रवेश होता है। जीवात्मा के प्रवेश के साथ ही शरीर में चैतन्यता एवं ज्ञानपूर्वक क्रिया उत्पन्न होती है। ज्ञानवान चैतन्य जीवात्मा जो कि सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि लक्षणों से युक्त होता है, भौतिक बीज या पञ्चभूतों के अन्दर या उनके सम्मिश्रण से उत्पन्न नहीं होता है। वह स्वतन्त्र अनादि अपना अस्तित्व रखता है, एवं स्वकर्मों के भोग के लिये शरीर के बन्धन में पड़ा 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्' के चक्र में घूमता रहता है।

यदि जीव ही आकाश के समान सर्व व्यापक ब्रह्म है तो प्राणी की मृत्यु के पश्चात भी व्यापक ब्रह्म का उस शव में पूर्व-वत अस्तित्व विद्यमान रहता है। तब शरीरगत चेतन्य सत्ता का उसमें अभाव क्यों दीखता है? क्या सर्व व्यापक ब्रह्म उस मृत

शरीर में से निकल भी सकता है ? यदि निकल जाता है तो उस एक देशीय ब्रह्म को आकाश के व्यापकत्व से उपमा देना मिथ्या होगा। भागवत के सिद्धान्त से तो किसी भी प्राणी को कभी मरना ही नहीं चाहिये, क्योंकि उसमें व्याप्त ब्रह्म नित्य सर्वव्यापक चैतन्य सत्ता है। जब प्रत्यक्ष में जीवात्माओं का पुनर्जन्म लेना सिद्ध है और भागवत में भी कई दृष्टान्त राजा नृग आदि के स्वकर्म वश पुनर्जन्म के विद्यमान हैं, तब भागवतकार का यह लिखना है कि जैसे घटाकाश (घट टूटने पर) महाकाश रूपी अपने वास्तविक स्वरूप में आ जाता है इसी प्रकार शरीर नाश के बाद जीवात्मा अपने असली स्वरूप ब्रह्म (में मिल जाता है अथवा) हो जाता है, सर्वथा मिथ्या स्वयं सिद्ध हो जाते हैं। सर्व व्यापक ब्रह्म के अतिरिक्त एक देशीय चैतन्य जीवात्मा की प्रत्येक जीवित प्राणी के शरीर में प्रथक व्याप्त सत्ता होती है जिसकी विद्यमानता में प्राणी जीवित रह कर सुख दुःख का भोक्ता एवं विविध शुभ अशुभ कर्मों का कर्ता एवं ज्ञानपूर्वक क्रिया का सञ्चालक होता है। जब वह किसी कारण वश उस अपने भौतिक (किराये के मकान रूपी) शरीर में से निकल जाता है तो शरीर निर्जीव अथवा शव कहलाता है और उसे नष्ट कर दिया जाता है। यद्यपि सर्वव्यापक ब्रह्म तो उस शव में उसी प्रकार एकरस विद्यमान रहता है जैसे कि वह उस के जीवित रहने की अवस्था में व्यापक था। किन्तु उसकी शव में विद्यमानता से शव पूर्ववत चेतन्य नहीं होता है। जैसे घट टूटने पर उसका आकाश अन्य स्थानीय घट में प्रवेश करने को अन्यत्र नहीं ले जाया सकता है,जैसे एक स्थान पर पड़ने वाली सूर्य के प्रकाश की किरण को दूसरे स्थानपर नहीं ले जाया जा सकता है, वैसे ही एक स्थान पर व्याप्त परमात्मा को दूसरे स्थान पर

लेजा कर अन्य शरीर में बन्द नहीं किया जा सकता है। क्योंकि एक देशीय वस्तु का ही आवागमन अथवा स्थानान्तरण सम्भव होता है सर्व व्यापक का नहीं।

इस प्रकार सिद्ध है कि एक देशीय जीवात्मा सर्व व्यापक ब्रह्म से अपना स्वतन्त्र प्रथक अस्तित्व रखता है। परमात्मा सर्व व्यापक होने से जीवात्मा में भी व्याप्त रहता है। जीवात्मा के कर्मों का साक्षी एवं उसे तदनुकूल कर्म फल देने वाला विश्व का सृजक-पालक पोषण व्यवस्थापक एवं संहारक पारब्रह्म परमात्मा को जीवात्मा बताना और एक देशीय अल्पज्ञ जीवात्मा को सर्व व्यापक सर्वज्ञ परमात्मा या ब्रह्म बताना भागवतकार को नास्तिक एवं ईश्वर विरोधी सिद्ध करता है। उसने आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को समझा ही नहीं है।

यदि जीव को ही घटाकाश मान लिया जावेगा तो स्वर्ग, नरक, मोक्ष, कर्म. अकर्म आदि सारी बातें जिनका उल्लेख भागवत में भरा पड़ा है सब झूठी हो जावेगी। मरने के बाद सभी प्राणी आनन्द स्वरूप ब्रह्म हो जावेंगे। उसमें रुकावट कोई भी नहीं हो सकेगी। जैसे कि घड़ा फूटने पर उसके आकाश का महाकाश में मिलना अवश्यम्भावी होता है। उसे कोई भी रोक नहीं सकता है। तब सारा वैष्णव धर्म और उसके मान्य ग्रन्थ भागवतादि कोरे प्रपञ्च मात्र सिद्ध हो जावेंगे। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि भागवत की नवीन वेदान्तियों के सिद्धान्त की पुष्टि अथवा प्रतिपादन सर्वथा ढोंग हैं। वह 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस बात का पाठ पढ़ा कर मानव को आस्तिक से नास्तिक बनाना चाहता है।

॥ छठा अध्याय समाप्त ॥

सातवाँ अध्याय

भागवत में गल्पों का विशाल भण्डार

किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय के मान्य ग्रन्थ में बुद्धि, सृष्टि नियम विज्ञान, इतिहास तथा भूगोल के विरुद्ध बातों का उल्लेख होना उस ग्रन्थ की प्रमाणिकता को नष्ट कर देता है। अन्ध-विश्वास पूर्वक जो लोग इस प्रकार की बातों को भी सत्य मानते हैं, उनको संसार के विद्वान् अज्ञानी मानते हैं। इस्लाम के धर्म ग्रन्थ कुरान, ईसाईयों के ग्रन्थ बाइविल में इसी प्रकार की अनर्गल बातों का उल्लेख होने से उन पर से विद्वानों का विश्वास हटता जा रहा है। भारतवर्ष में जितने भी धार्मिक सम्प्रदायों का प्रसार देखने में आता है उन सभी के धर्म ग्रन्थ इस प्रकार के दोषों से मुक्त नहीं हैं। हमारा आलोच्य वैष्णव धर्म का प्रधान ग्रन्थ भागवत भी इसी प्रकार की असम्भव बातों से युक्त है जिनको किसी भी रूप में उसके मानने वाले वैष्णवी पण्डित रूपी वकील समर्थन नहीं कर सकते हैं। इस अध्याय में हम कतिपय इस प्रकार के दृष्टान्त उपस्थित करेंगे। जिनको देख कर विद्वान पाठक भागवत के सम्बन्ध में अपनी सम्मति स्थित कर सकेंगे।

असुरों का ब्रह्माजी से मैथुन

देवोऽदेवाज्जघन तः सृजति स्माति लोलुपान्।
त एनं लोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे ॥२३॥

ततो हसन् स भगवान सुरैर्निपत्र पैः ।
अन्वीय मानस्तरसा क्रुद्धो भीतः परापतत् ॥२४॥
स उपव्रज्य वरदं प्रपन्नार्तिहरं हरिम् ।
अनुग्रहाय भक्ता नामनुरूपात्म दर्शनम् ॥२५॥
पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणे नासृजं प्रजाः ।
ता इमा यभितुं पापा उपाक्रामन्ति मां प्रभो ॥२६॥

अर्थ—ब्रह्माजी ने अपने जघन देश से कामासक्त असुरों को उत्पन्न किया। वे अत्यन्त कामलोलुप होने के कारण उत्पन्न होते ही मैथुन करने के लिए (खूबसूरत) ब्रह्माजी पर चढ़ दौड़े।२३। यह देख कर पहिले तो वे हँसे, किन्तु फिर उन निर्लज्ज असुरों को अपने पीछे लगा देख कर भयभीत और क्रोधित हो कर बड़े जोर से भागे।२४। तब उन्होंने भक्तों पर कृपा करने वाले, उनको दर्शन देने वाले, विष्णु भगवान के पास जाकर कहा।२५। परमात्मन् ! मेरी रक्षा कीजिए, मैंने आपकी ही आज्ञा से प्रजा उत्पन्न की थी, किन्तु यह तो पाप में प्रवृत्त हो कर मुझ से ही सम्भोग करने, मुझ को तङ्ग करने चली है।२६। यह सुन कर विष्णु ने ब्रह्मा को आदेश दिया:—

सोऽवधार्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्म दर्शनः ।
विमुञ्चात्म तनुं धोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥२८॥
(भा० ३।२०)

अर्थ—सर्वज्ञ विष्णु ने कहा—'तुम अपने इस काम कलुषि शरीर को त्याग दो !' अर्थात् आत्महत्या कर लो। इस पर ब्रह्मा ने आत्महत्या कर डाली (शरीर त्याग दिया)।

क्या ऐसा कमजोर (ब्रह्मा भी सृष्टि कर्ता ईश्वर माना जा सकता है जिससे असुरों ने भोग किया हो। और जो उनसे भी अपनी रक्षा न कर सका हो। एक प्रश्न और भी पैदा होता है कि पहिलो वार तो ब्रह्माजी की उत्पत्ति विष्णु के नाभि कमल से हुई थी। अब जब वह एक बार मर गया तो पुनः उसकी उत्पत्ति कब और किस प्रकार हुई, इसका कोई विवरण सम्पूर्ण पौराणिक साहित्य में नहीं मिलता। इसका अर्थ यह हुआ कि असुरों के व्यभिचार प्रयास के बाद शरीरधारी ब्रह्माजी का अस्तित्व ही समाप्त हो गया था। यदि कोई पौराणिक विद्वान् साहस रखता हो तो वह हमको ब्रह्माजी की इस मृत्यु के बाद पुनः जन्म लेने का उल्लेख किसी भी पौराणिक साहित्य में दिखाकर यश प्राप्त करे। हम इस घटना को पौराणिक अनर्गल गपोड़ा मानते हैं।

—सौ योजन ऊँचा वृक्ष—

प्राप्ताः किंपुरुषैर्द्धष्ट्वा तआरादृद्ध शुर्वटम् ॥३१॥
स योजन शतोत्सेधः पादोन विटपायतः ॥ ३२॥

(भाग० ४।६)

अर्थ—इन्हें (हिमालय पर) एक वट वृक्ष दिखाई दिया। वह वृक्ष सौ योजन (चार सौ कोस) ऊँचा था तथा उसकी शाखायें पचहत्तर योजन तक फैली हुई थी (अर्थात् तीन सौ कोस तक का स्थान एक ही वृक्ष घेरे था)।

इस बात के गल्प होने में क्या सन्देह है। हिमालय पर्वत की सबसे ऊँची चोटी ५ मील है उस पर वट वृक्ष लगभग ३०० मील ऊँचा शायद भागवतकार के घर में खड़ा होगा।

– मुर्दे (शव) को मथकर बालक जन्मे—

राजा बैन बिना सन्तान के मर गया। तब वंश संचालनार्थ एवं गद्दी पर बैठाने के लिए ऋषियों ने पुत्र उत्पन्न करने की दृष्टि से—

विनिश्चित्यैव मृषयो विपन्नस्य महीपतेः ।
ममन्थु रुरुं तरसा तन्नासीद्बाहुको नरः ॥४३॥
तंतु तेऽवनतं दीनं किं करोमीति वादिनम् ।
निषीदेत्यब्रुवंस्तात् स निषादस्ततोऽभवत् ॥४५॥

(भाग० ४। १४)

निश्चय करके उन्होंने मृत राजा की जांघ को बड़े जोर से मथा, तो उसमें से एक बौना पुरुष उत्पन्न हुआ। ४३। उसने बड़ी दीनता से पूछा कि 'मैं क्या करूं'? तो ऋषियों ने कहा— "निषीद (बैठ जा)' इसी से वह निषाद कहलाया।४५।

—जनक की उत्पत्ति निमि के शव से—

निमि राजा निः सन्तान मर गया। तो राज्य के संचालन करने की दृष्टि से ऋषियों ने —

अराजक भयं नृणां मन्य माना महर्षयः ।
देहं ममन्थुः स्म निमेः कुमारः समजायत ॥१२॥
जन्मना जनकः सोऽभूद् वैदेहस्तु विदेहजः ।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥१३॥

(भाग० ६। १३)

अर्थ—सोचकर और अराजकता के भय से राजा निमि के मृत शरीर का मन्थन किया, उस मन्थन से एक कुमार उत्पन्न हुआ। १२। जन्म लेने के कारण उसका नाम 'जनक' हुआ। विदेह से उत्पन्न होने से वह वैदेह कहलाया, और मन्थन से उत्पन्न होने से उस बालक का नाम 'मिथिला' हुआ। उसी ने मिथिलापुरी बसा दी थी।१३।

जांघ को मथकर या जांघ के निकट के किसी अङ्ग को मथकर मुर्दे से निषाद की तथा उसी प्रकार महाराज जनक की शव मन्थन से हुई उत्पत्ति क्या कोरी गल्पें नहीं हैं? क्या इन गप्पाष्टकों को वैज्ञानिक तरीके से सिद्ध किया जा सकता है? त्रिकाल में भी नहीं।

हरिनी—से ऋङ्ग ऋषि का जन्म—

मृगी जोथर्ष श्रङ्गोपि वशिष्ठो गणिकात्मजः।

(भविष्य पु० ब्राह्म पर्व ४२। २३)

अर्थात्—हिरनी से श्रङ्गऋषि तथा रण्डी से वसिष्ठ मुनि पैदा हुए थे।

नृत्य वादित्र गीतानि जुषन् ग्राम्याणि योषिताम्।
आसां क्रीडन को वश्य ऋष्य श्रङ्गो मृगी सुतः॥१८॥

(भाग० ११। ८)

हरिनी के गर्भ से पैदा हुए ऋष्यश्रङ्ग मुनि स्त्रियों का विषय सम्बन्धी गाना, बजाना, नाचना आदि देख सुनकर उनके वश में हो गये थे।

तोती–उल्लू तथा मैढकी से ऋषियों की उत्पत्तियाँ –

शुक्याः शुकः करणादाख्यस्तथोलूक्याः सुतोभवत् ॥२३॥
मण्डव्यो मुनि राजस्तु मण्डूको गर्भ संभवः ॥२४॥

(भविष्य ब्राह्म ४२।२२)

तोती से शुकदेवजी, उल्लू से कणाद मुनि, मैढ़की के गर्भ से माँण्डव्य मुनि पैदा हुये थे।

इस प्रकार भागवत तथा भविष्य आदि पुराणकारों ने बे सर पैर की चण्डूखाने की गल्पें गढ़-गढ़ कह पुराणों में भर दी हैं जिनसे भारतीय ऋषि मुनियों के जीवन चरित्रों को कलंकित किया गया है। क्या पशु-पक्षियों से मानव उत्पत्ति भी सम्भव है ? क्या इन पक्षियों एवं जलचर मेंढ़की आदि के गर्भ में मानव गर्भ ठहर तथा विकसित हो सकता है ? अथवा क्या सनातन धर्म के उपरोक्त ऋषि मुनि उल्लू पक्षी या मेंढ़को की ही जाति के तो नहीं थे ? पुराण भी क्या ग्रन्थ हैं, कोरे गल्पों के भण्डार हैं।

—औरतों के गर्भ से जड़ जङ्गम सृष्टि—

तिमेर्यादोगणा आसन् श्वापदाः सरमा सुताः ॥२६॥
सुरभेर्म हिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप।
ताम्रायाः श्येन ग्रध्राद्या मुनेरप्सरसां गणाः ॥२७॥
दन्द शूकादयः सर्पा राजन् क्रोधवशात्मजाः।
इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानश्च सौरसाः ॥२८॥
अरिष्टायाश्च गन्धर्वाः काष्टाया द्विशफेतराः।

सुता दनोरेक षष्टि स्तेषां प्राधानिकाञ्छृणु ॥२६॥
(भाग० ६।६)

अर्थ—कश्यप ऋषि की पत्नी तिमि के पुत्र हैं, जलचर जन्तु और सरमा के बाघ आदि हिंसक जीव । २६। सुरभि के पुत्र हैं भैंस गाय तथा अन्य दो खुर वाले पशु । ताम्रा की सन्तान हैं बाज, गीध आदि शिकारी पक्षी । मुनि से अप्सरायें उत्पन्न हुईं ।२७। क्रोधवशा के पुत्र हुए साँप, बिच्छू आदि विषैले जीव जन्तु । इला से वृक्ष-लता आदि पृथ्वी में उत्पन्न होने वाली वनस्पतियाँ और सुरसा की सन्तान हुए राक्षस गण ।२८। अरिष्टा से गन्धर्व पैदा हुए और काष्टा से घोड़े आदि एक खुर वाले पशु उत्पन्न हुए । इनके इकसठ पुत्र हुए ॥२६

कश्यप मुनि की पत्नियों से घोड़े, हाथी, सांप, बिच्छू, मछली, मगर, मच्छ बड़े-बड़े पेड़, वनस्पति, मानव, दानव पैदा हो गये होंगे, यह बात सन्तान शास्त्र एवं विज्ञान के नियमों के विरुद्ध होने से सर्वदा अमान्य रहेगी । बुद्धिमान लोग इसे भागवती गपोड़ा मानेंगे ।

—ब्रह्मा की देह से सर्प पैदा हुए—

देहेन वै भोगवता शयानो बहुचिन्तया ।
सर्गेऽनुपचिते क्रोधादुत्स सर्जह तद्वपुः ॥ ४७ ॥
येऽहीयन्तामुतः केशा अहयस्तेऽङ्ग जज्ञिरे ।
सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगोरुकन्धराः ॥४८॥
(भा० ३।२०)

एक बार ब्रह्माजी सृष्टि को बृद्धि न होने के कारण बहुत चिन्तित होकर हाथ पैर आदि अवयवों को फैला कर लेट गये और फिर क्रोधवश उस भोगमय शरीर को त्याग दिया ।४७। उससे जो बाल झड़ कर गिरे, वे अहि हुए तथा उसके हाथ पैर सिकोड़ कर चलने से क्रूर स्वभाव सर्प और नाग हुए, जिनका शरीर फणरूप से कन्धे के पास बहुत फैला होता है ।४८।

भागवत के स्कन्ध ६ के तीसरे अध्याय के श्लोक २८ में सर्पों की उत्पत्ति कश्यप को पत्नी क्रोधवशा के गर्भ से मानी है और इस भा० (३।२०।४७-४८) में सर्पों को उत्पत्ति ब्रह्मा की मृतक देह से लिखी है। दोनों में कौन-सी बात सत्य मानी जावे यह पाठक निर्णय करें। हमारी दृष्टि में तो दोनों ही बेतुकी गप्पें हैं। ब्रह्माजी बार २ मरते रहते हैं, पर उनके बार २ जन्म लेने का कोई वर्णन नहीं मिलता है। यह भी तमाशे की बात है।

—जरासन्ध का जन्म दो खण्डों में—

अन्यस्यां चापिभार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ।।७।।
ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभि सन्धते ।
जीवजीवेति क्रीडन्त्या जरासन्धोऽभवत् सुतः ।।८।।

(भा० ९।२२)

अर्थ—बृहद्रथ की दूसरी पत्नी के गर्भ से एक शरीर के दो टुकड़े उत्पन्न हुए ।।७।। उन्हें माता ने बाहर फिकवादिया। तब जरा नाम की राक्षसी ने जियो-जियो इस प्रकार कह कर खेल-खेल में उन दोनों टुकड़ों को जोड़ दिया। उसी जुड़े हुए बालक का नाम जरासन्ध हुआ ।८।

एक गर्भ के दो खण्डों में पैदा होना, दोनों को जोड़ कर बालक बना देना, क्या कम मनोरंजक गपोड़ा है ?

—मूंज पर वीर्यपात से लड़का लड़की जन्मे—

तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेद विशारदः ।
शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात् किल ॥३५॥
शरस्तम्वेऽपतद् रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ।
तद्दृष्टवा कृपया गृहणाच्छन्तनुमृगयां चरन् ॥
कृपः कुमारः कन्यां च द्रोण पत्न्यभवत् कृपी ॥३६॥

(भा० ९।२१)

अर्थ—शतानन्द का पुत्र सत्यधृति था, वह धनुर्वेद के में अत्यन्त निपुण था। सत्यधृति के पुत्र का नाम शरद्वान था। एक दिन उर्वशी अप्सरा को देखने से शरद्वान का वीर्य मूंज पर गिर पड़ा, उससे एक शुभ लक्षण वाले पुत्र और पुत्री का जन्म हुआ। राजा शान्तनु की उस पर दृष्टि पड़ गयी, क्यों कि वे उधर शिकार खेलने के लिये गये हुए थे। उन्होंने दयावश दोनों को उठा लिया। उनमें जो पुत्र था उसका नाम कृपाचार्य हुआ और जो कन्या थी उसका नाम कृपी हुआ। यही कृपी द्रोणाचार्य की पत्नी हुई ॥३५-३६॥

पता नहीं उस युग के लोग क्या सभी प्रमेह के रोगी होते थे जो स्त्री को देखते ही उनका शुक्रपात हो जाता था। सती और पार्वती को देखकर ब्रह्मा का शुक्रपात हुआ। व्यास का शुक्रपात होने से अरणीं मन्थन के साथ वीर्य भी मथ गया और उससे शुकदेवजी पैदा हो गये। शरद्वान का मूंज पर शुक्रपात हो गया और तत्काल दो बच्चे पैदा हो गये। वह

वीर्य न सूखा और सड़ा। बिना उसमें रज के मिले कैसे जमीन पर बच्चे बन गये, इस विज्ञान को पौराणिक पंडितों को परीक्षण करके प्रमाणित करना चाहिये। यह भी एक गपोड़ा है।

—दिति का १०० वर्ष तक गर्भ धारण—

प्रजा पत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः।
दधार वर्षाणि शतं शंकमाना सुरार्दनात् ॥१॥

(भा० ३।१५)

पुत्र द्वारा दूसरों के तेज को हरने की आशंका से दिति ने कश्यप के वीर्य को सौ वर्ष तक अपने गर्भ में ही धारण किये रखा। उसे बाहर निकलने ही नहीं दिया।

इस प्रकार के अवैज्ञानिक गपोड़े कठिनाई से ही अन्यत्र देखने को मिलते हैं। भागवत पुराण गपोड़ों की दृष्टि से शेखचिल्ली की किसी भी पुस्तक से कम नहीं है।

—शंकर की अरबों खरबों नारी सेविकायें—

इलावृत्ते तु भगवान् भव एक एव पुमान्न ह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञो यत्प्रवेक्षतः स्त्रीभावस्तत्पश्चाद्वक्ष्यामि ॥१५॥ भवानी नाथैः स्त्री गणार्बुद सहस्रैः रवरुध्यमानो... ॥१६॥

(भा० ५।१७)

इलावृत वर्ष में एक मात्र भगवान् शंकर ही पुरुष हैं। श्री पार्वतीजी के शाप को जानने वाला कोई दूसरा पुरुष वहां प्रवेश नहीं करता है। क्योंकि वहां जो भी जाता है तुरन्त स्त्री बन जाता है। वहां पार्वती और उनकी अरबों खरबों दासियों से सेवित भगवान शंकर रहते हैं।

इस पृथ्वी की २।। अरब की मानव जन संख्या में आधी भी स्त्रियां नहीं हैं। परन्तु भागवत पुराण के गप्प लेखक ने अकेले शंकर के लिये केवल इलावृत वर्ष में जो कि हिमालय का एक स्थान है अरब-खरबों औरतें शंकर की सेवा को पैदा करदी हैं। मजे की बात यह है मर्द केवल एक शंकर है और उसके क्रीड़ा बिहार (तफरीह) के लिये औरतें अरबों-खरबों वहां रहती हैं। कौन जाने फिर भी शिवजी की स्त्री संग से तृप्ति हो पाती है या नहीं।

—कर्ण का जन्म—

साऽऽप दुर्वाससो विदयां देवहूतीं प्रतोषितात्।
तस्यावीर्य परीक्षार्थं मा जुहाव रविंशुचिम् ॥३२॥
तदैवो पागतं देवं वीक्ष्य विस्मितमानसा।
प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥३३
अमोघं दर्शनं देवि आधित्से त्वयि चात्मजम्।
योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताहं से सुमध्यमे ॥३४॥
इति तस्यां सआधाय गर्भं सूर्यो दिवंगतः।
सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इवभास्करः ॥३५॥
तंसा त्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य विभ्यती ॥३६॥

(भा० ६।२४)

अर्थ—पृथा (कुन्ती) ने दुर्वासा से देवताओं को बुलाने की विद्या सीख ली। एक बार विद्या की परीक्षा लेने के लिये प्रथा ने सूर्य देव का आह्वान किया ॥३२॥ तत्काल सूर्यदेव वहां आ गये। उनको देखकर प्रथा विस्मित हुई। उसने कहा—भगवन्! मुझे क्षमा करें। मैंने तो परीक्षा के लिए ही इस विद्या

का प्रयोग किया था ॥३३॥ सूर्य ने कहा देवी ! मेरा दर्शन निष्फल नहीं जाता। अब में हे सुन्दरी ! तुझ से एक पुत्र उत्पन्न करना चाहता हूँ। हां, अवश्य ही तुम्हारी योनि दूषित न हो, इसका उपाय मैं कर दूंगा ॥३४॥ यह कहकर सूर्य भगवान् ने कुन्ती के गर्भाधान कर डाला और उसके बाद वे स्वर्ग चले गए। उसी समय कुन्ती के अति तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हो गया जो दूसरे सूर्य के समान तेजस्वी था ॥ २५ ॥ कुन्ती लोक लाज से डर गई। उसने दुःख के साथ उस बालक को नदी के जल में छोड़ दिया ॥३६॥

भागवतकार ने इस कथा को गढ़ कर कुन्ती को व्यभिचारिणी और सूर्य को व्यभिचारी घोषित किया है। संभोग से सतीच्छद नष्ट होने पर उसे ठीक करने को क्या सूर्यदेव कोई मरहम लगा गए थे। जब पुरुषसंग हो गया तो योनि दूषित हो ही जाती है। फिर कुमारीपना कहाँ रह जाता है। भागवतकार कुन्ती को परपुरुषगामी भी बताता है और उसे कुमारी भी रखना चाहता है, कैसी मजाक की गई है।

—राजा युवनाश्व के गर्भ रह गया—

युवनाश्वोऽभवत् तस्य सोऽन पत्यो वनं गतः ॥२५॥
भार्याशतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः ।
इष्टिं स्म वर्तयाञ्चक्रुरैन्द्रीं ते सुसमाहिताः ॥२६॥
राजातद् यज्ञ सदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः ।
दृष्टवा शयानान् विप्रांस्तान् पपौ मन्त्र जलं स्वयम् ॥२७
उत्थितास्ते निशम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो ।
पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम् ॥२८॥

ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् ।
युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह ॥३०॥

(भा० ९।६)

अर्थ—राजा युवनाश्व पैदा हुआ। उसके सन्तान नहीं थी। वह अपनी सौ रानियों को लेकर बन में चला गया ॥२५॥ ऋषियों ने कृपा करके इन्द्र देवता का उससे यज्ञ कराया।२६। एक रात्रि को युवनाश्व को प्यास लगी। वह यज्ञशाला में गया। ऋषि लोग सो रहे थे। तब जल मिलने का कोई उपाय न देख उसने मंत्र से अभिमन्त्रित जल ही पी लिया ॥२७॥ जब प्रातः काल ऋषि लोग उठे तो उन्होंने यज्ञ-कलश में वह जल नहीं देखा। उन लोगों ने पूछा यह किसका काम है। पुत्र उत्पन्न करने वाला जल किसने पी लिया ॥२८॥ इसके बाद प्रसव का समय आने पर राजा युवनाश्व की दाहिनी कोख फाड़कर उसके एक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३०॥ (उसका नाम मान्धाता था।)

बुद्धिमानों की दृष्टि में यह भी एक भागवती गपोड़ा माना जावेगा। क्योंकि बिना गर्भाशय के गर्भ रहना व विकसित होना, केवल जल से गर्भ रह जाना आदि पौराणिक गप्पाष्टक ही है। भागवतकार को यह भी खोल देना था कि राजा युवानाश्व के शरीर में गर्भाधानार्थ मैथुन कर्म किसने व कैसे किया था जिससे उसे गर्भ रहा था ? संभव है यह परोपकार भागवतकार किसी सूतजी ने कर दिया हो।

—मरुद्गणों की उत्पत्ति—

कश्यप की पत्नी दिति गर्भवती थी। एक रात को सो रही थी तो इन्द्र ने अवसर पाकर उस अपनी मौसी के गर्भाशय में प्रवेश किया—

दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमायया ॥६१॥

चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनक प्रभम् ।
रुदन्तं सप्त धैकैकं मा रोदीरिति तान पुनः ॥६२॥

ते तमूचुः पाट्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयो नृप ।
नो जिघांससि किमिन्द्रभ्रातरो मरुतस्तव ॥६३॥

न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकम्पया ॥६५॥

(भा० ६।१८)

अर्थ—इन्द्र दिति के गर्भ में प्रविष्ट हो गया ।६१। वहाँ जाकर उसने स्वर्ण के समान चमकते हुए गर्भ के वज्र से सात खण्ड कर दिए। जब वह गर्भ रोने लगा, तब उन्होंने 'मत रो' यह कह कर सात टुकड़ों में से प्रत्येक के सात-सात टुकड़े और भी कर दिये ।६२। जब इन्द्र उनके टुकड़े-टुकड़े करने लगे, तब उन सबों ने हाथ जोड़ कर इन्द्र से कहा—'देवराज ! तुम हमें क्यों मार रहे हो ? हम तो तुम्हारे भाई मरुद्गण हैं' ।६३। भगवान् की कृपा से दिति का वह गर्भ ४९ टुकड़े हो जाने पर भी मरा नहीं ।६५।

वज्र जैसा भयानक अस्त्र लेकर इन्द्र अपनी खास मौसी दिति के गर्भाशय में घुस गए और एक गर्भ के ४९ खण्ड कर डाले। फिर सभी खण्डों के पृथक-पृथक हाथ पैर सहित पूरे अङ्ग वाले उनञ्चास जीवित बालक बन गए । यह असम्भव गपोड़ा भागवत को गप्प पुराण सिद्ध करता है। पता नहीं वैष्णवो विद्वान् इन शेखचिल्ली जैसी गप्पों पर कैसे विश्वास करते हैं।

गर्भ परिवर्तन

देवकी सातवीं बार जब गर्भवती हुई तो विष्णु ने योग माया को आदेश दिया—

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ।
तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ॥८॥
गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योग निद्रया ।
अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौराविचुक्रुशुः ॥१५॥
(भा० १०।२)

अर्थ—भगवान् विष्णु ने कहा—इस समय मेरा वह शेष नाम का अंश देवकी के उदर में गर्भ रूप से स्थित है। उसे वहाँ से निकाल कर तुम रोहिणी के गर्भाशय में रख दो ।८। जब योगमाया ने देवकी का गर्भ ले जाकर रोहिणी के उदर में रख दिया, तब पुरवासी बड़े शोक के साथ कहने लगे 'हाय, विचारी देवकी का यह गर्भ तो नष्ट ही हो गया ।१५।

एक स्त्री के पेट में से बिना आपरेशन के गर्भ निकाल कर दूसरी स्त्री के दूरस्थ स्थान पर गर्भाशय में प्रविष्ट किया जा सके और दोनों में से किसी भी स्त्री को पता तक न लगे कि गर्भ कब निकल गया और कब अन्दर घुसेड़ दिया गया, यह शेखचिल्ली का गपोड़ा नहीं तो क्या है ? भागवत पुराण की यही शान है कि उसको गल्पें नमूने को तथा इनाम पाने के योग्य होती हैं।

शशबिन्दु के दस हजार औरतें व एक अरब बेटे थे

तस्यपत्नी सहस्त्राणां दशानां सुमहायशाः ॥३२॥

दश लक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्व जीजनत् ।
तेषां तु षट प्रधानानां प्रथुश्रवस आत्मजः ॥३३॥
(भा० ६।२३)

अर्थ—यशस्वी राजा शशबिन्दु के दस हजार पत्नियां थीं ।३२। उनमें से एक-एक के लाख-लाख सन्तान हुई थीं । इस प्रकार उसके सौ करोड़ (एक अरब) बेटे थे । उनमें पृथुश्रवा आदि छः पुत्र प्रधान थे ॥३३॥

विश्व का कोई गपोड़े बाज भागवत के इस गपोड़े के जोड़ का गपोड़ा नहीं पेश कर सकता है । विश्व का कोई भी व्यक्ति अपनी दस हजार पत्नियों से सौ करोड़ पुत्र नहीं पैदा करा सका है । शेखचिल्ली लोगों के गप्प सम्मेलन में भागवत को प्रथम इनाम मिलेगा यह निश्चय है ।

तीन करोड़ अठ्ठासी लाख अध्यापक

तिस्र कोट्यः सहस्राणामष्टा शीति शतानि च ।
आसन् यदुकुलाचार्याः कुमाराणा मिति श्रुतम् ॥४१॥
(भा० १०।६०)

शुकदेवजी कहते हैं कि मैंने सुना है कि यदुवंश के बालकों की शिक्षा के लिए तीन करोड़ अट्ठासी लाख अध्यापक रहते थे ।४१।

एक नील सैनिक उग्रसेन के थे

यत्रायुतानाम युत लक्षेणास्ते स आहुकः ॥४२॥
(भा० १०।६०)

राजा उग्रसेन के एक नील सैनिक थे ।

भागवतकार के इन गपोड़ों पर यदि कोई हिसाब उनके बैठने-रहने आदि के लिये कितनो भूमि चाहिये, इसका लगावे तो पृथ्वी भर में इतने आदमियों को सोने के लिये खाटें बिछाने को जगह नहीं मिलेगी। भोजन सामग्री तो उपलब्ध ही नहीं हो सकेगी। पानी पीने समुद्र सूख जावेंगे। क्या अब भी किसी को भागवत के गप्प पुराण होने में कुछ सन्देह हो सकता है।

कालयवन की सेना

रुरोध मथुरा मेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभः ॥४५॥

(भा० १०।५०)

कालयवन ने तीन करोड़ सैनिक लेकर मथुरा को घेर लिया।

सारी पृथ्वी के देशों के पास मिला कर भी तीन करोड़ सैनिक आज नहीं हैं। तब मथुरा जैसे छोटे से शहर को घेरने को तीन करोड़ सैनिक बताना यह चण्डूखाने की गल्प नहीं तो और क्या मानी जावेगी।

पूतना का शरीर छः कोस का था

पतमानोऽपितद्देह स्त्रि गव्यूत्यन्तर द्रुमान्।
चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत् तदद्भुतम् ॥१४॥

(भा० १०।६)

पूतना का शरीर गिरने से छः कोस के वृक्षादि कुचल कर नष्ट हो गये। यह बड़ो अद्भुत बात हुई।

छः कोस के शरीर की लम्बी पूतना नन्द बाबा के घर में घुस गई। कृष्ण को उठा लिया। गाँव में घूमती रही यह कैसी विचित्र बात है। ऐसा प्रतीत होता है कि भागवतकार

कोई शराबी या भङ्गड़ी व्यक्ति रहा होगा जो नशे में अनर्गल गल्पें लिखता चला गया है।

बलराम का हस्तिनापुर नगर उखाड़ना

गृहीत्वा हल मुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥४०॥
लाङ्गलाग्रेण नगर मुद्विदार्य गजाह्वयम् ।
विचकर्ष स गङ्गायाम् प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥४१॥
जलयान मिवाघूर्णं गङ्गायां नगरं पतत् ।
आकृष्यमाण मालोक्य कौरवा जात सम्भ्रमाः ॥४२॥

(भाग० १०।६८)

अर्थ--बलरामजी अपना हल लेकर खड़े हो गये मानो त्रिलोकी को भस्म कर देंगे। ४०। उन्होंने उसकी नोक से बार-बार चोट करके हस्तिनापुर शहर को उखाड़ लिया, और उसे डुबोने के लिए बड़े क्रोध से गङ्गाजी की ओर खींचने लगे।४१। हल से खींचने पर हस्तिनापुर नगर इस प्रकार कांपने लगा जैसे जल में नाव डगमगाती है। जब कौरवों ने देखा कि हमारा नगर तो गंगाजी में गिर रहा है तो वे घबड़ा उठे।४२।

हस्तिनापुर नगर जो कि कौरवों की राजधानी थी उसे इस भंगड़ी भागवत बनाने वाले ने शायद तुलसी का पौधा समझा होगा और वहाँ के निवासियों को पौधे पर बैठने वाले मक्खी मच्छर समझ लिया होगा जो विशाल नगर को हलकी नोंक से तुलसी के पौधे को तरह बलराम ने उखाड़ लिया होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नशेबाज यह समझ बैठा था कि भागवत

पढ़ने वाले सभी बुद्ध हैं । जो चाहो बेबकूफी की बात लिख मारो । कोई समझने वाला तो होगा नहीं । वैष्णव सम्प्रदाय के चश्मे को लगा लेने पर फिर सभी गल्पें सत्य ही मालूम पड़ती हैं । साम्प्रदायी लोगों में स्वतन्त्र बुद्धि से सोचने की शक्ति कहाँ होती है ।

—भरतजी गोमूत्र में पका दलिया खाते थे—

गोमूत्र यावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम् ॥३४॥
(भाग० ६।१०)

राम ने सुना कि भरतजी गोमूत्र में पका जौ का दलिया खाते हैं और वल्कल वस्त्र पहिनते हैं । (यह शुकदेव ने कहा है)

क्या भरतजी के लिए पानी का अभाव हो गया था जो गौ, बैल या भैंसे के पेशाब में दलिया पकाकर खाते थे । यह कैसी वाममार्गीय सभ्यता की बात भागवतकार ने लिखदी है जिससे उसके मत का पता लग जाता है । वीर्य या पेशाब पीना खाना यह वाममार्गीय सभ्यता है । इसी के रंग में इस लेखक ने भरतजी को भी रंग देने का प्रयास किया है । और उन्हें भी मूत्रपान या मूत्र भोजन करा दिया है । यह भागवत पुराण वैदिक सभ्यता पर खुला कलंक है ।

—रथ की लीक से समुद्र बने—

राजा प्रियव्रत ने अपना प्रकाशमान रथ आकाश में घुमाया तो—

ये वा उ ह तद्रथ चरणनेमि कृत परिखातास्ते सप्त सिन्धव आसन् यत एव कृताः सप्त भुवो द्वीपाः ॥
(भाग० ५।१।३१)

इस रथ के पहियों की लीक से जो गढ़े पृथ्वी पर बने उनसे सात समुद्र बन गये तथा उनसे पृथ्वी में सात द्वीप हो गये।

भागवत के अनुसार प्रियव्रत का रथ आकाश में सूर्य के साथ-साथ घूमा था तो पृथ्वी पर गढ़े कैसे बन गये ? और वे गढ़े इतने गहरे कैसे हो गये कि मीलों गहरे समुद्र बन गये। वे पहाड़ों में अटके क्यों नहीं ? अब इन सात समुद्रों का विवरण भी देखें।

—सात समुद्रों का हाल—

क्षारो देक्षु रसोद सुरोदघ्रतोद क्षीरोददधि मण्डोद शुद्धोदाः सप्त जलधयः ॥

(भाग० ५।१।३३)

सात समुद्र क्रमशः खारे जल, ईख के रस, शराब, घी, दूध, मट्ठे और मीठे जल से भरे हुए हैं।

वैष्णव पन्थी भागवत भक्तों को उचित है-कि इन विलक्षण समुद्रों की खोज करके भागवत की इस ऊट-पटांग गल्प को सत्य प्रमाणित करें ताकि पृथ्वी के लोगों को घी सस्ता मिल सके, ईख के रस से चीनी सस्ती बनाई जा सके, दूध, दही, की संसार को सुविधा हो सके। वैष्णव पण्डित लोग इन भागवतीय समुद्रों को तलाश करके संसार का कल्याण करने का कष्ट करें। अन्यथा लोग समझ लेंगे कि यह बच्चों को बहलाने की मूर्खता पूर्ण कल्पना मात्र है।

गज ग्राह का युद्ध हजार साल चला

नियुध्यतोरेवमिभेन्द्र नक्रयो
विकर्षतोरन्तरतो बहिर्मिथः ।
समाः सहस्रं व्यगमन् महीपते
सप्राणयौश्चित्र ममंसतामराः ॥२६॥

(भाग० ८।२)

अर्थ—गजेन्द्र और ग्राह लड़ रहे थे। दोनों एक दूसरे को अपनी ओर खींचते थे। दोनों को लड़ते-लड़ते एक हजार वर्ष बीत गये, दोनों ही जीवित रहे यह देखकर देवता भी आश्चर्य चकित हो गये।

एक हजार साल तक बिना खाना पानी के निरन्तर दोनों हाथी और मगर लड़ते रहे, फिर भी जिन्दा बने रहे। यह कोरी गल्प नहीं है तो क्या है। इतने दिनों तक विष्णुजी कहां सोते रहे जो हजार साल के बाद गज को बचाने को तशरीफ लेकर आये थे। विचारशील लोगों की दृष्टि में यह भी भंगड़ियों जैसी गल्प ही है।

विलक्षण भूगोल वर्णन

जम्बूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाण विस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जम्बवाख्येन लवणो दधिरपि ततो द्विगुण विशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथापरिखावाह्योपवनेन ।२। प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसो देना वृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुण विशालः समानेन सुरो देनावृतः परिवृङ्क्ते ।७।एवं सुरो दाद्व हिस्तद्

द्विगुणः समानेनावृतो घृतो देन यथा पूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन् कुशस्तम्बो देव कृतस्तद्द्वीपाख्या करो ज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति । १३ । तथा घृतोदाद्वहिः क्रौञ्चद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उप क्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चो नाम पर्वत राजो द्वीप नाम निर्व र्तक आस्ते।१८। एवं पुरस्ता त्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाक द्वीपो द्वात्रिंशल्लक्ष योजना यामः समानेन च दधिमण्डो देन परीतोयस्मिन् शाको नाममही रुहः स्वक्षेत्र व्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगन्धस्तं द्वीप मनुवासयति ॥२४॥ एव मेव दधि मण्डोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः समन्तत उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बहिरावृतः ।२६। तदद्वीपमध्ये मानसोत्तर नामैक एवार्वाचीन पराचीन वर्ष योर्मर्यादा चलोऽयुत योजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानामिन्द्रादीनां यदुपरिष्टा त्सूर्य रथस्य मेरुं परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानां अहोरात्राभ्यांपरिभ्रमति ।३०। विचिन्तितः कविभिः स तु पंचा शत्कोटि गणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोका-लोकाचलः ॥३८॥

(भाग० ५ । २०)

अर्थ—जिस प्रकार मेरु पर्वत जम्बूद्वीप से घिरा है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप भी अपने समान परिमाण व विस्तार वाले खारे जल के समुद्र से वेष्ठित है ।२। प्लक्ष द्वीप अपने ही विस्तार वाले ईख के रसके समुद्र से घिरा है। उससे आगे उससे दुगने परिमाण वाला शाल्मरूपी द्वीप है। जो समान विस्तार वाले शराब के सागर से घिरा है ।७। इसी प्रकार शराब के समुद्र से आगे उससे दूने परिमाण वाला कुश द्वीप है। यह भी अपने समान विस्तार वाले घृत के समुद्र से घिरा है। इसमें एक कुशों का झाड़ है उसी पर से इस द्वीप का नाम निश्चित हुआ है। वह दूसरे अग्निदेव के समान अपनी कोमल शिखाओं को कांति से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करता है ।१३। घृत के समुद्र से आगे उससे दूने परिमाण वाला क्रौञ्चद्वीप है। जिस प्रकार कुशद्वीप घृत के समुद्र से घिरा है, उसी प्रकार यह अपने ही समान विस्तार वाले दूध के समुद्र से घिरा है। यहाँ क्रौञ्च नाम का एक बड़ा पर्वत है, उसी के कारण इसका नाम क्रौञ्चद्वीप हुआ है। १८। क्षीर सागर से आगे उसके आगे बत्तीस लाख योजन विस्तार वाला शाकद्वीप है जो समान विस्तार वाले मट्ठे के सागर से घिरा हुआ है । इसमें शाक नाम का बहुत बड़ा वृक्ष है उसी पर इसका यह नाम पड़ा है। उसकी मनोहर सुगंधि से सारा द्वीप महकता रहता है ।२४। इसी तरह मट्ठे के समुद्र से आगे उसके चारों ओर उससे दुगुने विस्तार वाला पुष्करद्वीप है। वह चारों ओर समान विस्तार वाले मीठे जल के समुद्र से घिरा है ।२८। उस द्वीप के बीचों बीच उसके पूर्वीय और पश्चिमी भागों की सीमा बनाने वाला मानसोत्तर नाम का पर्वत है। जो दस हजार योजन ऊँचा और उतना ही लम्बा है। इसके ऊपर चारों दिशाओं में इन्द्रादिलो कपालों की चार पुरियां

हैं। इस मेरु पर्वत के चारों ओर घूमने वाले सूर्य के रथ का संवत्सर रूप पहिया देवताओं के दिन और रात घूमा करता है ।३०। विद्वानों के मतानुसार यह समस्त भूगोल पचास करोड़ योजन है । इसका चौथाई भाग (साढ़े बारह करोड़ योजन वाला) यह लोका लोक पर्वत है ।३।।

भूगोल के विद्यार्थी भागवतकार के इस विलक्षण भूगोल विज्ञान पर हंसेंगे। योगेश्वर माने जाने वाले एवं सर्व लोक-लोकान्तरों से गमन करने की शक्ति रखने वाले बताये गये पौराणिक कल्पित शुकदेवजी भी गप्प शिरोमणि ही थे जो भागवत पुराण को पूरा मनोरंजक उपन्यास ही बना गए हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि भागवत रूपी उपन्यास का लेखक भूगोल के बारे में जानकारी बिलकुल नहीं रखता था। उसने अपनी कुशाग्रबुद्धि से भागवत पढ़ने वालों को भ्रमित करने के लिए सारी गल्पें एकान्त में बैठकर गढ़कर भागवत में लिख मारी हैं।

—मत्स्यावतार चार लाख कोस का था—

सोऽनुध्यायतस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे ।
एक श्रङ्गधरो मत्स्योहैमो नियुतयोजनः ।।४४।।
(भा० ८।२४)

अर्थ—सप्तर्षियों के कहने से राजा सत्यवृत ने भगवान का ध्यान किया। उसी समय उस महान समुद्र में मत्स्य के रूप में भगवान प्रगट हुए। मत्स्य भगवान का शरीर स्वर्ण समान देदीप्यमान था और शरीर का विस्तार चार लाख कोस था।

इस सम्पूर्ण पृथ्वी के समुद्रों का विस्तार भी चार लाख कोस का नहीं है तब उसमें इतनी बड़ी मछली कहां उतरी होगी। यह हो सकता है कि भागवत के गल्प लेखक के घर में

धड़े में पड़ी रहती हो। इस प्रकार की मिथ्या बातों के भण्डार भागवत पुराण को कोई थोड़ी-सी अक्ल वाला व्यक्ति भी धर्म-शास्त्र मानने को तैयार नहीं होगा। हां! जिन्होंने अपनी अक्लों पर ताले लगा रखे हैं उनकी बात दूसरी है।

—देवताओं असुरों की विचित्र सवारियां—

उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिदपरे युयुधुः खरैः।
केचिद गौर मृगै ऋक्षै द्वीपि भिर्हरिभिर्भटाः ॥९॥
गृधैः कंङ्कैर्बकैरन्ये श्येन भासैस्तिमिङ्गिलैः।
शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः ॥१०॥
शिवाभिराखुभिः केचित् कृकलासैः शशैर्नरैः।
बस्तैरेके कृष्ण सारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः ॥११॥

(भा० ८।१०)

अर्थ—देवासुर संग्राम में आने वाले देव तथा असुर सैनिकों में कोई-कोई वीर ऊंटों पर, हाथियों पर और गधों पर चढ़कर लड़ रहे थे, तो कोई कोई गौर मृग, भालू, बाघ और सिहों पर ॥९॥ कोई-कोई सैनिक गिद्ध, कंग-बगुला, बाज और भास पक्षियों पर चढ़े हुए थे, तो बहुत से तिमिङ्गिल-मच्छ-शरभ, भैंसे, गेंडे, बैल, नील गाय और जंगली सांडों पर सवार थे ॥१०॥ किसी-किसी ने सियारिन, चूहे, गिरगिट और खरगोशों पर ही सवारी करली थी, तो बहुत से मनुष्य बकरे, कृष्णसार मृग-हंस और सुअरों पर चढ़े थे ॥११॥

इन सवारियों से तो अनुमान होता है कि देवासुर संग्राम जिसका भागवतादि, पुराण बनाने वाले ने ढोल पीट रखा है सर्वथा कल्पित है। क्या मनुष्याकार के देव राक्षसों की सवारी

मछली, चूहा, गिरगिट, खरगोश, बगुला, गिद्ध, बाज आदि भी हो सकते हैं ? और इन विलक्षण सवारियों पर चढ़कर क्या युद्ध भी लड़े जा सकते हैं ? भागवतकार के दिमाग में क्या गोबर भरा था जो उसने ऐसी मूर्खता पूर्ण बातों पर विश्वास करके उन्हें पुराण में लिख मारा है। यह प्रमाण भी भागवत को किसी बुद्धिहीन व्यक्ति की मूर्खतापूर्ण कृति सिद्ध करता है।

—अत्यन्त कामी प्रहलाद—

प्रहलाद उवाच—

नतैन्मस्तव कथासु विकुण्ठनाथ
संप्रोयते दुरित दुष्टम साधु तीव्रम् ।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं
तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामिदीनः ॥३६॥
जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता
शिश्नोऽन्यतस्त्व गुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
घ्रांणोऽन्यतश्चपल दृक् क्व च कर्मशक्ति—
र्बह्व्यः सपत्न्य इवगेह पतिं लुनन्ति ॥४०॥
यन्मैथुनादि गृहमेधि सुखं हि तुच्छं
कण्डूयनेन करयोरिवदुःख दुःखम् ।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहु दुःख भाजः
कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥४५॥

(भा० ७।६)

मा मां प्रलोभयोत्पत्याऽऽसक्तं कामेषुतैर्वरैः ॥

(भा० ७।१०।२)

अर्थ—पांच साल की आयु के बालक प्रहलाद ने कहा—बकुण्ठ नाथ ! मेरा मन पाप वासनाओं से तो कलुषित है ही स्वयं भी अत्यन्त दुष्ट है। मेरा मन कामातुर एवं हर्ष-शोक-भय ऐषणाओं में फँसा रहता है। मैं आपका चिन्तन कैसे करूँ ।।३९।। मेरी जीभ रसों की ओर खींचती है, मेरी उपस्थेन्द्रिय (शिश्न) स्त्रीयों से विषय भोगों की ओर खींचती है, त्वचा स्पर्श की ओर, पेट भोजन की ओर, कान संगीत की ओर, नासिका सुगन्ध की ओर, नेत्र रूप की ओर खींचते रहते हैं। कर्मेन्द्रियां अपने कामों की ओर खींचती हैं। जैसे किसी पुरुष की बहुत-सी पत्नियां उसे अपने-अपने घर में जाने के लिए खींचती हैं ।।४०।। गृहस्थी लोगों को मैथुन में जो आनन्द आता है वह तुच्छ है, जैसे खुजली में खुजलाने पर प्रथम सुख के बाद उसे दुःख मिलता है परन्तु लोग विषयानन्द से तृप्त नहीं होते हैं। धीर पुरुष काम के वेग को खुजली के समान सहन कर लेते हैं ।।४५।। मैं जन्म से ही विषयभोगों में आसक्त हूँ। मुझे प्रलोभन मत दीजिए ।।२।।

भागवत पुराणकार लिखता है कि पाँच साल के बालक ने अपने को कामातुर-विषय भोगों में फँसा हुआ बताया। उसे विषय भोग का इस प्रकार का अनुभव उसकी बात से स्पष्ट होता है जैसा कि प्रौढ़ आयु का भुक्तभोगी गृहस्थ रखता है। क्या पांच साल के बालक का विषय भोगों में स्वानुभव अथवा कामोत्तेजित होना भी सम्भव है ? और यदि यह प्रहलाद के विषय में सत्य वर्णन है तो उसके बारे में सारी कथा कि वह जन्म से प्रभु भक्ति में तन्मय रहता था सर्वथा झूठ सिद्ध हो जावेगी। हमारे विचार से ऊपर का वर्णन बच्चा प्रहलाद का स्वयं कथित वास्तविक न होकर भागवत पुराण रूपी उपन्यास

लिखने वाले का हो सकता है जिसने यह सारा कथानक स्वय गढ़ा है। अन्यथा यह भी प्रहलाद के नाम से एक भागवतो गपोड़ा माना जावेगा।

—बुढ़ापा जवानी की अदला बदली—

यदो तात प्रतीक्षेमां जरां देहि निजं वयः ॥३८॥
माता मह कृतां वत्स न तृप्तो बिषयेष्वहम् ।
वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥३९॥
इति प्रमुदितः पुरुः प्रत्य गृहणाञ्जरां पितुः ।
सोऽपि तद्वयसा कामान् यथा वज्जु जुषे नृप ॥४५॥
एवं वर्ष सहस्राणि मनः षष्ठैर्मनः सुखम् ॥५१॥
(भा० ९।१८)

इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूर वे वयः ।
दत्वा स्वां जरसं तस्मादादे विगत स्पहः ॥२१॥
(९।१९)

अर्थ—राजा ययाति ने अपने पुत्र से कहा–बेटा ! तुम अपनी जवानी मुझे दे दो, और अपने नाना का दिया हुआ मेरा बुढ़ापा स्वयं ले लो। क्योंकि मैं अभी विषय भोगों से तृप्त नहीं हुआ हूँ। ताकि कुछ वर्षों तक मैं और स्त्री का आनन्द भोग लूं ॥ ३८-३९ ॥ इस पर पुरु ने सहर्ष अपने पिता का बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी उसे दे दी। राजा जवानी लेकर पूर्ववत स्त्री विषयों का सेवन करने लगे ॥ ४५ ॥ राजा को विषय भोगों का आनन्द भोगते-भोगते एक हजार वर्ष बीत गये ॥५१॥ राजा ने वैराग्य हो जाने पर अपनी पत्नी से बात

करके अपने पुत्र की जवानी पुत्र को वापिस दे दी और उससे अपना पहिले वाला बुढ़ापा वापिस स्वयं ले लिया ॥२१॥

राजा को अपने बेटे से विषय भोगों की खातिर अपना बुढ़ापा उसे देकर उसकी जवानी लेने की बात करते शर्म भी नहीं आई। कोई भी बाप अपने बेटे से ऐसी बेहूदी बात कहने में संकोच अनुभव करेगा। क्या राजा ययाति भी भागवत-कार की तरह उस के वाममार्गीय सम्प्रदाय का सदस्य था जिसमें मां, बहिन, बेटी-बेटा का भैरवी चक्र में कोई ध्यान नहीं रखा जाता है। क्या बुढ़ापा और जवानी की अदला बदली भी हो सकती है। भागवत बनाने वाले को ऐसी बेतुकी कहानियां गढ़ने और उन्हें भागवत में लिखने से कोई यश नहीं मिल सकता। वह अपने को हास्य का पात्र सिद्ध कर रहा है।

वानप्रस्थी को भयंकर आदेश

केश रोम नखश्म श्रुमलानि जटिलोदधत्।
कमण्डल्वजिने दण्डवल्कलाग्नि परिच्छदान् ॥२१॥

(भा०।७।१२)

अर्थ—बानप्रस्थी सर पर जटा रखे, केश, रोम, नाखून तथा दाढ़ी मूंछ न कटावे। मैल को भी शरीर से अलग न करे। कमण्डल, मृगचर्म, दण्ड, वल्कल वस्त्र और यज्ञ की सामग्री पास रखे।

यदासौ नियमेऽकल्पो जरया जातवेपथुः।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥११॥

(भा० ११।१८)

अर्थ—बानप्रस्था जब अपने नियमों का पालन न कर

सके बुढ़ापे के कारण शरीर काँपने लगे, तब यज्ञाग्नि की भावना करके मुझ में मन लगाकर अग्नि में जल मरे।

उपरोक्त व्यवस्था सर्वथा मूर्खता पूर्ण हैं। शरीर से मैल न उतारना नाखून तक न कटाना घोर दरिद्रोपना है और शरीर से कमजोर हो जाने पर आग में जलकर आत्म हत्या करना महापाप है। वेद ने स्पष्टरूप से लिखा—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये के चात्महनोजनाः ॥

(यजु० ४०)

जो लोग आत्म-हत्या करते हैं वे घोर अन्धकार (दुःखों) को प्राप्त होते हैं।

भागवतकार ने मनुष्यों को आत्म-हत्या करने की व्यवस्था देकर महा पाप का काम किया है।

—ब्रह्मचारी को ग़लत आदेश—

जटिलोऽधौत दद्वासोऽरक्त पीठः कुशान् दधत् ।२३।
नच्छिन्द्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थ गतान्यपि ॥२४॥

(भा० ११।१७)

अर्थ—ब्रह्मचारी जटा रखे, दाँत व वस्त्र न धोवे, रङ्गीन आसन पर न बैठे, कुश धारण करे। कभी नाखून, रोम, बगल और उपस्थेन्द्रिय पर के बाल न काटे।

तात्पर्य यह है कि भागवतकार ब्रह्मचारी को पूरा राक्षस बना देना चाहता है। मैला-कुचैला, लम्बी जटाओं वाला, लम्बे नाखूनों वाला, बगल और उपस्थेन्द्रिय में भी गज़ों लम्बी घास (बाल) रखने वाला, दाँतों पर मैल जमा हो, मुँह व शरीर से दुर्गन्ध आती हो, ऐसे विद्यार्थी को कोई भला स्वच्छता प्रिय

व्यक्ति पास भी नहीं खड़ा होने देगा। क्या ऐसे गन्दे विद्यार्थी भी विद्या अध्ययन के अधिकारी हो सकेंगे ?

—राजा नृग की कथा कोरी गल्प है—

भागवत स्क० १० अ० ६४ में एक कथा पुराणकार ने गढ़ कर लिखी है। उसमें बताया है कि महादानी राजा नृग की गायों में किसी ब्राह्मण की गाय आकर मिल गई। राजा को पता न चला और उसने अन्य गायों के समान उस गाय को एक अन्य ब्राह्मण को दान कर दिया।१६।

कस्य चिद् द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने।
सम्प्रक्ता विदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥१६॥
तांनीयमानां तत्स्वामी दृष्टोवाच ममेतितम्।
ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥१७॥

जब उस गाय को वे ले चले तो उसके असली स्वामी ने कहा कि गाय मेरी है। दूसरे ने कहा मुझे राजा नृग ने दान दी है अतः मेरी है।१७।

इस पर राजा ने गाय के स्वामी को बदले में मूल्य या एक लाख गायें लेने को कहा किन्तु बिना लिये वह चला गया। केवल इसी दोष पर राजा नृग को यमराज ने गिरगिट की योनि में डाल दिया। वह एक कूप में पड़ा था। श्रीकृष्णजी ने उसे निकाल कर पुनः मानव योनि प्रदान कर दी।

इस कथा से स्पष्ट है कि नृग ने न तो ब्राह्मण की गौ चुराई थी और न उसे यह पता था कि वह अन्य की गौ है, जो उसकी गायों में आकर मिल गई है। राजा ने अपनी गौ समझ कर उसे अपनी अन्य गौओं की तरह दान कर दिया। पता लगने पर उसे

बहुत दुःख हुआ और उसने ब्राह्मण को एक के बदले एक लाख गायें लेने को कहा। इससे राजा का कोई भी दोष साबित नहीं होता। यदि दोष माना भी जावे तो राजा के उन कर्मचारियों का होगा जिन्होंने अपनी गायों का हिसाब नहीं रखा। राजा राज कार्य करते हैं। वे गायों को चराने या हजारों गायों को गौ-शालाओं में रोजाना देखने या गिनने अथवा शनाख्त करने नहीं जाया करते हैं। दान के समय उनके आदेश पर नौकर गाय लाते हैं और राजा सङ्कल्प पढ़वा कर दान कर देते हैं। तब राजा के नौकर की गलती पर उसे दण्ड देना चाहिये था न कि राजा नृग को यमराज द्वारा गिरगिट की योनि में डाल देना था। क्या यमराज के यहाँ भी अन्धेर चलता है? क्या इसी अन्याय को यमराज का पौराणिक न्याय माना जाता है? यदि यही न्याय का नमूना है तब अन्याय फिर किसे कहा जावेगा?

वास्तव में यह सारी कहानी ही गल्प है। इसे ब्राह्मणों की श्रेष्ठता दिखाने के लिये गढ़ा गया है। जैसा कि निम्न श्लोक से प्रकट हो रहा है।

श्रीकृष्ण उवाच—

विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यतमामकाः।
घ्नन्तं बहु शपन्तं नमस्कुरुत नित्यशः ॥४१॥
यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः।
तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे सदण्डभाक् ॥४२॥
ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः।
अजानन्त मपिह्येनं नृगं ब्राह्मण गौरिव ॥४३॥

(भा० १०।६४)

अर्थ—श्रीकृष्ण ने कहा, मेरे लोगो ! यदि ब्राह्मण अपराध करे तो भी उससे द्वेष मत करो। वह मार बैठे, गालियाँ या शाप दे दे तो भी उसे सदा नमस्कार किया करो।४१। जैसे मैं सावधानी से तीनों समय ब्राह्मणों को नमस्कार करता हूँ वैसे ही तुम भी किया करो। मेरी इस आज्ञा का उलंघन करने वाले को दण्ड मिलेगा।४२। यदि ब्राह्मण के धन का हरण हो जाय तो वह धन उस हरण कर्ता का पतन कर देगा चाहे अनजान में ही अपहरण क्यों न हुआ हो। जैसे नृग का हुआ था।४३।

स्पष्ट है कि नृग का उपाख्यान सर्वथा फर्जी है। ब्राह्मणों की पूजा कराने के लिये श्रीकृष्ण से इस उपदेश को दिलाने के लिये इस कहानी की रचना की गई है।

—भस्मासुर की गल्प कथा—

वृकासुर ने शिव की भारी तपस्या की। अपने शरीर को काट-काट कर हवन किया। जब सिर को काटने लगा तो शिवजी ने प्रकट होकर वरदान माँगने को कहा। उसने वर माँगा—

'यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियता मिति' ॥२१॥
'ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेर मृतं यथा' ॥२२॥
इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरण लालसः।
सतद्वर परीक्षार्थं शम्भोर्मूर्ध्नि किला सुरः।
स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽविभ्यत् स्वकृताच्छिवः ॥२३॥
तं तथा व्यसनं दृष्ट्वा भगवान् वृजिनार्दनः।
दूरात् प्रत्युदियाद् भूत्वा वटुको योगमायया ॥२७॥

भगवान उवाच—

यदि वस्तत्र विश्रम्भो दानवेन्द्र जगद् गुरौ ।
तर्ह्यङ्गाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥३३॥
भिन्नधीर्विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्य्यधात् ॥३५॥
अथापतद् भिन्न शिरा वज्राहत इव क्षणात् ॥३६॥

(भा० १०।८८)

'जिस जिसके सर पर हाथ रख दूँ वही मर जाय' ।२१। हंसकर शिवजी ने 'ऐसा ही हो' कहकर मानो उसे अमृत पिला दिया ।२२। वृकासुर के मन में इच्छा हुई कि पार्वती को हर लूँ । वह वर की परीक्षा के लिये उन्हीं के सर पर हाथ रखने का उद्योग करने लगा । तब शिवजी अपने ही दिये वरदान से भयभीत होकर भागने लगे ।२३। भगवान विष्णु ने शिवजी को सङ्कट में देखा तो वे ब्रह्मचारी बनकर दूर से धीरे-धीरे उस असुर के पास आने लगे ।२७। उन्होंने उससे कहा 'दानवेन्द्र ! यदि आप शिव को जगद् गुरु मानते हो तो उसके वर की परीक्षा अपना हाथ अपने सिर पर रखकर कर लीजिये ।३३। विस्मृति हो जाने से उस दुर्बुद्धि ने भूल कर अपना हाथ निज सिर पर रख लिया ।३५। बस उसी क्षण उसका सर फट गया और वह वृकासुर (भस्मासुर) मर गया ।३६।

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी ड्रामा में खेलने के लिये भागवतकार ने यह कहानी गढ़ी थी । क्या कोई भी प्राणी अपना शरीर काट-काट कर हवन में चढ़ा सकता है ? कदापि नहीं । यह कहानी कार की केवल कल्पना है । शंकरजो वर देते हैं और डर कर भागते फिरते हैं । क्या तमाशा है । वहीं अन्तर्ध्यान क्यों न हो गये, क्यों भागते फिरे ? विष्णुजी नाटक के पात्र के समान

तत्काल ब्रह्मचारी बनकर आ गये और वृकासुर भी कोई भंगड़ी व्यक्ति होगा जो उनके कहने में आ गया और अपने ही सर पर हाथ रखकर भस्म हो गया। यह कहानी बच्चों का मन बहलाने एवं ड्रामा खेलने वालों के लिये उत्तम है। पर वास्तव में यह भागवत की गल्प ही है।

—नीलकण्ठ शिवजी—

भागवत में एक मनोरंजक गपोड़ा लिखा है। देवता और असुरों ने मिलकर किसी मन्दराचल पहाड़ को उखाड़ कर समुद्र में डाल लिया। बासुकी साँप को उसके चारों ओर लपेटा गया और जैसे दही में मथानी रई डाल कर उसे मथकर घी निकालते हैं, वैसे ही उस सांप को एक ओर देवता दूसरी ओर असुर मिलकर खींच-खींच कर पहाड़ रूपी मथानी से समुद्र को बिलोने (मथने) लगे। तो उसमें १४ रत्न निकले उसी में हलाहल विष भी निकला। उसके तेज से प्रजा परेशान होने लगी तो शिवजी ने उस कालकूट विष को पान कर लिया—

ततः कर तलीकृत्य व्यापि हलाहलं विषम्।
अभक्षयन् महादेव कृपया भूत भावनः ॥४२॥
यच्चकार गले नीलं तच्च साधो विभूषणम् ॥४३॥

(भा० ८।७)

अर्थ—कृपालु शंकर ने तीक्ष्ण हलाहल विष को अपनी हथेली पर रखकर भक्षण कर लिया ।४२। उससे उनका गला नीला पड़ गया। वह उनके लिये गले का भूषण बन गया ।४३।

हमारी दृष्टि में यह कहानी केवल गल्प है। मन्दराचल पहाड़ को उखाड़ कर समुद्र में ले जाना और को मथ डालना ही गल्प है। न पहाड़ उखाड़े जा सकते हैं और न एक साँप को पहाड़ के चारों ओर तीन या चार चक्करों में लपेटा जा सकता है।

न सैकड़ों मील लम्बा कोई सर्प हो सकता है जिसे रस्सी की तरह लपेटा गया हो। चिकनी लकड़ी की रई (मथानी) पर रस्सी चिकनी होने से रई घूमती है। ऊबड़खाबड़ पहाड़ को रस्सी या सर्प लपेट कर मथानी की तरह नहीं घुमाया जा सकता है। अतः समुद्र मन्थन का कहानी बुद्धि विरुद्ध है।

शिवजी ने विष पान किया तो वह गले में क्यों अटका रह गया ? पेट में क्यों नहीं उतारा क्या ? इसमें क्या रहस्य छिपा है जो भागवतकार ने नहीं खोला।

भागवतकार लिखता है कि विष पान से गला नीला पड़ गया था। परन्तु महाभारत कार ने दो कारण इसके बतलाये हैं—

त्रिपुरवधार्थं दीक्षा मुपगतस्य रुद्रस्य उशनसा जटाः शिरस उत्कृत्य प्रयुक्तास्ततः प्रादुर्भूता भुजगा स्तैरस्य भुजगैः पीड्यमानः कण्ठो नीलता मुपगतः पूर्वे च मन्वन्तरे स्वायम्भुवे नारायण हस्त ग्रहणन्नीलकण्ठ मेव च ॥२६॥

(महा० शान्ति पर्व अ० ३४२)

अर्थ—जिस समय रुद्र ने त्रिपुर वासी दैत्यों के बध के लिये दीक्षा ली थी, उस समय शुक्राचार्य ने अपने मस्तक से जटायें उखाड़ कर उन्हीं का शिवजी पर प्रयोग किया था। उन जटाओं से बहुत से सर्प पैदा हुए, जिन्होंने रुद्रदेव के गले में काटना प्रारम्भ किया। इससे उनका गला नीला हो गया। तथा पहिले स्वाम्भुव मन्वन्तर में नारायण ने अपने हाथ से उनका गला पकड़ा था, इसलिए भी कण्ठ का रङ्ग नीला हो जाने से वे रुद्र नीलकण्ठ हो गये।२६।

शिवजी के नीलकण्ठ बनने की उपरोक्त तीन कहानियों में से कौन सी ठीक मानी जावे ? भागवत की कल्पना की अपेक्षा महाभारत की दूसरी कल्पना कुछ अधिक ठीक सी लगती है। वास्तव में तीनों ही कल्पनायें मिथ्या हैं। हो सकता है कि गले में सर्प लपेटे रहने से मैल जम जाने या रगड़ से खून इकट्ठा हो जाने से गला नीला सा लगता हो। पर यह सब निराधार कल्पनायें मात्र ही हैं।

—ब्रह्मा की नाक से बाराह अवतार जन्मा—

इत्यमिध्यायतो नासा विवरात्सह सानघ।
बराह तोको निरगादङ्गुष्ठ परिमाणकः ॥१८॥
तस्याभिपश्यतः स्वस्थः क्षणेन किल भारत।
गजमात्रः प्रववृधे तदद् भुतमभून्महत् ॥१९॥

(भा० ३।१३)

अर्थ—ब्रह्माजी सोच रहे थे कि उनकी नाक में से एक असुर का बच्चा निकल पड़ा जो अँगूठे के बराबर था ।१८। देखते ही देखते क्षण भर में वह हाथी के बराबर बड़ा हो गया ।१९।

ब्रह्माजी की नाक में क्या कोई बच्चे पैदा करने की फैक्ट्री चालू थी ? उनके सर के बालों से सर्प पैदा हो गये, नाक में से बाराह अवतार पैदा हो गया, क्या यह भी कोई उत्पत्ति का प्रकार है ? इस कहानी का बाजीगरी के खेल से अधिक महत्व नहीं है। बच्चों का 'दिल बहलाने को ख्याला अच्छा है।'

—रुद्र (शिवजी) की उत्पत्ति ब्रह्मा की भ्रकुटी से—

सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः।
क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुमुप चक्रमे ॥६॥

धिया निग्रह्य माणोऽपि भ्रुवोर्मध्या त्प्रजापते ।
सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नील लोहितः ॥७॥
(भा० ३।१२)

अर्थ—ब्रह्मा ने देखा कि मेरे पुत्र मेरा तिरस्कार कर रहे हैं तो उन्हें बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने उसे रोकने का बुद्धि पूर्वक यत्न किया। किन्तु उसी समय उनकी भ्रकुटी से नील-लोहित रङ्ग का बालक रुद्र (शिवजी) पैदा हो गये ।६-७।

ब्रह्माजी को पौराणिक ग्रन्थकारों ने और उनमें भी मुख्यतया भागवतकार ने एक उत्तम बाजीगर बना दिया है। नाक में से बाराह अवतार, भ्रकुटी में से शिवजी, जाँघों में से असुर आदि पैदा करने वाला ब्रह्मा यदि आज आ जावे तो उससे परमाणु बम, हाइड्रोजन बम भी ऐसे ही बनवा लिये जावें, या उनके प्रतिकार का कोई शस्त्र बनवा लिया जावे ताकि देश की सुरक्षा में मदद मिले। ये सारी की सारी शेखचिल्ली की मनो-रञ्जक कल्पनायें हैं जिनको पढ़कर एवं उन पर विश्वास करके भोले वैष्णव पन्थी लोग अपना मन बहलाया करते हैं। बहुधा उपन्यासों का महत्व ऐसी ही मनोरञ्जक गल्पों से ही लेखक बढ़ाया करते हैं। तब भागवतकार इस नियम का पालन क्यों न करता ? उसने भी गल्पों की सृष्टि करके देवता रूपी पात्रों के आधार पर रोचक उपन्यास रूपी भागवत की रचना की है।

—ब्रह्मा का पुत्रीगमन—

मैत्रेय उवाच—

वाचं दुहितरंत न्वीं स्वयम्भूर्हरतीं मनः ।
अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इतिनः श्रुतम् ॥२८॥

तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः ।
मरीचिमुख्या मुनयो विश्रम्भात्प्रत्य बोधयन् ॥२९॥
नैतत्पूर्वैः कृतंत्वद्य न करिष्यन्ति चापरे ।
यत्त्वं दुहितरं गच्छेर निगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥३०॥
(भा० ३।१२)

अर्थ—ब्रह्मा की पुत्री सरस्वती बड़ी सुन्दरी कोमलाङ्गी थी। उसे देखकर ब्रह्माजी स्वयं कामान्ध हो गये। यद्यपि वह अकामी थी, हमने ऐसा सुना है।२८। ऐसा पाप करते देख मरीचि आदि ब्रह्मा के पुत्रों ने उन्हें समझाया।२९। पिताजी ! आपसे पहिले भी न तो किसी ने ऐसा पुत्री गमन का पाप किया है और न आगे कोई करेगा।३०।

भागवत में आगे लिखा है कि ब्रह्मा ने लज्जित होकर अपना शरीर त्याग दिया अर्थात् आत्म-हत्या कर डाली। किन्तु मत्स्य पुराण अ० ३ में लिखा है कि ब्रह्माजी ने अपने (विरोधी) पुत्रों के अन्यत्र भेज दिया और अपनी सुन्दरी पुत्री के साथ १०० दिव्य वर्षों तक बेखटके विषय भोग करने से उनके मनु नाम का पुत्र पैदा हुआ था। (यह प्रमाण पूरा देखें हमारी पुस्तक 'पुराण किसने बनाये' में पृष्ठ ४३ पर)।

श्री भागवत पुराण हो, चाहे मत्स्य पुराण हो, दोनों ही पुराणों ने ब्रह्माजी के पावन चरित्र को कलङ्कित करने के लिये उपरोक्त कथा गढ़ी है। ब्रह्माजी को वेद कर्त्ता, पुराण का आदि कर्ता लिखा गया है। इन्हीं को सृष्टि कर्ता तथा महादेवजी का पिता बताया गया है। ऐसे महान् विभूति को पुत्री गमन का भयङ्कर लाञ्छन लगाना यह बताता है कि वाम मार्गीय सम्प्रदाय अथवा दक्षिण के रावण पन्थी आचार-हीन सम्प्रदाय के विचारों

से प्रभावित किसी व्यक्ति ने इस घटना को इसलिए गढ़ कर पुराणों में प्रविष्ट किया है ताकि पुत्री गमन को कोई अधिक पाप न मानें। क्योंकि जब देवताओं में प्रधान ब्रह्मा ही ने इस कर्म को पाप नहीं माना तो उसे पाप मानना पौराणिक भक्तों को उचित न होगा। 'महा जनोयेन गतः स पन्थाः' इसमें उदाहरण धर्म के विषय में लिखा हो मिलता है।

देश में व्यभिचार प्रचार के लिये पुराण ही उत्तरदायी हैं। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम इस बेहूदी बात को कोरी गल्प मानते हैं। तथा इस प्रकार के पुराण साहित्य को सर्वथा वहिष्कार के योग्य घोषित करते हैं।

पृथ्वी से सूर्य निकट व चन्द्रमा दूर है

सूर्य की किरणों से चन्द्रमा एक लाख योजन ऊपर है।८। चन्द्रमा से तीन लाख योजन ऊपर अभिजित सहित २८ नक्षत्र हैं।११। इन से दो लाख योजन ऊपर शुक्र दिखाई देता है।१२। शुक्र से दो लाख योजन ऊपर बुद्ध है। इससे भी दो लाख योजन ऊपर मङ्गल है।१४। इससे दो लाख योजन ऊपर वृहस्पति है।१५। वृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर दिखाई देता है।१६। इन से ११ लाख योजन ऊपर सप्तर्षिगण दिखाई देते हैं॥१७॥ (भागवत ५।२२)।

यह सारी अटकलें ग्रहों को दूरी की वर्तमान खगोल विज्ञान के सामने मिथ्या कल्पनायें स्पष्ट हैं। सब से अधिक मनोरञ्जक गल्प यह है कि पृथ्वी के सूर्य तो निकट है और सूर्य के दो लाख योजन ऊपर चन्द्रमा है। यदि ऐसा होता तो सूर्य ग्रहण तो कभी पड़ ही नहीं सकता था। सूर्य हमारी पृथ्वी से नौ करोड़ तीस लाख मील दूर है, जबकि चन्द्रमा लगभग केवल दो लाख अड़तीस हजार मील दूर है। भागवत पुराण बनाने

वाले को यदि खगोल विज्ञान नहीं आता था तो उसे इस प्रकार की गल्प नहीं लिख मारनी थी। इससे उसकी विद्या की पोल खुल जाती है, इसी प्रकार का गपोड़ा विष्णु पुराण अंश २ अ० ७ में भी लिखा गया है।

दहेज में महा गल्प

राजा नग्नजित ने अपनी पुत्री सत्या का विवाह श्रीकृष्ण के साथ किया तो निम्न प्रकार दहेज दिया गया—दस हजार गायें, तीन हजार नवयुवती औरतें, नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े, नौ अरब सेवक दिये गए।

क्या नौ अरब सेवक देना महा गपोड़ा नहीं है ? मूल संस्कृत श्लोक निम्न प्रकार हैं:—

दशधेनु सहस्राणि पारि बर्हमदाद विभुः।
युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीव सुवाससाम् ॥५०॥
नवनाग सहस्राणि नागाच्छतगुणान् रथान्।
रथाच्छत गुणान श्वानश्वाच्छत गुणान् नरान् ॥५१॥
(भा० १०।५८)

जरासन्ध से १८ बार युद्ध की गल्प

शौरेः सप्तदशाहं वैसंयुगानि पराजितः।
त्रयो विंशति भिः सौजन्येजिग्य एक महं परम् ॥१३॥
(भा० १०।५४)

जरासन्ध ने कहा कि—तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर १८ बार मैंने कृष्ण से युद्ध किया। जिनमें अन्तिम में एक बार मैं जीत पाया हूं।

अठारह बार तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना युद्ध में नष्ट हुई थी। उसका हिसाब लगाने से कुल रथ=८८७४१८०, हाथी=८८७४१८०, घोड़े=२६२२२५४०। पैदल (पाला)= ४३३७०९०० होते हैं। अकेले जरासन्ध की इतनी बड़ी सेना को खेत जोतने का हल लेकर बलराम ने तथा श्रीकृष्ण ने समाप्त कर दिया था। जबकि महाभारत में केवल १८ अक्षौहिणी सेना को मारने में १८ दिन तक सारे पाण्डव कौरव लगे रहे थे। कितनी लम्बी गल्प भागवतकार ने ठोंकी है। इस उपन्यास सम्राट को इन गल्पों की सूझ पर आजन्म पेंशन बांध दी जाती तब भी थोड़ी थी।

वेदों के विषय में गल्प

वेदों का ज्ञान मानव उत्पत्ति के साथ सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा से प्रारम्भिक मानव को मिलता है। भागवतकार ने इस विषय में परस्पर विरुद्ध कथन किया है:—

मैत्रेयजी ने कहा—

कदाचिद् ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात्।
कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान् समवेतान् यथापुरा ॥३४॥
(भा० ३।१२)

अर्थ—ब्रह्माजी सोच रहे थे कि मैं पूर्व कल्प के समान लोकों की रचना कैसे करूँ, इसी समय उनके मुँह से चार वेद प्रगट हुए।

जब दुनियां बनी भी नहीं थी, उसके बनाने का नकशा भी ब्रह्माजी ने नहीं सोच पाया था तो वेद क्या हवा में शून्याकाश में पैदा हो गए थे? भागवतकार को सूझ भी बड़ी विलक्षण रही है कि उसने वेदों को भी आकाश में, शून्य में, हवा में

उड़ा दिया है। इसके बाद दूसरी गल्प वह और लिखता है।

श्रीकृष्णजी ने कहा—

त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे हृदया त्रयी।
विद्या प्रादुर्भूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥१२॥

(भा० ११।१७)

अर्थात्—प्रथम सत्युग के बाद त्रेतायुग के प्रारम्भ होने पर मेरे हृदय से श्वास-प्रश्वास के द्वारा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद रूप त्रयीविद्या प्रगट हुई और उस विद्या से तीन भेदों वाले यज्ञ के रूप में मैं प्रगट हुआ।

सत्युग की आयु १७२८००० वर्ष की होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि मानव की उत्पत्ति के इतने वर्ष बाद श्रीकृष्ण रूपी विष्णुजी से वेद प्रगट हुए। प्रथम प्रश्न तो यह उठता है कि वेद ब्रह्माजी से प्रगट हुए या श्रीकृष्णजी से प्रगट हुए। दोनों ही वेदकर्ता होने के दावेदार हैं तथा दोनों का ही काल परस्पर विरुद्ध हैं। यदि श्रीकृष्ण की बात सत्य मानी जावे तो प्रश्न होगा कि सारे सतयुग भर में इतने लम्बे काल तक मानव को धर्म अधर्म का विवेक करने का आधार बिना वेद के क्या था? परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में वेद ज्ञान क्यों नहीं दिया? इतने दिन बाद उसे देने की क्या आवश्यकता आ पड़ी? यदि ब्रह्मा का दावा सत्य माना जावे तो प्रश्न होगा कि जब मानव या सृष्टि की उत्पत्ति भी नहीं हुई तो फिर वेद किस पर व क्यों और कैसे प्रगट हुए थे।

वास्तव में दोनों ही बातें भागवतकार की बे सर पैर की कोरी गल्पें हैं। उसे वेद की स्थिति की कोई जानकारी नहीं थी।

पण्डितों को दक्षिणा में सुन्दरी कन्याओं की भेंट

अथर्त्विग्भ्योऽददात् काले यथाम्नातं स दक्षिणाः ।
स्वलंकृतेभ्योऽलंकृत्य गो भू कन्या महाधनाः ॥५२॥
(भा० १०।८४)

वसुदेवजी ने यज्ञों की समाप्ति पर ऋत्विजों को शास्त्र के अनुसार भारी दक्षिणा, प्रचुर धन, गायें, पृथ्वी और सुन्दरी कन्यायें दक्षिणा में भेंट में दीं।

यज्ञों में सुन्दरी स्त्रियां अथवा अछूती कन्यायें पौराणिक पण्डितों को व्यभिचार के लिए भेंट में दिये जाने की कोई शास्त्रीय विधि नहीं है। औरतें कोई जानवर तो नहीं होतीं जो जिसे चाहो भेंट में दे दी जावे। परन्तु इन वैष्णव पन्थी व्यभिचारी ग्रन्थकारों ने सुन्दरी कन्यायें प्राप्त करने के लिये एवं दूसरों को दृष्टान्त देकर अनुकरण कराने के लिये वसुदेवजी से कन्यायें पण्डितों को दक्षिणा में देने को गल्प भागवत में लिख मारी है। इससे प्रगट है कि भागवतकार कोई चरित्रहीन वाममार्गीय सम्प्रदाय का आचार्य था जिसमें मद्य-मांस व मैथुन ही परम धर्म माना जाता है।

यज्ञ कर्ता को स्वर्ग में अप्सरायें मिलती हैं

इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्गलोकं यातियाज्ञिकः ।
भुञ्जीत देववत्तत्र भोगान् दिव्यान् निजार्जितान् ।२३।
गन्धर्वैर्विहरन् मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥२४॥
(भा० ११।१०)

यज्ञ करने वाले व्यक्ति को स्वर्ग प्राप्त होता है। वहाँ वह अपने पुरुषार्थों के फल स्वरूप देवताओं के भोगों को भोगता

है। उसका रूप अत्याकर्षक होता है तथा वह स्वर्गीय अप्सराओं के साथ हर प्रकार के आनन्द भोगता है।

पृथ्वी पर भी वैष्णव धर्म खूब विषय भोग कराता है। मरने के बाद स्वर्ग दिलाता है और वहाँ भी अछूती परम सुन्दरी सैकड़ों अप्सरायें विषय भोग भोगने को इस धर्म में मिलती हैं। मुसलमानों के बहिश्त में भी ७०-७० हूरें मिलती हैं तथा क्योंकि अरब में पुंमैथुन (अप्राकृतिक व्यभिचार) जारी था अतः बहिश्त में भी ७२-७२ गिलमें (सुन्दर-सुन्दर लौंडे) मिलने का प्रलोभन दिया गया है। वहाँ शराब की नहरें भी मिलती हैं। इन वैष्णवों के स्वर्ग में गिलमों और बहिश्ती शराबों की व्यवस्था नहीं की गई है। इसी कमी के कारण मुसलमानों का बहिश्त इनसे बढ़िया रहा है। कुछ भी हो व्यभिचार का साधन वैष्णवों के धर्म में स्वांग-रास आदि में यहाँ भी है और मरने पर स्वर्ग में भी है। अय्याश लोगों की इस धर्म में आकर्षण की सभी सामग्री हैं। मुसीबत उनकी है जो विषय भोगों से विरक्त हैं। स्वर्ग पहुँचने पर ऐसे विरक्त पौराणिक निकम्मे लोगों को अप्सरायें नामर्द कह कर धक्के मार-मार कर निकाल देती होंगी। भागवतकार का यह लोक तथा परलोक दोनों ही गुण्डागीरी के अड्डे हैं और यदि यह बात नहीं है तो यह भागवती गल्प स्पष्ट है:—

इन्द्र कमल नाल में छिपा रहा

एवं संचोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनन्द्रिपुम ।
ब्रह्महत्या हते तस्मिन्नासहसाद वृषाकपिम् ॥१०॥
नभो गतो दिशः सर्वाः सहस्राक्षो विशाम्पते ।
प्रागुदीचीं दिशं पूर्णं प्रविष्टो नृपमानसम् ॥१४॥

स आवसत्पुष्कर नालतन्तू—
नलब्धभोगो यदि हाग्निदूतः ।
वर्षाणि साहस्रमलक्षितोऽन्तः
स चिन्तयन् ब्रह्मवधाद् विमोक्षम् ॥१५॥
(भा० ६।१३)

अर्थ—ब्राह्मणों की प्रेरणा प्राप्त करके इन्द्र ने वृत्रासुर का बध किया था। उसके मारे जाने पर ब्रह्म हत्या इन्द्र के पास आई।१०। देवराज इन्द्र उसके भय से दिशाओं और आकाश में भागते फिरे। कहीं भी शरण न मिलने पर उन्होंने पूर्वोत्तर के कोने में स्थित मानसरोवर झील में प्रवेश किया ।१४। इन्द्र मानसरोवर के कमल की नाल में एक हजार वर्ष तक भूखा छिपा रहा और ब्रह्म हत्या से छुटकारे की बात सोचता रहा। १५।

क्या इन्द्र कोई कीड़ा था जो कमल नाल में घुसा रहा ? उसे कहीं किसी वृक्ष पर या पहाड़ की गुफा में भी कोई जगह छिपने को क्यों न मिल सकी। यह कहानी ब्राह्मण के बध से बचने के लिए लोगों को उपदेश के रूप में मिथ्या गढ़ी गई है। ब्राह्मण चाहे जितना दुष्ट दुराचारी, साक्षात् राक्षस तथा रावण वंशी ही क्यों न हो उसे भी नहीं मारना चाहिए, इस कथा का केवल यही उद्देश्य है। बध करने को ठाकुर–बनिये–शूद्र आदि वर्णस्थ लोग ही बनाये हैं। स्त्रियां भी बध करने, नाक, कान काट लेने के लिए बनाई गई हैं जैसे कि सूर्पणखां के साथ राम ने व्यवहार किया था। आज के युग में इस प्रकार की अन्याय फैलाने वाली गल्पों का कानून में कोई मूल्य नहीं है।

स्त्रियों को पैदा करने का उद्देश्य

विलोक्यै कान्त भूतानि भूतान्यादौ प्रजापतिः ।
स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्धं यया पुंसां मतिर्हृता ॥३०॥
न हि कश्चित्प्रिय स्त्रीणामञ्जसा स्वशिषात्मनाम् ।
पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्त्यर्थे घातयन्ति च ॥४२॥
(भाग० ६।१८)

सृष्टि उत्पन्न हो जाने पर ब्रह्माजी ने देखा कि सभी जीव असंग हो रहे हैं। तब उन्होंने अपने आधे शरीर से स्त्रियों की रचना की। उन्होंने पुरुषों को मति हर ली ।३०। स्त्रियों को कोई भी प्यारा नहीं होता है। उन्हें अपनी लालसायें ही प्रिय होती हैं। वे अपने पति-पुत्र-भाई को भी मार या मरवा देती हैं ।४२।

वैष्णवी भागवतकार की सारी ही बातें बेतुकी गल्पें हैं। स्त्रियां पुरुषों की मति हरने, उन्हें मूर्ख बनाने को नहीं पैदा की गई हैं। वे सृष्टि के क्रम को जारी रखने एवं नर व मादा के जीवन को सुखमय बनाने के लिए, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में साधन स्वरूप होती है। उनकी रचना का उद्देश्य महान है। भागवतकार को शायद अपनी पत्नी का दुर्भाग्य पूर्ण अनुभव रहा होगा। वह भी इसलिये कि स्वयं भागवतकार बहु तथा परस्त्री गामी रहा होगा जैसा कि उसकी कृति से उसके स्वभाव का पता लगता है। यदि कहीं किसी स्त्री ने निज पति पुत्र को त्याग दिया होगा या किसी कुलटा ने उनका घात करा दिया होगा तो उससे कहीं अधिक प्रतिशत पुरुष भी नारी हत्या के लिए उत्तरदायी है। नित्य ऐसे समाचारों से अखबार भरे रहते हैं । नारी जाति की निन्दा करना भागवत का उद्देश्य

रहा है। उसने उनको व्यभिचारी मर्दों के क्रीड़ा की वस्तु बना रक्खा है।

बाल्मीकि, अगस्त व वसिष्ठ का जन्म

वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकाद भवत्किल।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रा वरुणयोर्ऋषी ॥५॥
रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतम् ॥६॥

(भाग० ६। १८)

अथ—बाल्मीकिजी वरुण के पुत्र थे। बाल्मीकि से पैदा होने से वे बाल्मीकि कहलाये थे। अगस्त और वसिष्ठजी का जन्म घड़े से हुआ था। उर्वशो अप्सरा को देखकर मित्र और वरुण का वीर्यपात हो गया था। उस वीर्य को घड़े में रख दिया गया था। उसो से ये दोनों ऋषि पैदा हुये थे।

भागवती इस कथा के गल्प होने में सन्देह की क्या बात है ?

ग्यारह सौ योजन ऊँचे आम के पेड़

चतुर्ष्वे तेषु चूत जम्बू कदम्बन्यग्रोधाश्चत्वारः पादप प्रवराः पर्वत केतव इवाधि सहस्रयोजनोन्नाहास्तावद् विटप विततयः शतयोजन परिणाहाः ॥१२॥

(भाग० ५।१६)

इस पृथ्वी पर पर्वतों के ऊपर ध्वजाओं के समान आम, जामुन, कदम्ब और बड़ के चार पेड़ हैं। प्रत्येक ग्यारह सौ योजन ऊँचा है और इतना ही इनकी शाखाओं का विस्तार है। इनके तने सौ-सौ योजन मोटे हैं।

इस गप्प को देखकर ऐसा पता लगता है कि शराब की

बोतल गले में उतारकर भागवतकार इनको लिखने बैठा होगा। इस अध्याय में भागवत में पृथ्वी के महामिथ्या भूगोल का वर्णन किया गया है जिसे देखकर शेखचिल्ली की कहानियों का स्मरण हो जाता है।

भूमण्डल के पर्वतों का वर्णन

शुकदेवजी ने बताया कि—हमारा जम्बूद्वीप भूमण्डल के सात द्वीपों के बीच में है। इसका विस्तार एक लाख योजन है। इसमें नौ-नौ हजार योजन विस्तार वाले नौ वर्ष हैं। जिनकी सीमायें पर्वतों से बंटी हैं। इनके बीच में इलावृत वर्ष है, उसके मध्य में मेरु पर्वत है जो सारा ही स्वर्णमय है व एक लाख योजन ऊँचा है। वह शिखर पर बत्तीस हजार योजन, तलैटी में सोलह हजार योजन है, पृथ्वी के अन्दर वह सोलह हजार योजन धँसा है। इस प्रकार चौरासी हजार योजन पृथ्वी पर ऊपर ऊँचा है। इलावृत के उत्तर में नील, श्वेत व श्रङ्गवान नाम के पर्वत दो-दो हजार योजन ऊँचे पूरब से पश्चिम की ओर फैले हैं। इनके सिवा मन्दर मेरु मन्दर-सुपार्श्व और कुमुद नाम के पर्वत दस-दस हजार योजन ऊँचे हैं। (भाग० ५। १६

भागवत की इन गल्पों को देखकर स्वदेश तथा विदेशों के गल्प लेखक भी शरमा जावेंगे। यह गप्पाष्टकें साक्षात् सर्वज्ञ पौराणिक योगेश्वर की कही हुई भागवत में लिखी बताई जाती हैं। सत्य बात तो यह है कि इसी प्रकार की सारी की सारी झूठी बेसर पैर की बातों में उलझा कर जनता को धर्म के नाम पर बेबकूफ बनाने के लिये इस महागल्प पुराण भागवत की रचना वैष्णवों ने करके भारत की धर्म प्राण जनता को कुमार्ग गामी बनाने का महापाप कमाया है। इस प्रकार की गल्पों के

सुनने से मोक्ष प्राप्ति का प्रलोभन दिया गया है। जनता की धर्म के प्रति श्रद्धा के साथ स्वार्थान्ध होकर खिलवाड़ करने वाले भागवत के कथक्कड़ पण्डितों को कठोरतम सजा दी जानी चाहिए। इस भागवत के महाभ्रष्ट ग्रन्थ होने में अब कौन बुद्धिमान सन्देह कर सकता है।

देवकी के मरे हुए सात पुत्रों को वापिस लाना

श्रीकृष्ण और बलराम श्रीकृष्ण के जन्म से पूर्व कंस द्वारा मार दिये गए देवकी को सात पुत्रों को लेने दैत्य राजा बलि के राज्य सुतल लोक में गये और वहाँ से सभी को वापिस लाकर देवकी को दे दिया। (भाग० १०।८५)

देवकी के गर्भ से उत्पन्न सातों पुत्रों को बहुत वर्ष पूर्व उत्पन्न होते ही कंस मार डालता था। उन बच्चों के शव भी साथ ही नष्ट कर दिए जाते थे। तब श्रीकृष्णजी उन बच्चों को कहाँ से कैसे ला सके थे। यह प्रश्न है जिसका उत्तर नहीं दिया जा सकता है। यदि उन बच्चों के जीवात्मा कहीं एकत्रित कर लिए गये होंगे तो भी उनके शरीर (भौतिक शरीर) नष्ट हो जाने से वे अपने पूर्व जन्म के शरीरों को न पा सके होंगे। तब देवकी ने उनको पहिचाना कैसे होगा? जीवात्मा की कोई आकृति नहीं होती है अतः उन मरे हुए बच्चों को ला देना और देवकी का उनको छाती से लगा कर प्यार करना तथा स्तन पिलाना यह सारी की सारी ही बेतुकी गल्प है जिसे भागवत रूपी उपन्यास के गल्प भण्डार में संग्रहीत किया गया है।

गर्भाशय के अन्दर से बालक बोला

अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः।
प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यं मवासृजत ॥३६॥
(भाग० ६।२०)

उतथ्य की पत्नी गर्भवती थी । उनके छोटे भाई ब्रह-स्पतिजी कामातुर होकर भाभी से मैथुन करने लगे । गर्भस्थ बालक ने मना किया कि 'चाचाजी, यह क्या करते हो, यहाँ दो के लिये स्थान नहीं है और मैं पहिले ही से यहाँ मौजूद हूँ'। कामातुर ब्रहस्पति ने जबर्दस्ती मैथुनकर डाला और उस गर्भ-स्थ बालक को इनकार करने पर शाप दे दिया। बालक ने देखा कि अब यह मानते हो नहीं हैं, तो उसने गर्भाशय के मुँह (दरवाजे) में भीतर से पैर अड़ा दिये, जिससे ब्रहस्पति का वीर्य अन्दर न जाकर बाहर हो गिर गया। बाहर गिरते ही उसका बालक तत्काल बन गया। यही बालक भारद्वाज के नाम से विख्यात हुआ जो भारद्वाज गोत्रीय पौराणिक पण्डितों का पूर्वज था। जो बालक गर्भ के अन्दर से पैदा हुआ वह शाप के कारण अन्धा पैदा हुआ। उसका नाम दीर्घतमा हुआ।

यह कथा संक्षेप से भागवत में दी है तथा महाभारत आदि पर्व में यह विस्तार से दी है। वहीं से हमने इसे पूरा कर दिया है। इस कहानी के गल्प होने में क्या सन्देह हो सकता है। गर्भस्थ बालक के मुँह, नाक कान सभी कफ से बन्द रहते हैं। बालक थैली में रहता है। बन्द थैली गर्भाशय की कोठरी में सख्ती से बन्द रहती है। इतनी सख्ती से बन्द स्थान में से बालक का बातचीत करना और चचामियां को उपदेश देना, यह सब किसी भंगड़ी की गल्प नहीं है तो क्या है। भागवत में यदि ऐसी गल्पें न होतीं तो उपन्यास पढ़ने के शौकीन लोग इसे क्यों पसन्द किया करते ? भोली-भाली औरतों को भागवत सप्ताह मनाकर इन्हीं कथाओं द्वारा मूर्ख बनाकर पैसा पैदा किया जाता है। ऐसी मिथ्या पुस्तक को जो धर्म ग्रन्थ मानते हैं उन वष्णवों की बुद्धि की बलिहारी है।

आठवाँ अध्याय

उपसंहार

गत अध्यायों में भागवत पुराण पर कई दृष्टियों से प्रकाश डाला जा चुका है, जिनमें यह दिखाया गया है कि भागवत पुराण के द्वारा आर्य जाति के परम पूज्य महापुरुष श्रीकृष्ण-चन्द्रजी महाराज को अनेक प्रकार के दोष लगाये गये हैं। बल-रामजी को कलङ्कित किया गया है। शराब, माँस, यज्ञों में पशु-बलि नरबलि आदि का समर्थन किया गया है, व्यभिचार को बैध माना गया है। अद्वैत, द्वैत तथा तैत्रवाद इन तीनों के विषय में भागवतकार किसी निश्चित मत का प्रतिपादन नहीं कर सका है। साकार उपासना के चक्कर में उसने विष्णु को एक सुन्दरी नारी बना दिया है। उसकी उपासना पद्धति कोरा तमाशा बन कर रह गई है। ईश्वर के स्वरूप के विषय में इस पुराणकार का ज्ञान सर्वथा शून्य रहा है। भागवत में सृष्टि नियम विरुद्ध भगोल खगोल विरुद्ध बातों का वर्णन भरा पड़ा है। हमने यह भी दिखाया है कि भागवत की रचना का आधार शुकदेवजी के द्वारा परीक्षित को कथा सुनाने की कहानी भी कोरी गल्प मात्र है। उसका ऐतिहासिक आधार स्वयं महाभारत से खण्डित हो जाता है।

वैष्णव सम्प्रदाय का प्रारम्भ मद्रास प्रान्त के मुनिवाहन भंगी, शठकोपकंजर विष्णुस्वामी तथा यावनाचार्य आदि शूद्रों के द्वारा किया गया था। अतः उनके वाममार्ग एवं शूद्र परम्पराओं की रीति-रिवाजों की स्पष्ट झलक उनके मान्य ग्रन्थ भागवतादि में विद्यमान है। श्राद्धों में पशुवध एवं गौवध तक की व्यवस्था विष्णु पुराणादि में दी गई है। विगत अध्यायों में इन सभी विषयों पर विस्तार के साथ विचार किया गया है और यह दिखाया गया है कि वाममार्ग की अनर्गल मान्यताओं को वैदिक धर्मी लोगों में प्रविष्ट करने के लिए दाक्षिणात्य वाममार्गीय शूद्रों ने किस प्रकार वैष्णव पन्थ को रचकर तथा भागवतादि ग्रन्थों के माध्यम से जाल फैलाया है।

अब इस अन्तिम अध्याय में हम भागवत पुराण की कुछ घटनाओं एवं कथाओं का अन्य पुराणों से परस्पर विरोध दिखाने को कुछ तथ्य प्रगट करेंगे, जिनसे विज्ञ पाठकों को यह ज्ञात हो सकेगा कि पुराणों में परस्पर में विषयों में एक रूपता नहीं है। अतः पुराण ग्रन्थ तथा भागवत के वर्णन किसी भी प्रकार से मान्य कोटि में नहीं आते हैं।

नृसिंह बध कथा—

भागवत स्क० ७ अ० १० में नृसिंह द्वारा हरिणाकश्यपु के बध का उल्लेख है। उसमें लिखा है कि इस बध के उपरान्त नृसिंहजी का क्रोध शांत हो गया और वे अन्तर्ध्यान होकर अपने लोक को चले गये। किन्तु लिङ्ग पुराण पूर्वार्ध अध्याय ९६ में तथा शिव पुराण शतरुद्रसं अ० ११ व १२ में लिखा है कि जब नृसिंह अवतार का क्रोध शान्त न हुआ तो शिवजी ने वीरभद्र को भेजकर नृसिंहजी का कत्ल करा दिया। सर कटवा लिया

तथा शरीर की खाल खिचवा ली। शिवजी जो बाघम्बर पहिने रहते हैं, वह नृसिंहजी की वही खाल है। प्रमाण स्वरूप चन्द्र श्लोक देखे जा सकते हैं। विस्तार से देखना हो तो उपर्युक्त स्थलों पर देखा जा सकेगा।

नृसिंह का अन्तर्ध्यान होना—

इत्युक्त्वा भगवान्राजं स्तत्रैवान्तर्दधे हरिः।
अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥ ३१ ॥

(भाग० ७।१०)

यह कहकर ब्रह्माजी की पूजा को स्वीकार करने के उपरान्त श्री नृसिंह भगवान अन्तर्ध्यान हो गये। समस्त प्राणियों के लिए अदृश्य हो गये।

नृसिंह बध

तद्वक्त्र शेष मात्रान्तं कृत्वा सर्वस्य विग्रहम।
शुक्ति शित्यं तदा मङ्गं वीरभद्रः क्षणात्ततः ॥
अथ ब्रह्मादयः सर्वे वीरभद्र ! त्वया द्रशा ॥
जीविताः स्मोवयं देवाः पर्जन्ये नैव पादपाः।
एता वदुक्त्वा भगवान् वीरभद्रो महाबलः ॥
अपश्यन् सर्वभूतानां तत्रैवाऽन्तर धीयत।
नृसिंह कृत्ति वसनस्तदा प्रभृति शंकरः ॥
वक्त्रं तन्मुण्डमालायां नायकत्वेन कल्पितम् ॥

(लिङ्ग पुराण पूर्वार्ध अ० ९६)

वीरभद्र ने नृसिंह अवतार के शरीर की खाल उतार ली और शरीर में से सफेद रङ्ग की हड्डी निकल आई, तथा उनका सिर भी काट लिया अर्थात् पूर्ण बध कर दिया। यह सब चरित्र देख कर ब्रह्मा आदि देवता स्तुति करने लगे। सब देवताओं के देखते-देखते वीर भद्र अन्तर्ध्यान हो गए। उसी दिन से नृसिंह जी का चर्म शिवजी ओढ़ा करते हैं और उनका सर अपनी मुण्डों की माला के मध्य में धारण करते हैं।

इस प्रकार यह कथा भिन्न-भिन्न पुराणों में परस्पर विरुद्ध प्रकार से लिखी गई है। यदि सारे पुराण व्यासजी के बनाये होते तो कथा में सर्वत्र एकरूपता होनी चाहिये थी।

भृगु द्वारा शिव परीक्षा

दूसरी कथा भागवत स्क० १० अ० ८९ की है। एक बार ऋषियों ने ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव की परीक्षा के लिए भृगु को भेजा कि वे पता लगावें कि इन तीनों में कौन बड़ा है। इसके अनुसार भृगुजी जब शिवजी के पास पहुँचे तो लिखा है—

ततः कैलास मगमत् स तं देवो महेश्वरः।
परि रब्धुं समारेमे उत्थाय भ्रातरं मुदा ॥५॥
नैच्छत्व मस्यु त्पथग इति देवश्चुकोप ह।
शूल मुद्यम्य तं हन्तु मारेभे तिग्मलोचनः ॥६॥
पतित्वा पादयोर्देवी सान्त्वया मास तं गिरा ॥७॥

(भाग० १०।८९)

भृगुजी कैलाश गए। शङ्कर ने जब देखा कि मेरे भाई भृगुजी आए हैं तो उन्होंने प्रसन्नता से उनका आलिङ्गन करने को भुजायें फैला दीं।५। किन्तु भृगु ने आलिङ्गन करना स्वीकार नहीं किया और कहा—तुम वेद मर्यादा का उल्लंघन करते हो अतः मैं नहीं मिलता। शङ्करजी इस पर क्रोध में भर गये, नेत्र चढ़ गये। उन्होंने त्रिशूल से भृगु को मारना चाहा।६। किन्तु सती ने खुशामद करके उनको शान्त कर दिया।७। भागवत में इस कथा में शिवजी से भृगु की बात-चीत होने का उल्लेख किया गया है।

भागवत की इस कथा से सर्वथा विपरीत वर्णन अन्य पुराण में इस प्रकार दिया है:—

एव मुक्तो भृगुस्तूर्णं कैलासं मुनि सत्तमः।
जगाम वायु मार्गेण यत्राऽऽस्ते वृषभध्वजः ॥२६॥

गृह द्वार मुपागम्य शंकरस्य महात्मनः।
शूल हस्तं महारौद्रं नन्दिनं चाऽब्रवीद् द्विजः ॥२७॥

सम्प्राप्तोऽहं भृगुर्विप्रो हरं द्रष्टुं सुरोत्तमम्।
निवेदयस्व मां शीघ्रं शंकराय महात्मने ॥२८॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नन्दी सर्वगणेश्वरः।
उवाचपुरुषं वाक्यं महर्षि ममि तौ जसम् ॥२९॥

असान्निध्यं प्रभोस्तस्य देव्या क्रीड़ति शंकरः।
निवर्त्तस्व मुनि श्रेष्ठ ! यदि जीवितु मिच्छसि ॥३०॥

वसिष्ठ उवाच—

एवं निराकृतस्तेन तत्राऽतिष्ठन्महातपाः ।
बहूनि दिवसान्यस्मिन्गृह द्वारि महेशितुः ।
तत्र क्रोध समाविष्ठो भृगुः शापमदान्मुनिः ॥३१॥

भृगु उवाच—

विनिष्टस्तमसा मूढ़ो मां न जानाति शङ्करः ।
नारी सङ्गममत्तोऽसौ यस्मान्मामव मन्यते ॥३२॥
योनि लिङ्ग स्वरूपं वै तस्मात्तस्य भविष्यति ॥३३॥
रुद्रभक्ताश्च ये लोके भस्म लिङ्गास्थि धारिणः ।
ते पाखण्डत्व मापन्ना वेद वाह्या भवन्तु वै ॥३६॥

(पद्म पु० उत्तर खं० अ० २५५ कलकत्ता)

(शिवजी सती के साथ विषय भोगों में तल्लीन थे) । उसी समय भृगुजी वायु मार्ग से शिवजी के स्थान पर पहुँच गये ।२६। शिवजी के मकान के द्वार पर शूल धारण किए महा भयंकर नन्दी को देखा । भृगुजी ने उससे कहा ।२७। मैं विप्र भृगु शिवजी से मिलने आया हूँ । तुम उनसे जाकर कह दो ।२८। उनके यह शब्द सुन कर नन्दी ने ओजस्वी शब्दों में कहा ।२९। शिवजी सती के साथ विषय भोगों में तल्लीन हैं । अतः हे मुनि श्रेष्ठ ! यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो भाग जाओ ।३०। इस प्रकार अपमानित होकर तपस्वी भृगुजी शिवजी के द्वार पर ही धरना देकर बैठ गये । उन्हें बैठे २ बहुत दिन बीत गये पर शिवजी न निकले तो भृगुजी क्रोध में भर गये और उन्होंने शिवजी को शाप देते हुए कहा ।३१। हे शङ्कर ! तू मुझको नहीं

जानता है। मूर्ख ! तू तामस में फँसा हुआ है। नारी के विषय भोग (प्रसङ्ग) में फँसा हुआ है। तूने मेरा अपमान किया है। जा, तेरा स्वरूप ही योनि लिंग हो जावेगा। लोक में तेरे भक्त जो भी लिंग और अस्थियाँ धारण करेंगे वे पाखण्डी माने जावेंगे और वेद से बहिष्कृत होंगे। (३२।३३।३६)

भागवत और पद्म पुराणों में इस कथा में सर्वथा विरोध है। इस पुराण में भृगुजी को शिवजी के दर्शन न होने की बात कही गई है। भृगुजी मिलने की प्रतीक्षा में उनके द्वार पर बहुत दिनों तक पड़े रहे बताये गए हैं। भागवत में शिवजी भृगु को मारने तक को तैयार हो गये थे। पर पद्म पुराण में उसके विपरीत भृगु ने शिव को क्रोधित होकर उनके स्वरूप के योनि लिंग बन जाने का शाप देने का वर्णन है। पद्म पुराण की कथा ने मन्दिरों में पूजा जाने वाले शिव लिंग और जल हरी को स्पष्टतया योनि लिंग और उनकी पूजा का आरम्भ बताते हुए उसकी असलियत भी खोल दी है। साथ ही भागवत की गल्प का भी खण्डन कर दिया गया है। इसी प्रकार एक तीसरी कथा भी देखें:—

अनसूया की कथा

महर्षि अत्रि के सन्तान न थी। वे तपस्या कर रहे थे कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव वहां प्रगट हो गये। अत्रि ने उनकी पूजा की। उन्होंने कहा कि मैंने तो भगवान की ही पूजा की थी। आप तीनों कौन हैं व कैसे आये हैं। तो त्रिदेवों ने उत्तर दिया—

यथा कृतस्ते सङ्कल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा।
सत्संकल्पस्य ते ब्रह्मन् यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥३०॥

अथास्मदंश भूतास्ते आत्मजा लोक विश्रुताः ।
भवितारोऽङ्ग भद्रंते विस्रप्स्यन्ति च ते यशः ॥३१॥
(भा० ४।१)

जैसा तुम्हारा संकल्प है वैसा ही होगा अन्यथा नहीं होगा। तुमने सत्य सङ्कल्प से जिस परमात्मा का ध्यान किया है हम वही हैं।३०। हमारे ही अंशों से तुम्हारे तीन पुत्र होंगे जो तुम्हारे यश का विस्तार करेंगे ॥३१॥

इसके विपरीत यह कथा भविष्य पुराण में प्रति सर्ग खं० ४ अ० १७ में निम्न प्रकार दी गई है:—

कदाचिद्भगवान् अत्रिर्गङ्गाकूले अनुसूयया ।
सार्धं तपो महत्कुर्वन्ब्रह्म ध्यान परोऽभवत् ॥६७॥
तदा ब्रह्माहरिश्शम्भुः स्वस्व वाहन मास्थिताः ।
वरं ब्रूहीति वचनं तमाहुस्ते सनातनाः ॥६८॥
इति श्रुत्वा वचस्तेषां स्वयं भूतनयो मुनिः ।
नैव किञ्चिद्वचः प्राह संस्थितः परमात्मनि ॥६९॥
तस्य भावं समालोक्य त्रयोदेवाः सनातनाः ।
अनसूयां तस्य पत्नीं समागम्य वचोऽब्रुवन् ॥७०॥
लिङ्गहस्तः स्वयं रुद्रो विष्णुस्तद्रस वर्धनः ।
ब्रह्मा काम ब्रह्म लोपः स्थितस्तया वशं गतः ।
रतिं देहि मदाघूर्णे नो चेत्प्राणास्त्यजाम्यहम् ॥७१॥
पतिव्रताऽनसूया च श्रुत्वा तेषां वचोऽशुभम् ।
नैव किञ्चिद्वचः प्राह कोपभीत सुरान्प्रति ॥७२॥

मोहितास्तत्रते देवा गृहीत्वा तां बलात्तदा ।
मैथुनाय समुदद्योग चक्रुर्माया विमोहिताः ॥७३॥
तदा क्रुद्धा सती ता वै ताञ्छशाप मुनिप्रिया ।
ममपुत्रा भविष्यन्ति यूयं काम विमोहिताः ॥७४॥
महादेवस्य वै लिङ्गं ब्रह्मणोऽस्य महाशिरः ।
चरणौ वासुदेवस्य पूजनीया नरैस्सदा ।
भविष्यन्ति सुर श्रेष्ठा उपहासोऽय मुत्तमः ॥७५॥

अर्थात्– कभी गङ्गा के किनारे पर अपनी पत्नी अनसूया के साथ अत्रि मुनि तपस्या करते थे तथा ब्रह्मा के ध्यान में तन्मय रहते थे ।६। वहाँ पर अपने २ वाहनों में बैठ कर ब्रह्मा, विष्णु व महादेव जा पहुँचे और सनातन सुन्दर वचन बोले। उनको सुन कर अत्रि ने कोई भी उत्तर नहीं दिया और ध्यान में तल्लीन रहे। उनके मौन भाव को देख कर तीनों देवता सती अनसूया से बोले कि हमारे साथ विषय भोग करो। शिवजी ने अपना लिंग हाथों में पकड़ लिया, विष्णुजी उसमें रस (जोश) बढ़ाने लगे और ब्रह्माजी कामदेव से मदान्ध हो गये। वे बोले या तो हमें अपने साथ विषय भोग करने दे नहीं तो हम आत्म-हत्या किए लेते हैं। अनसूया को बड़ा क्रोध आया। इस पर तीनों देवता उसे पकड़ कर जबर्दस्ती मैथुन की चेष्ठा करने लगे। तब सती ने उनको शाप दे दिया कि महादेव का लिंग, ब्रह्मा की खोपड़ी और विष्णु के चरण पूजे जाया करेंगे और तुम तीनों देवताओं को संसार में मजाक बना करेगी। तुम तीनों मेरी कोख से बेटे बन कर जन्म लोगे, क्योंकि तुम लोग कामान्ध हो रहे हो।

भागवत तथा भविष्य पुराणों की इस कथा में कितना विरोध व अन्तर है, यह देखा व समझा जा सकता है।

यह तीनों कथायें हमने अति संक्षेप से दृष्टान्त रूपेण दी हैं। भागवत में बीसियों बातें दूसरे पुराणों में वर्णित बातों के सर्वथा विपरीत दी हैं। इससे भागवत की प्रमाणिकता नष्ट हो जाती है। भागवत में भी परस्पर विरुद्ध बातों का समावेश हैं जिसे देख कर विचारशील पाठक भ्रम में पड़ जाते हैं। हम दृष्टान्त रूपेण एक ही बात का यहां उल्लेख करना चाहते हैं जिससे हांड़ी में चावल देखने की भांति भागवत की स्थिति समझी जा सकेगी।

शराब व मांसाहार विधान

विष्णु पुराण अंश ३ अ० १६ में श्लोक १ से ४ तक श्राद्ध में पशुमांस का खुला विधान है जो कि हम 'अध्याय २' में दे चुके हैं। भागवत पुराण स्क० ९ अ० ६ के श्लोक ६, ७ व ८ में श्राद्ध में मांस का उल्लेख है। भागवत स्क० ९ अ० ७ श्लोक ९ व १० में नरमेध का उल्लेख है। भागवत का स्क० ९ अ० ८ श्लोक २९-३० तथा ३१ में घोड़े की बलि से अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख है। भागवत स्क० १० अ० ६८ श्लोक ३८ में श्रीकृष्ण द्वारा यज्ञ में बलि देने वाले वन्य जीवों के बध करने का उल्लेख है। भागवत ४।१९।२७ में यज्ञ में पशु बध का विधान स्पष्ट है। इसके विपरीत भागवत स्क० ४ अ० २५ श्लोक ७ में तथा भागवत स्क० ४ अ० २७ श्लोक १८ में पुरञ्जनोपाख्यान में पशु हिंसा को बुरा बताया है। भागवत स्क० ५ अ० २६ में मच्छर, खटमल तक मरने का निषेध किया गया है। भागवत स्क० ५ अ० २६ में यज्ञों में पशु बध का निषेध निम्न शब्दों में किया गया है:—

ये त्विह वैदाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून् विशसन्ति तान् मुष्मिल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यातयित्वा विशसन्ति ॥२५॥

अर्थ—जो पाखण्डी लोग पाखण्डपूर्ण यज्ञों में पशुओं का बध करते हैं उन्हें परलोक में वैशनस नरक में डाल कर वहाँ के अधिकारी बहुत पीड़ा देकर काटते हैं ।२५।

इस श्लोक में देखने में तो यज्ञ में हिंसा का निषेध स्पष्ट है । किन्तु यह भी ध्वनि निकल सकती है कि यह निषेध पाखण्ड पूर्ण यज्ञों के लिए ही हो और पौराणिक विधि अनुकूल यज्ञों में हिंसा को स्वीकार किया जाता हो ।

भागवत स्क० ७ अ० १५ श्लोक ७ व ८ में श्राद्ध में मांस का निषेध किया गया है ।

न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद् धर्म तत्ववित् ।
मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिं सया ॥७॥

अर्थ—धर्म का मर्म जानने वाला पुरुष श्राद्ध में मांस का अर्पण न करे, न स्वयं उसे खाय । क्योंकि पितरों को मुनियों के योग्य हवष्यान्नसे जैसी प्रीति होती है वैसी मांस से नहीं ।

भागवत स्क० ११ अ० ५ श्लोक १३ में लिखा है:—

यद् घ्राण भक्षो विहितः सुराया-
स्तथा पशोरालभनं न हिंसा ॥१३॥

अर्थात्—सौत्रामणि यज्ञ में शराब सूंघने का तथा पशु को छूने का विधान है। न कि शराब पीने या हिंसा करने का ।

यह श्लोक स्पष्ट रूप से बताता है कि यज्ञों में शराब पीना व पशु हिंसा विहित है। इस श्लोक के लेखक ने इसे बना कर भागवत में प्रक्षिप्त कर दिया है। यदि यह वैष्णवी प्रथा नहीं है तो शराब के सूंघने या पशु के छूने में ही कौन-सा बड़ा भारी धर्म हो जाता है। इन दोनों मूर्खतापूर्ण कर्मों के विधान को ही क्या आवश्यकता है? पीने की जगह शराब सूंघना अथवा पशु हिंसा के स्थान पर पशु को छू लेने से यज्ञों के गौरव में कौन-सी वृद्धि हो जाती है? जब श्रीकृष्णजी को ही नारदजी ने वन्यमेध्य पशुओं को यज्ञ के लिए बध करते देखा था तो यज्ञ में पशु हिंसा वैष्णव धर्म के भगवान द्वारा समर्थित हो जाने से विहित हो जाती है।

भागवत स्कन्ध ११ अ० १८ में श्रीकृष्णजी वानप्रस्थी के कर्तव्य बताते हुए कहते हैं—

वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत् कालचोदितान् ।
न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥७॥

जङ्गली अन्न से ही वानप्रस्थी चरु पुरोडाश तैयार करे और उन्हीं से वैदिक कर्म करे। वानप्रस्थी हो जाने पर वेद विहित पशुओं द्वारा मेरा यजन न करे।

इसमें तो खुले शब्दों में वानप्रस्थी को निषेध करते हुए गृहस्थों को पशुओं से यज्ञ करना वेद विहित कर्म बता दिया गया है। इसीलिये श्रीकृष्णजी भागवत स्क० १० अ० ६९ में बन्य पशुओं की हत्या करते देखे गये थे। श्लोक निम्न प्रकार है—

चरन्तं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैन्धवम् ।
घ्नन्तं तत: पशून मेध्यान् परीतं यदु पुङ्गवै: ॥३५॥

यादवों के साथ श्रीकृष्णजी सिन्धु देश के घोड़े पर चढ़ कर यज्ञ में विहित वन्य पशुओं का बध कर रहे थे।

उपरोक्त पुराणों से सिद्ध है कि पशु-हिंसा वैष्णव धर्म का अङ्ग है क्योंकि वैष्णव धर्म वाममार्ग का ही परिवर्तित स्वरूप है। साथ ही जो भी प्रमाण हिंसा के विरोध में भागवत में दिए गए हैं वे बाद को प्रक्षिप्त किए गये हैं। क्योंकि मूल भागवत में प्रारम्भ में १८००० श्लोक होने की बात पुराणों में लिखी है, यथा—'अष्टादश साहस्रं श्री भागवत मिष्यते।

(भाग० १२।१३।९)

किन्तु वर्तमान भागवत में गिनने पर १४१८० श्लोक मिलते हैं। अर्थात् ३८२० श्लोक निकाल डाले गये हैं। इस प्रकार भागवत वर्तमान में एक अधूरा कटा छटा ग्रन्थ है। उसमें भारी कमी वेशी की गई है। मांसाहार तथा यज्ञों में मांस निषेध के सारे ही प्रमाण वैष्णव धर्म की मूल भावना के विपरीत होने से स्पष्टरूप से प्रक्षिप्त घोषित किए जा सकते हैं। भविष्य पुराण के अनुसार श्रीकृष्णजी का अपनी सारी पत्नियों के साथ शराब पीना, भागवत के अनुसार बलराम अवतार का शराब के नशे में मस्त रहना आदि प्रगट करता है कि शराब खोरी सर्वत्र सदैव वैष्णव धर्म (उफ वाम मार्ग) में पवित्र पेय मानी जाती थी। यज्ञों में भी उसे पीने का विधान था, न कि शराब को सूंघ लेने का आदेश था। शराब का प्रभाव सूँघने से नहीं वरन् पीने से शराबी को आनन्द देता है, यह बात आजकल के सारे ही शराबी वैष्णवों से उनके अनुभव की पूँछी जा सकती है। वे खुले दिल से स्पष्ट समर्थन करत हैं।

जहाँ तक वेद भगवान का सम्बन्ध है, एक भी मन्त्र उनमें

ऐसा नहीं है जो मांस भक्षण या यज्ञों में मांस का विधायक हो। भागवतकार वेदों का जानकार नहीं था इसीलिए उसने वेद को कलंकित करने के लिए श्रीकृष्णजी के मुँह से यज्ञों में पशुवध की बात को वेद विहित लिखने की धृष्टता की है।

भागवत ने श्रीकृष्णजी को पूर्ण अवतार माना है। वैष्णव पन्थ नामक द्वितीय अध्याय में सारे ही भागवत के अवतारों को कसौटी पर कसकर सिद्ध किया गया है कि अवतारवाद का पौराणिक सिद्धान्त सर्वांश में मिथ्या एवं ढकोसला है। एक पुराण कृष्ण को पार्वती का अवतार लिखता है, दूसरा उनको काले बाल का अवतार घोषित करता है, तीसरा उनको नारायण ऋषि नामक किसी महा तपस्वी का अवतार बताता है, तो कोई उनको विष्णु का चौबीस कलापूर्ण अवतार मानता है। विष्णु को ब्रह्मा, विष्णु, महादेव की तिकड़ी का सदस्य बनाया गया है कि विश्वव्यापी ब्रह्म से सर्वथा भिन्न तीन देवता हैं। कहीं भागवतकार न श्रीकृष्णजी को ही साक्षात् ब्रह्म लिख दिया है तो कहीं पर वह अद्वैतवाद के सिद्धान्त का समर्थन करके सृष्टि रचना, अवतार आदि सभी को मिथ्या घोषित करता हुआ दिखाई देता है।

इस प्रकार भागवत का अवतार बाद एक तमाशा बन गया है। श्रीकृष्ण जैसे—महापुरुष को परमात्मा बनाने के सारे प्रयत्न भागवतकार के अनिश्चित एवं कल्पित सिद्धान्तों के आधार पर विफल हो जाते हैं। जब श्रीकृष्ण का अवतारत्व ही मिथ्या है तो उनकी भक्ति करना, उनके स्वरूप का चिन्तन करना, सारा योग समाधि एवं जीवन का सम्पूर्ण व्यापार कृष्णार्पण कर देना उनके नाम का चिन्तन या जाप करना सारा का सारा मिथ्या ढकोसला बन जाता है। श्रीकृष्ण के सारे

उपदेश, उनकी बाल या युवावस्था की लीलायें सभी अविश्वास नीय बन जाती हैं। और फिर सारा भागवत पुराण एवं उसके द्वारा प्रतिपादित सारा वैष्णव धर्म जो एक बालू की भीत पर खड़ा किया गया है, धड़ाम से गिरकर विनष्ट हो जाने की स्थिति में आ जाता है।

वेदों के विषय में भी भागवतकार ने अपना मत परस्पर विरुद्ध कई स्थानों पर प्रगट किया है। हम उसके दो उदाहरण 'भागवत में गल्पों का विशाल भण्डार नामी सातवें अध्याय में दे चुके हैं। भागवत स्क० १ अ० ४ में लिखा है—

चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम्।
व्यदधाद्यज्ञ सन्तत्यै वेद मेकं चतुर्विधम् ॥१९॥

व्यासजी ने सोचा कि चतुर्होत्र कर्म लोगों का हृदय शुद्ध करने वाला है। इसलिए उन्होंने एक वेद के चार विभाग कर दिये।

जब कि भागवत स्क० ३ अ० १२ श्लोक ३४ में स्पष्टतया लिखा है कि ब्रह्मा से चारों वेद प्रगट हुए थे। भागवत ११।१७। १२ में वेदत्रयी की उत्पत्ति व्यास के लगभग दो अरब वर्ष पूर्व प्रथम त्रेता युग में विष्णु से बताई गई है। स्वयं वेद में चारों वेदों का वर्णन आता है—

तस्माद्यज्ञात् सर्व हुतः ऋचः सामानिजज्ञिरे।
छन्दासि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मात् अजायत ॥

(ऋ० १०।९०।९)

यस्मा द्वयो अपातक्षन् यजुर्यस्माद पाकषन् ।
सामानि यस्य लोमानि ऽथर्वाङ्गिरसोमुखम् ।
स्कम्भं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥

(अथर्व १०।७।२०)

इस सम्बन्ध में पचासों प्रमाण दिए जा सकते हैं जिनसे चारों वेदों का अस्तित्व व्यासजी से लाखों, करोड़ों वर्ष पूर्व सिद्ध हो जावेगा। तब व्यासजी द्वारा वेदों के एक से चार विभाग किए जाने की कोरी गल्प स्पष्ट रूप से सिद्ध है। भागवतकार को यह भी स्मरण नहीं रहा कि वह अपनी ही लेखनी से पीछे क्या लिख चुका है और आगे क्या लिखना है ?

भागवत में वीर्यपान—

भागवत स्क० ५ अ० २६ में वार्यपीने के बारे में लिखा है --

यस्त्विह वै सवर्णा भार्या द्विजो रेतः पाययति काम मोहित स्तंपाप कृत- ममुत्र रेतः कुल्यायां पातयित्वा रेतः सम्पाययन्ति ॥२६॥

अर्थात्—जो द्विज कामातुर होकर अपनी सवर्णा भार्या को वीर्यपान कराता है उस पापी को मरने के बाद यमदूत वीर्य की नदी में डालकर वीर्य पिलाते हैं।

वैष्णव पन्थ मद्रासी शुद्रों (वाममार्गियों) से ही चला है। वाममार्ग में वीर्य पीने का विधान है। जैसा कि वाममार्ग के निम्न श्लोक से प्रगट है—

मधु कुम्भ सहस्रैस्तु मांसभार शतैरपि ।
न तुष्या मिवरा रोहे ! भगलिंग मृतं बिना ।।

(कुलार्ण व तन्त्र उल्लास ८)

हे देवी ! हजारों घड़े शराब तथा सैकड़ों भार मांस के खा पीकर भी मेरी तुष्टि बिना भगलिङ्गामृत अर्थात् रज वीर्य पान किये नहीं होती है।

भूतकाल में शराब-मांस तथा यह वीर्यपान की प्रथा शूद्र वैष्णवों में बहुत प्रचिलित थी। किन्तु जब इस महाभ्रष्ट सम्प्रदाय का प्रसार द्विजों में होने लगा तो लोगों को इस पर कुछ आपत्ति हुई। इसलिए केवल द्विजों के सन्तोष के लिए उक्त श्लोक भागवत में जोड़ दिया गया, जैसे कि मांसाहार एवं श्राद्ध व यज्ञों में पशुबलि के निषेधक श्लोक भागवत में घुसेड़ दिये गये हैं। वास्तव में वीर्यपान का विधान शराब व मांस के ही समान इस मत के प्रारम्भ में रहा होगा ऐसा इस श्लोक से ध्वनित होता है। यदि न होता तो इस श्लोक में केवल द्विजों के स्थान पर सभी वर्णों के लिये इस पापाचार (पौराणिक धर्माचार) को निषिद्ध किया जाना चाहिये था।

दैत्य वेदज्ञ होते थे

सम्पूर्ण वैष्णव तथा अन्य पुराणों में दैत्यों का महापतित एवं दुष्ट, पापी बताया गया है। किन्तु भागवत में ही एक स्थल पर दैत्यों ने बड़े गर्व के साथ अपने बारे में बताया है—

स्वाध्याय श्रुत सम्पन्नाः प्रख्याता जन्म कर्मभिः ।
इतितूष्णीं स्थितान्दैत्यान् विलोक्य पुरुषोत्तमः ।।४।।

(भाग० ८ । ७)

दैत्यों ने कहा—हम लोगों ने वेद-शास्त्रों का विधिपूर्वक अध्ययन किया है, ऊँचे वंश में हमारा जन्म हुआ है और वीरता के बड़े-बड़े काम हमने किये हैं। यह कहकर वे चुप हो गये। भगवान ने उनकी ओर देखा।

वेदशास्त्रों के विद्वान होने से दैत्य लोग कलियुगी पौराणिक विद्वानों से किसी भी बात में कम नहीं माने जा सकते हैं। ऐसे लोगों को स्वार्थवश पुराणों ने व्यर्थ बदनाम किया है। इस भूल का पौराणिकों को पश्चाताप करना चाहिए।

भागवत पुराण की आलोचना का यह ग्रन्थ बहुत बड़ा न हो जावे, इसलिए हमने संक्षेप में इसके मुख्य विषयों पर प्रकाश डाला है। भागवत का भूगोल खगोल इतिहास उसके दार्शनिक सिद्धान्त, उसकी उपासना पद्धति, सामाजिक व्यवस्थायें, सभी बुद्धि, तर्क, वास्तविकता, वेद एवं वैदिक शास्त्र, विज्ञान, सृष्टि नियम आदि सभी के विरुद्ध हैं। उसकी गल्पें बड़े-बड़े गल्प लेखकों को मात देने वाली हैं। भागवत ग्रंथ सर्वथा भ्रमात्मक एवं मानव समाज के लिए अभिशाप है। वह गुड़ में मिले हुए विष के समान है जो देखने चखने में मधुर किन्तु परिणाम में घातक होता है।

शूद्र वर्णस्थ व्यक्तियों के साथ उस समय कितना अत्याचार होता था उसका भी एक उदाहरण भागवत में देखा जा सकता है। बलराम अवतार तीर्थ करने के बहाने से द्वारिका से निकल जाते हैं। वे घूमते-घूमते नैमिषारण्य क्षेत्र में पहुँचते हैं। वहाँ महात्माओं का जमघट हो रहा था, एक भारी सत्सङ्ग चालू था। बलरामजी का सोत्साह स्वागत किया गया। वे सुन्दर आसन पर बैठ गये। उन्होंने देखा कि श्रीवेदव्यासजी के

विद्वान शिष्य श्री लोमहर्षणजी व्यास गद्दी पर बैठे प्र चन कर रहे हैं। बलराम को एकदम क्रोध आ गया आगे का विवरण निम्न प्रकार दिया—

बलराम द्वारा सूत लोमहर्षण की हत्या

प्रप्रत्युत्थायिनं सूत मकृत प्रह्वणाञ्जलिम्
अध्यासीनं च तान् विप्रांश्चुकोपो द्वीक्ष्यमाधवः ॥२३॥

कस्मादसा विमान् विप्रान ध्यास्ते प्रति लोमजः ।
धर्म पालांस्तथैवास्मान् बधमर्हति दुर्मतिः ॥ २४॥

ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च ।
सेतिहास पुराणानि धर्म शास्त्राणि सर्वशः ॥२५॥

अदान्तस्या विनीतस्य वृथा पण्डित मानिनः ।
न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥२६॥

एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः ।
बध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥२७॥

एतावदुक्त्वा भगवान निवृत्तोऽसद्वधादपि ।
भवित्व्यात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत् प्रभुः ॥२८॥

अर्थ—बलराम ने देखा कि रोमहर्षण सूत जाति में उत्पन्न होने पर भी उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों से ऊँचे आसन पर बैठे, हुए हैं और उनके आने पर भी न तो उठकर स्वागत करते हैं न हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं। अतः वे क्रोध में भर गये ।२३ वे बोले यह लोमहर्षण नीच जाति का होने पर भी श्रेष्ठ ब्राह्मणों

तथा धर्म रक्षक हम लोगों से ऊपर बैठा है, यह दुर्बुद्धि मृत्यु का पात्र है। २४। व्यासदेव का शिष्य होकर इसने इतिहास, पुराण धर्म शास्त्र आदि का अध्ययन किया है परन्तु इसका अपने मन पर संयम नहीं है, न यह विनीत है। अपने को बड़ा भारी पण्डित मानता है। नट के समान इसने सारा स्वांग बना रक्खा है। २५-२६। धर्म का चिह्न धारण करने एवं धर्म को पालन न करने वाले लोग पापी हैं, मेरे बध करने के योग्य हैं। इसी-लिए मैंने अवतार लिया है। २७। बलराम यद्यपि कृत्या करने से निवृत्त हो चुके थे, परन्तु उन्होंने हाथ में कुश लेकर उसकी नोंक से आक्रमण किया और लोमहर्षण का बध कर दिया। ऐसा होना ही था।२८।

इस कथा में बलराम पर शूद्र होने से एक विद्वान के बध करने का दोष लगाया है। व्यास गद्दी पर बैठा व्यक्ति पूज्य माना जाता है। चाहे कोई भी कितना ही बड़ा व्यक्ति वहाँ आवे उसे चाहिए कि गद्दी पर आसीन व्यक्ति को स्वयं अभिवादन करे। न कि गद्दी त्यागकर कथा वाचक उस आग-न्तुक को अभिवादन करे। यही धार्मिक परम्परा हिन्दू धर्म की सभी शाखाओं में है। लोमहर्षण ने कोई अपराध इस मर्यादा का पालन करके नहीं किया था। तब क्रोधित होकर केवल उसके 'सूतपुत्र' होने के कारण उस की हत्या कर देना बलराम को अत्याचारी व मूर्ख सिद्ध करता है। बलराम पर यह दोष लगाने के बाद आगे भागवतकार लोमहर्षण का पक्ष लेकर बलराम को फटकारता है।

हाहेति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः।
उचुः संकर्षणं देवं मधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥२९॥

अस्य ब्रह्मासनं दत्त मस्माभिर्यदुनन्दन ।
आयुश्चात्माक्लमं तावद् यावत् सत्रं समाप्यते ॥३०॥
अजानतैं वाचरितस्त्वया ब्रह्मबधो यथा ॥३१॥
यद्येतद् ब्रह्म हत्यायाः पावनं लोकपावनः चरिष्यति।३२।
(भा० १०।७८)

इस हत्याकाण्ड पर सारे मुनि लोग दुःखी होकर हाहाकार करने लगे। उन्होंने बलराम को धिक्कारते हुए कहा कि तुमने यह बड़ा भारी पाप किया है। हम लोगों ने ही इन लोमहर्षणजी को यह आसन दिया था और उनको ब्राह्मणोचित स्थान पर बैठाया था। तथा जब तक यह सत्र पूरा न हो तब तक के लिए कष्ट रहित आयु भी दी थी। आपने अज्ञानता से ब्रह्महत्या के समान पाप किया है। अतः आप ब्रह्महत्या का प्रायश्चित करें क्योंकि आप लोक पावन हैं।

इस कथा की रचना ही शूद्र विद्वान की प्रतिष्ठा भी ब्राह्मण विद्वान के समान करने का उपदेश देनेके लिए की गई है। बलराम जैसा विद्वान व्यक्ति इतनी बड़ी गलती नहीं कर सकता था। कथाकार ने मूर्खों के समान उनमें क्षणिक उत्तेजना पैदा करा कर शूद्र जातीय विद्वान का अपमान करा दिया और फिर शूद्र वर्णस्थ विद्वान को ब्राह्मण सदृश्य पूज्य मान कर उसे व्यास-गद्दी का अधिकारी बना दिया है। इस कथानक का यही सार है। दक्षिण में आज भी शूद्रों के साथ घोर अत्याचार होते हैं। दक्षिण में शूद्र तथा ब्राह्मण एक सड़क पर न चल सकते हैं न एक स्थान से पानी ले सकते हैं। शूद्रों द्वारा स्थापित वैष्णव धर्म में आत्म उद्धार के लिए भागवत में उपरोक्त प्रयास किया गया

है, जो उचित ही है। किन्तु इस कथा ने बलराम को बुद्धि हीनता का दोष तो लगा ही दिया है।

भागवत का स्क० ११ का १७ वां अध्याय पूरा का पूरा ही गीता के अध्याय १० में वर्णित श्रीकृष्ण को विभूतियों की नकल है। केवल श्लोकों की भाषा बदल दी गई है। जो कि ग्रन्थकार की स्पष्ट शरारत है। यदि भागवत तथा गीता के उक्त स्थल श्रीकृष्ण के ही कहे हुए हैं और दोनों ग्रन्थों की रचना भी एक ही ग्रन्थकार महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने की थी तो दोनों ग्रन्थों में उनकी भाषा श्लोकों की एक ही होनी चाहिए थी। भिन्न भाषा दोनों ग्रन्थों के विभिन्न ग्रन्थकारों का सबूत पेश करती है।

भागवत में परस्पर विरुद्ध कथाओं के दृष्टान्त

भागवत स्कन्द २ अ० ६ श्लोक ३६ में लिखा है कि भगवान ने ब्रह्माजी को वरदान दिया:—

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥३६॥

अर्थात्—किसी भी कल्प में तुमको कभी भी 'मोह' नहीं होगा।

किन्तु इसके विपरीत भागवत स्क० १० अ० १३ में लिखा है कि ब्रह्मा को मोह हो गया।

एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम्।
स्वयैव माययाजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥४४॥

अर्थात्—ब्रह्माजी विष्णु (श्रीकृष्ण) को मोहित करने चले थे किन्तु स्वयं ही विमोहित हो गए। इससे प्रगट होता है कि या तो स्क० २ अ० ६ में भगवान के वरदान की कथा झूँठी

है, या ब्रह्माजी के मोहित होने की यह दूसरी कथा मिथ्या है। अथवा दोनों ही कथायें परस्पर विरुद्ध होने से कोरी गल्प हैं। इन में एक भी सत्य नहीं है।

हिरण्यकश्यपु के तरने की गल्प

भागवत में लिखा है कि प्रहलाद ने भगवान से वर मांगा:—

तस्मात् पिता मे पूयेत दुरन्ताद् दुस्तरादधात्।
पूतस्तेऽपाङ्ग संद्वष्टस्तदा कृपण वत्सल ॥१७॥

अर्थात्—दीनबन्धो! यद्यपि आप की दृष्टि पड़ते ही वे पवित्र हो चुके। फिर भी मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि उस जल्दी नाश न होने वाले दुस्तर दोष से मेरे पिता शुद्ध हो जावें।

नृसिंह भगवान ने कहा—

त्रिः सप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ।
यत् साधोऽस्य गृहे जातो भवान् वै कुल पावनः ॥१८॥
(भा० ७।१०)

अर्थ—प्रहलाद! तुम्हारे पिता (हिरण्यकश्यप) अपनी इक्कीस पीढ़ियों के साथ तर गये क्योंकि तुम्हारे जैसा कुल को पवित्र करने वाला पुत्र उनको प्राप्त हुआ है।

उक्त वर्णन में पुराण ने बताया है कि हिरण्यकश्यपु व उसकी २१ पीढ़ियां पूर्व की सब तर गये अर्थात् मुक्त हो गये। इसी अध्याय में आगे लिखा है कि फिर उसने ही रावण, कुम्भकर्ण, शिशुपाल व दन्तवक्र आदि के जन्म धारण किए। जब तर गए तो फिर जन्म कैसे, और जब पुनः राक्षस बने तो भगवान

के वरदान से तरना कैसा। दोनों ही बातें परस्पर विरुद्ध सर्वथा गल्पें मात्र हैं, यह स्पष्ट है।

भागवत पुराण में अनेक स्थल इसी प्रकार परस्पर विरुद्ध कथानकों के दिये गए हैं, जिनसे इस पुराण का महत्व स्वतः नष्ट हो जाता है। विस्तार भय से हम सभी स्थलों को यहाँ उद्धृत नहीं करते हैं।

इस 'भागवत समीक्षा' ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक जो लोग पढ़ेंगे तथा इसके प्रकाश में वैष्णव सम्प्रदाय के ग्रन्थों को देखेंगे वे स्वयं इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि यह भागवत पुराण अनर्गल बातों से भरा पड़ा है। यह वाममार्गीय सभ्यता का प्रचारक है, श्रीकृष्णादि महापुरुषों की घोर निन्दा करने वाला, उनके निष्कलङ्क पावन चरित्रों पर मिथ्या घृणित लांछन लगाने वाला है। इसकी सारी कहानियां कल्पित हैं। उनका ऐतिहासिक मूल्य कुछ भी नहीं है। इसकी कथायें अन्य पुराणों में वर्णित कथाओं के विपरीत होने से अमान्य है। इसकी रचना वाममार्गीय संस्कृति में पले हुए किसी व्यक्ति ने की है। भागवत के बारे में इसलिए अत्रि स्मृतिकार को भी विवश होकर अपनी स्मृति में लिखना पड़ा था।

वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं
शास्त्रेण हीनाश्च पुराण पाठाः।
पुराण हीनाः कृषिणो भवन्ति
भ्रष्टास्ततो भागवताभवन्ति ॥३८२॥

वेदों से जो भ्रष्ट हैं वे उनसे नीचे के ग्रंथ शास्त्रों को पढ़ते हैं। जो शास्त्रों से भी हीन हैं वे उनसे भी निम्नकोटि के

ग्रंथ पुराणों को पढ़ते हैं। जो लोग पुराणों से भी हीन हैं वे उससे निम्नकोटि का कार्य खेती करते हैं तथा जो लोग इन सब से भ्रष्ट हैं, वे लोग सबसे नीचे दर्जे के ग्रंथ भागवत को बांचते फिरते हैं।

इसमें भागवत को सब से अधम-कोटि का ग्रंथ माना है और लिखा है कि सब कर्मों से भ्रष्ट लोग ही इसे बांचते हैं। इससे आगे के श्लोक में अत्रि स्मृतिकार और भी कठोर व्यवस्था देता है। वह लिखता है:—

ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणः कीरा पौराण पाठकाः।

श्राद्धे यज्ञे महादाने वरणीयाः कदाचन ॥३८३॥

(अत्रि स्मृति)

ज्योतिषी, अथर्वेदीयकीर, तथा पुराण बांचने वाले (भागवत बांचने वाले) इनका श्राद्ध-यज्ञ तथा दान आदि कर्मों में बहिष्कार देना चाहिए।

अठारह पुराणों में सर्वत्र कथायें तथा सप्ताह भागवत पुराण के ही होते हैं। इससे पूर्व श्लोक में भी 'भागवता' भागवत पुराण का वाची है तथा इस श्लोक का 'पौराण पाठकाः' पद भी भागवत पुराण की कथा करने वाले का वाचक है। इस प्रकार भागवत ग्रन्थ के प्रति महर्षि अत्रि की सम्मति स्पष्ट है कि वे सबसे निम्न श्रेणी का ग्रंथ भागवत को तथा उसे बांचने वालों को महा भ्रष्ट मानते थे। भागवत की हमारी इस ग्रन्थ में आलोचना को देख कर महर्षि अत्रि की सम्मति की पुष्टि हो जावेगी कि 'भागवत पुराण' एक बहिष्कार के योग्य ग्रन्थ है। उसकी गप्पाष्टकें तथा उसका सारा जाल उसको मान्य ग्रन्थ की कोटि में रखने योग्य नहीं सिद्ध करता है।

आशा है हमारी इस भागवत समीक्षा को पढ़ने से पाठकों को वैष्णव सम्प्रदाय तथा उसके मान्य भागवतादि ग्रंथों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो सकेगा और वे जनता को इन मिथ्या साम्प्रदायिक ग्रंथों के माया जाल से सचेत कर सकेंगे।

॥ ओ३म् शुभम् ॥

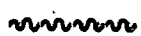

मुद्रक:—बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा।

शुद्धा-शुद्ध पत्र

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	विरागणाँ	विरागाणां	६१	१०	वान्कम	वान्किम
६	शास्णै	शास्त्रैः	६५	२५	में	वत में
११	शुक्र	शुक	६७	१	षिणाः	षिणः
६	सव	सर्व		११	मर्ख	मूर्ख
१३	सन	सुन	६६	१०	स्व	स्त्व
१६	वभव	वैभव	७१	८	वैष्ण	वैष्णव
६	कलों	कलौ			सव श्रष्ठ	सर्वश्रेष्ठ
३	३१	१।३	७२	११	ऋते	×
६	स्क० २	स्क० १		१२	मिली	मिलती
६	पुराणों	पुराण		१५	सि	ति
१४	निशम्य	निशाम्य	७४	२३	स्ज	रज
१८	कथामि	कथयामि	७५	४	भागवत	भगवान
५	नादाय	नारदाय		१६	निर्गुत्व	निर्गुण
३	हई	हुई	८०	१३	साधारण	धारण
१	श्त्र	शस्त्र	८३	२४	थ्वो	पृथ्वी
२	हगा	होगा	८४	२	अवतारा	अवतारों
५	श्लोक	श्लोकों	८५	२०	वणी	वृणी
८	यस्यां	यस्यां वै	८८	२	प्रवृ	प्रावृ
१३	कह	कहा		६	प्रजायेत	प्रजायते
२६	ह	ही	१०१	१२	बजड़े	बछड़े
१८	दाशनिक	दार्शनिक	१०३	१३	रञ्जन	रञ्जक
६	मुकद्से	मुकद्में		२१	उसा	उसी
६	कभी	का भी	१०६	१८	कसी	कैसी

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२	१६	नीयं	नीयं	११५	१७	सङ्ग	सङ्ग
४५	३	ससाह्वा	ससाङ्खा	१२०	१	तामिः	ताभिः
	८	तोल्य	तोल्प		६	पापात्व	पाप्मत्व
	१३	मतो	मथो	१४०	२३	स्पपृ	स्पृ
४६	१७	चाह्य	चाहूय	१४१	११	समाह्य	समाहूय
	१८	मुक्त	भुक्त	१४४	३	भमा	भया
	२०	तिभा	तभा		२०	के कामना	कामना
४७	२	सयं	समं		२१	साथ	के साथ
५१	२३	योगन	योगेन	१४६	१२	किञ्च	किञ्चि
५६	३	कीर्ति	कीर्त	१५२	६	बभू	बुभू
	११	निवेद	निवेदि	१५५	१६	अछत	अछूत
	२१	रा	मेरा	१५७	२४	१०	१
१५८	१३	१२	११	१६०	१६	उत्याय	उत्थाय
१७४	६	अवसर	अवतार	१७६	१३	क्रिया	उल्लेख क्रिया
१८१	१५	काय	कार्य	१८३	१	न कोई	कोई
	२४	मूखता	मूर्खता	१८४	२०	काय	कार्य
१८७	६	नाशपान	नाशवान	१६३	१३	घटाकाश	घटाकाशव
१६६	१५	द्द्ध	द्वंद्व	१६६	३	मण्डव्यो	माण्डव्यो
	८	कह	कर	२०१	१८	सन्धते	सिन्धते
२०२	२३	शुक्र	शुक	२०४	१०	विदयां	विद्यां
२१२	१	बुद्ध	बुद्धू	२२०	२	वकुण्ठ	बैकुण्ठ
२२२	२४	प्रस्था	प्रस्थी	२२८	२४	को	उसको
२४०	४	त्प्रिय	त्प्रिया		४	स्व	स्वा
२५३	३	ता	सा	२५७	३	पुराणो	प्रमाणो
२५६	११	द्ययज्ञ	द्यज्ञ	२६०	१	द्वयो	द्वयो

डा० श्रीराम आर्य कृत—

खण्डन-मण्डन 'ग्रन्थमाला' की क्रान्तिकारी

पुस्तकों की सूची

गीता विवेचन (गीता खण्डन)	मू० २.७५ न०
श्रीमद्भागवत समीक्षा (भागवत खण्डन)	३.००
अवतार रहस्य	१५०
मुनि समाज मुख मर्दन	1.5०
शिवलिङ्ग पूजा क्यों ?	१.1२
पुराण किसने बनाये ?	.७५
पौराणिक गप्प दीपिका।	.५५
माधवाचार्य को डबल [illegible]	.६५
शिवजी के चार विलक्षण बेटे	.३७
मृतक श्राद्ध खण्डन	.३१
पुराणों के कृष्ण	[illegible]
शास्त्रार्थ के [illegible] का उत्तर	.२५
पौराणिक कीर्तन पाखण्ड है	.२५
सनातन धर्म में नियोग व्यवस्था	.२५
पौराणिक मुख चपेटिका	.१९
नृसिंह अवतार बध	.1२
संसार के पौराणिक विद्वानों से ३१ प्रश्न	.१२
अवतारवाद पर ३१ प्रश्न	.1०
ईश्वर सिद्धि	...
कबीर मत गर्व मर्दन	... "

2876

नोट—शीघ्र ही कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे हैं। धार्मिक पाखण्डों के खण्डन एवं वैदिक धर्म के प्रचार के लिए इन पुस्तकों को भारी संख्या में मँगाकर प्रचार करावें। इन पुस्तकों ने मतवाले [illegible] वादियों में देश एवं विदेशोंमें भारी हलचल मचा दी है (सूचीपत्र मँगा[illegible]

व्यवस्थापक—वैदिक साहित्य प्रकाशन
कासगंज (उ.प्र.) भारतवर्ष।